सारिका

वर्ष: २२; अंक: ३१९

नोबेल पुरस्कार विजेता कथाकार विशेषांक-दो

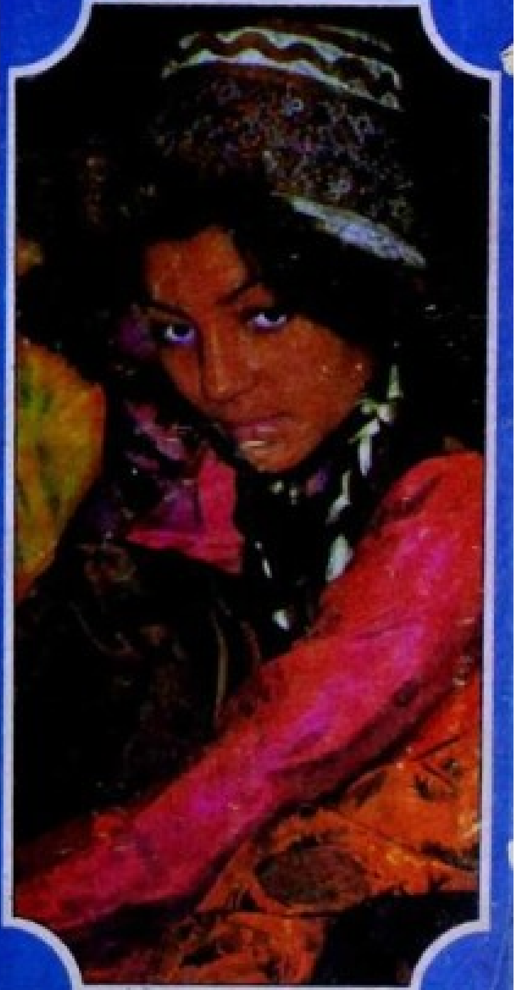

सारिका

कहानियों और कथा-जगत की जीवंत पाक्षिकी
वर्ष : २२; अंक ३१६, १६ से ३१ अक्तूबर, १९८२

नोबेल पुरस्कार विजेता कथाकार विशेषांक–दो

14. नन्हा मालिक : **रवींद्रनाथ ठाकुर**
26. खेतों में टूटे हुए : **जॉन स्टेनबेक**
33. मौत : **एल्यास कानेत्ती**
36. वह असफलताओं से खेलता रहा : **जान गाल्सवर्दी**
43. बूढ़ी हवेली : **फ्रांज एमिल सिल्लापा**
47. निर्वासित : **सेमुएल बेकेट**
54. अनचाहा सच : **सॉल बैलो**
57. पुष्पहार : **लुईगी पिरांदेलो**
62. सैनफ्रांसिस्को के महाशय : **इवान बुनिन**
68. फटा हुआ बूट : **ग्रेजिया देलेदा**
73. जीना-मरना : **अर्नेस्ट हेमिंग्वे**
85. अनोखी प्रार्थना : **अनातोले फ्रांस**
87. माल : **विलियम फॉकनर**
90. सोयी हुई रूपसियां : **यासुनारी कावाबाता**
91. नीलामी : **बोरिस पास्तरनाक**

बातचीत

11. मैं अपने परिवेश के प्रति बहुत ही सतर्क रहता हूं : **रवींद्रनाथ ठाकुर के साथ सुदर्शन, बनारसी दास चतुर्वेदी और चंद्रगुप्त विद्यालंकार की बातचीत.**
89. मैं कई दशकों को छूकर निकल जाऊंगा : **पास्तरनाक से बातचीत**

विशेष आयोजन

10. रवींद्रनाथ ठाकुर : जिन्हें भाषा भी गढ़नी पड़ी : **आशीष सिन्हा**
12. उन्होंने एक रचनात्मक उन्माद में चित्ररचना की : **प्रयाग शुक्ल**
19. जब रवींद्रनाथ ठाकुर को नोबेल पुरस्कार मिला : **हरिमोहन शर्मा**
20. मैं इस सम्मान को कैसे स्वीकार कर सकता हूं : **रवींद्रनाथ ठाकुर का विवादास्पद भाषण.**
22. नोबेल पुरस्कार : अफ्रो-एशियाई देशों के साथ सौतेला व्यवहार क्यों? : **भीष्म साहनी**
23. क्या नोबेल पुरस्कार पर पश्चिमी देशों की ही इजारेदारी है? (परिचर्चा) : **बीर राजा**
28. आदमी एक-एक सताये गये दिन का हिसाब मांगता है : **आशीष सिन्हा**
30. तहखाना, जहां कोई न जा सके : **विनोद भारद्वाज**
32. जीवन के रहस्य को जानने का अचूक नुस्खा
39. टूटे हैं बार-बार हम इस मुकाम पर : **हरीश पाठक**
52. मानव उत्कर्ष की आस्था का प्रतीक : सॉल बैलो : **हरिमोहन शर्मा**
53. अप्रस्तुत विधान में विराट का संयत रूप : **सॉल बैलो का पुरस्कार स्वीकरण भाषण**
65. मैंने नोबेल पुरस्कार क्यों अस्वीकार किया : **सार्त्र**
66. सार्त्र ने जो कहा, मैं उससे कतई संतुष्ट नहीं हूं : **जॉन ओ' हारा**
70. हमें अपने बारे में कैसे और किस प्रकार बोलना चाहिए : **हेमिंग्वे**
76. नोबेल पुरस्कार की राजनीति : **इर्विंग वॅलेस**
79. सिंगर ने कहा था : **कन्हैयालाल नंदन**
82. नोबेल पुरस्कार को अनुचित दबावों से प्रभावित नहीं किया जा सकता : **चंद्रगुप्त विद्यालंकार**
88. रूस की धरती और हवा-पानी मेरे प्राण हैं : **पास्तरनाक**
92. लिलि हामेर : सिगरी उनसत के घर : **हिमांशु जोशी**

इस सामग्री के अतिरिक्त लघु रचनाएं व अन्य स्तंभ

आवरण :
फाल एस. गिरोटा, सावी अरनेजा

सहायक संपादक :
अवधनारायण मुद्गल
उप-संपादक :
रमेश बत्तरा, सुरेश उनियाल, बलराम, अरुण वर्द्धन

अपनी बात

सवाल भ्रांतियों का

पिछले अंक में हमने नोबेल पुरस्कार से जुड़े कुछ सवालों की मौजूदगी की बात उठायी थी. उसी संदर्भ में अभी दो-तीन दिन पहले श्री चंद्रगुप्त विद्यालंकार से बात हो रही थी, वह पिछले ही दिनों नार्वे और स्वीडन से लौटे हैं. उन्होंने बताया, "नोबेल फाउंडेशन के अधिकारियों का कहना है कि 'सर नोबेल की इच्छा के अनुसार हम कुछ भाषाओं से बंधे हुए हैं. पुरस्कार सिर्फ उन्हीं भाषाओं को या उन भाषाओं में अनूदित कृतियों को ही दिया जा सकता है. . .' कि उन सभी अधिकारियों को चेखव और ताल्सतोय को पुरस्कार न दे पाने का अफसोस है. इसका कारण उनके अनुसार तकनीकी है—क्योंकि उनके नामों की औपचारिकताएं पूरी नहीं हुई थीं, मतलब यह कि किसी कमेटी मेंबर ने उनके नाम प्रस्तावित ही नहीं किये. . . अधिकारियों का यह भी कहना है कि उनके पुरस्कार निष्पक्ष होते हैं. सिर्फ शांति के लिए दिये जाने वाले पुरस्कार पर बाहरी दबाव रह सकते हैं, लेकिन वह पुरस्कार नोबेल के नाम पर नार्वेजियन संसद देती है—'नोबेल फाउंडेशन' नहीं देता . . ."

सफाई कुछ भी दी जाये, लेकिन जिस पुरस्कार को अंतरराष्ट्रीय स्तर पर प्रचारित किया गया है और वही जिसका स्वरूप बना दिया गया है, उससे अंतरराष्ट्रीय सद्भाव, समभाव, निष्पक्षता और प्रभाव-निरपेक्षता की उम्मीद अवश्य की जाती है. क्या उस 'फाउंडेशन' से सार्वभौम और बृहत्तर ज्ञान की तलाश अपेक्षित नहीं है? क्या बहुत-सी भ्रांतियों को दबाकर उन्होंने खुद नयी भ्रांतियां नहीं फैलायी हैं? यदि सारिका के ये विशेषांक ऐसी भ्रांतियों पर थोड़ा सा भी प्रकाश डाल सकें, तो हम अपना श्रम सार्थक समझेंगे.

[signature]

प्रश्रय देनेवाले पुरुष ही हैं!

'सारिका' में देश-विदेश की वेश्याओं की अवश और दयनीय स्थिति को जानकर मन अवसादग्रस्त हो उठा. वेश्या मात्र वेश्या न होकर एक नारी होती है, जिसके दिल में दया, पीड़ा भी होती है. **'वेश्या'** इसी तरह के नारी-चरित्र को रेखांकित करती एक कहानी है, जिसमें घायल और जाति का आडंबर ओढ़े बूढ़े की सेवा करने का प्रतिदान उसे तिरस्कार मिलता है और मिलती है—वेश्या जाति के नाम पर अटूट घृणा.

'मासूमा' में एक स्वार्थी मां अपनी बेटी को ही वेश्या बना डालती है. सुभाष अखिल की **'बाजार बंद'** पुलिस और प्रशासन की सच्चाई को प्रकट करती है. इस वेश्या वर्ग को प्रश्रय देनेवाले पुरुष ही हैं. न जाने हमारे देश से इसका अंत कब होगा, जो देश, नगर और समाज के लिए अभिशाप है.

▣ **पूनम 'प्रियांका', मुजफ्फरपुर (बिहार)**

करता कोई कुछ नहीं

अंक : 315 पढ़ा, सदैव से पढ़ा-लिखा एवं भोगा जाता सत्य उजागर हुआ, बस. शाश्वत सत्य यह है कि वेश्यावृत्ति समूल नष्ट नहीं की जा सकती, इसलिए कि जब कोई खामी किसी समय में उत्पन्न हो जाती है, फिर उसमें कमीबेशी संभव है, समाप्त करना नामुमकिन है, जैसा कि पृष्ठ 27 पर 'चलते चलते' में रूस और चीन के रवैये का लेखा-जोखा प्रस्तुत है.

अपवाद छोड़कर कोई वेश्या संतुष्ट नहीं. वह उसी पति और पुत्र की सुरक्षा और छत्रछाया की अपेक्षा रखती है, जिसका प्रारूप नाग बनकर उसे प्रतिदिन डस रहा होता है. तौसीफ की 'तस्वीर' में जमीला शादी न करने के लिए मजबूरी बताती है, "मैं अपने मर्द से मोहब्बत करती हूं. . .वह बदसूरत है. . .उसने मुझे सरे बाजार बिठा रखा है. मेरी कमाई खाता है, मारता है, फिर भी मैं उसे प्यार करती हूं, ऐसी पत्नी के आदर्श के आगे भगवान भी सिर झुकायेंगे और ऐसे पति से शायद घृणा भी घृणा कर बैठे.

पुरुष-स्त्री दोनों ही जब तक कृतसंकल्प नहीं होते, तब तक एकपक्षीय कुछ भी संभव नहीं. लड़कियां कॉलिज जाते-जाते कॉलगर्ल भी बन जाती हैं, उन्हें किस पैसे या सुविधा का अभाव रहता है, पर जब चल निकलती हैं तो लौटना मुश्किल ही नहीं, असंभव भी होता है.

हेमिंग्वे की **'और वह'** औरत और मर्द के अधिकारों का सम्यक वर्णन करती सशक्त रचना है. अखिल की **'बाजार बंद'** पसंद आयी. दल्ला रंडियों की सही स्थिति जानता और बताता है, पर उसे सहानुभूति है तो अपनी और रंडियों की रोटी से. मंटो की **'नरगिस'** बेहद पसंद आयी. **'कंजरी'** और इस्मत की **'मासूमा'** ने दिल दहला दिया कि ऐसी मां कितनी दुखदाई और उत्तरदायी है गलत परिस्थितियों के लिए. **'टेक्सी'** में भावनाओं का उद्रेक सत्य

आपकी बात

दर्शाया है. अपने पर पड़ने से ऐसा ही अनुभव होता है, जैसा **'और वह'** में. जातक कथा **'निर्मल चरित्र'** और लोक-कथाएं **'उसका प्यार'** तथा **'गणिका पूजा'** बहुत प्यार और आदर्श प्रस्तुत करनेवाली लगीं.

अंत में—संध्या नेगी का रूस पर लिखा लेख मानवीय है. अच्छे प्रयासों से बुराइयां मिटें भले न, पर कम होंगी अवश्य, पर श्रीकांत की कश्मीरन सही कहती है, 'आश्वासन सब देते हैं, करता कोई कुछ नहीं'.

▣ **सरला सिंह, रामपुर (उ. प्र.)**

उराड़ी गांव का जिक्र

'सारिका' का अंक : 315 'देह-व्यापार-कथा-विशेषांक' लंबी प्रतीक्षा के बाद प्राप्त हुआ. अगले अंक : 316 की झलक भी इसी अंक में देखी, पर उराड़ी का नाम कहीं नहीं दिखा. देह का व्यापार हमारे होशंगाबाद जिले के ग्राम उराड़ी में इस कदर होता है कि

अतिशयोक्ति नहीं होगी. उस गांव का प्रत्येक घर वेश्यालय है. उराड़ी गांव होशंगाबाद जिले की सिवनी तहसील से मात्र 4 किलोमीटर दूर है. दिनभर गांव बिल्कुल सूना रहता है, पर शाम होते ही मानो उस गांव का दिन उदित होता है—नजदीक के शहरों से मनचले युवक और पकी उम्र के बूढ़े भी इस गांव में अपनी शाम रंगीन करने आते हैं. इस गांव के बारे में कई बार प्रमुख समाचारपत्रों में भी छप चुका है, पर अभी तक गांव के उद्धार का कोई प्रयत्न नहीं हुआ.

▣ **चरणजीत सिंह, इटारसी (म.प्र.)**

क्या 'सारिका' पुरुषों की बपौती है ?

'सारिका' का 'देह व्यापार विशेषांक' पढ़ा. बड़ी निराशा हाथ लगी. इस अंक के माध्यम से आप कहना क्या चाहते थे, जरा भी स्पष्ट नहीं हुआ. इस अंक ने जहां नारी की गरिमा पर वज्रपात किया, वहीं अनेक पाठकों में एक बार उसी जगह जाने की उत्सुकता जगा दी. जिन्होंने नारी के पैरों में विवशता के घुंघरू बंधवा अपनी कामुकता की क्षणिक आग को बुझाने के लिए नारी के साथ इतना बड़ा अत्याचार किया, यहां तक कि एक अलग ही वर्ग बना दिया. यदि ऐसे व्यक्तियों के ऊपर दो-चार शब्द लिखे होते तो 'सारिका' की गरिमा यों ही बनी रहती. मात्र फालतू के 'शब्द व्यापार' के इस अंक में कुछ भी नहीं. गजलें भी नीरस और बेजान लगीं. इतिहास की वार-वनिताओं का चित्रण कर आपने सिर्फ एक ही पक्ष दर्शाने का प्रयास किया है और उस पक्ष ने समय-समय पर वार-वनिताओं की आवश्यकता पर जोर दिया है. पाठकों और साहित्य जगत के साथ ऐसा अन्याय क्यों? क्या 'सारिका' पुरुषों की बपौती है?

▣ **सुधा गोयल, बुलंदशहर (उ. प्र.)**

क्या हम सब वेश्याओं के दलाल नहीं हैं?

हो सकता है कि हम यह सुनकर चौंक जायें, पर हमारे समाज में जो कुछ हो रहा है, क्या हम अपने आपको उससे अछूता रख सकते हैं? किसी विद्वान ने एक बार कहा था कि दुनिया का 90 प्रतिशत साहित्य स्त्रियों को लेकर लिखा गया है. अगर ध्यान से देखें तो पता चलेगा कि साहित्य में काफी बड़ी मात्रा में अनैतिक संबंधों को उठाया गया है. फिर चाहे दफ्तर की सेक्रेटरी हो, घर में काम करनेवाली नौकरानी, चकलेवाली या देवदासी. इसके अलावा बार और क्लबों में काम करने-वाली लड़कियों, कैबरे और न जाने कितने रूपों में समाज में वेश्यावृत्ति पनप रही है.

असल बात यह है कि हम वेश्याओं को सुधारने की बात छोड़कर उन्हें पूजना शुरू कर देते हैं. वेश्या द्वारा शरीर के बेचने को ईश्वर की सौगात मान लेते हैं. ऐसा लगता है कि जैसे स्त्री का केवल एक ही महत्वपूर्ण रूप है—वेश्या. दफ्तरों, कंपनियों तथा अनेक व्यवसायों में लगे हुए व्यक्तियों और यहां तक कि समाज सुधारकों का भी अधिकांश समय इसी काम-कुंठा के दबाव में निकल जाता है. जो लोग पर-स्त्री को प्राप्त करने में सफल हो जाते हैं, वे इसे कभी तो पुरुष की श्रेष्ठता के अधिकार रूप में और कभी अपनी इंद्रियों की सहज मुक्ति के रूप में मानकर इसके महत्व को प्रचारित कर देते हैं और जो ऐसा नहीं कर पाते, वे इन लोगों की आलोचना करते हैं और साथ ही मन ही मन यह सोचते रहते हैं कि उन्हें ऐसा मौका कब मिलेगा?

भारत मानसिक और आत्मिक शक्ति प्रदान करने के लिए दुनियाभर में प्रसिद्ध है, किंतु शारीरिक शक्ति के स्तर पर काफी पिछड़ रहा है. इस देश के अधिकांश व्यक्तियों का तनाव सेक्स के कारण बढ़ता ही रहा है. ऐसे माहौल में मुझे लगता है कि हम खुद वेश्याओं के दलाल बनते जा रहे हैं, क्योंकि जब हमें किसी बुरी प्रथा को बंद करने का कोई कारण नहीं मिलता तो हम चुप लगा जाते हैं. बस, यही चुप्पी हमें दलाल बना देती है. हम सब कुछ देखते हुए भी चुपचाप आंखें मूंदे रहते हैं, जैसे वेश्याओं के शरीर का कुछ न कुछ देखने का सुख तो हमें भी मिलता रहेगा. कई सज्जनों का यह कहना है कि आज के इस औद्योगिक युग में अगर वेश्या बाजार बंद हो गये तो उनकी बहनों, बेटियों, बीवियों, बहुओं का घर से निकलना मुश्किल हो जायेगा, पर हमें यह भी सोचना चाहिए कि अभी जो लड़कियां वेश्या घरों में पहुंचती हैं, वे कहां से आती हैं?

क्या हम सब वेश्याओं के दलाल नहीं हैं, जो इस तरह सब कुछ देखते रहते हैं, और यह मानकर चलते हैं कि जब तक कोई दूसरा व्यक्ति इसका विरोध नहीं करता, तब तक मैं ही इस मामले में क्यों पड़ूं? महत्वपूर्ण बात यह है कि हमें वेश्यावृत्ति को पहले अपने मन से ही निकालना पड़ेगा, नहीं तो हमारी अपनी इज्जत उस दलाल से ज्यादा नहीं रह जायेगी, जो किसी भी तरह आपको अपने माल तक ले जाने में सफल हो जाता है.

▣ जितेंद्र सेठी, कोलीवाड़ा, बंबई-400037

मंटो लाजवाब हो तुम !

देह व्यापार पर लिखना एक जोखिम भरा काम है. जरा से फिसले नहीं कि संवेदनाओं और अनुभूतियों का स्थान मांसल रूमानियत ले लेती है. अक्सर ऐसा भी पाया गया है कि इस 'सेंसिटिव सबजेक्ट' पर लिखनेवाले सस्ती प्रसिद्धि अर्जित करने का लोभ संवरण नहीं कर पाते. परिणामतः नख-शिख वर्णन में ही डूब जाते हैं. ऐसे में विशेषांक के लिए सामग्री चयन जिम्मेदारी और काफी समझ-बूझ का काम बन जाता है.

हल्का-सा (हां, हल्का-सा ही, वैसे 'सारिका' पर पूरा विश्वास है.) डर था कि कहीं 'सारिका' भी इस मायाजाल में फंसकर गंतव्य से भटक न गयी हो. 16 अगस्त का अंक पढ़ने के बाद 'सारिका' परिवार को बधाई देना चाहता हूं.

'नरगिस' इस अंक की ही नहीं, मंटो की बेहतरीन कहानियों में एक लगी. यह मंटो की कलम का ही जादू है कि इस कहानी में पाठक ज्यों-ज्यों आगे जाता है और अंत में तो सम्मोहित-सा हो उठता है और उसके मुंह से बरबस निकल पड़ता है—बहुत खूब, मंटो लाजवाब हो तुम!

'युवालेखन' और 'आते हुए लोग' में तुलना करने की प्रथा-परंपरा (सारिकाधर्मी वर्ग में) पड़ती दिखाई दे रही है. बतर्ज इस बार (अब तक पहली बार) युवालेखन बाजी मार गया. सुभाष अखिल ने शामे के प्रति जरीना के प्रेम की पराकाष्ठा का जिस अंदाज से बयान किया है, वह इस युवा-लेखक के शिल्प की सजीवता व सशक्तता को प्रदर्शित करती है.

श्रीकांत शर्मा ने बेबाक सवाल उठाये हैं, जो आमतौर पर हर आम आदमी के मन में इस बारे में पुलिस के प्रति उठते हैं और श्रीमान उत्तरदाता ने भी उसी चतुराई से उनके जवाब दिये, जैसे पुलिस देती है.

वे लोग, जो यह मानते हैं कि वेश्या-वृत्ति को समाप्त करना संभव नहीं है, उन्हें यह जानना चाहिए कि 'सोवियत रूस में वेश्यावृत्ति किस प्रकार समाप्त कर दी गयी.' किसी देश का अनुभव यदि लाभप्रद हो सकता है तो उसे आगे बढ़कर अपनाने में पहल करनी चाहिए.

घायल रूहों को मरहम लगाने से बढ़कर जरूरत है, उस व्यवस्था को झटका देने की, जिसने इन्हें घायल किया है, कम से कम भविष्य तो ऐसा संसार देखे, जिसमें कोई रूह घायल और बीमार न हो.

▣ **हरीश करमचंदाणी, जोधपुर (राज.)**

संवेदना की ताजा हवा

'देह व्यापार' पर 'सारिका' के तीन अंक तल्ख संप्रेषण, प्रामाणिक विवरण एवं साहसी संपादन के द्वारा संग्रहणीय बने हैं. लघु कथाएं, कहानियां, उपन्यास अंश, लेख, परिचर्चाएं सभी का समग्र प्रभाव पाठक को बहुत कुछ सोचने-विचारने के लिए विवश करता है. गंदी गलियों के वीभत्स पहलुओं को उघेड़-कर संवेदना की ताजा हवा पहुंचाने का आपका प्रयास-पुल सशक्त है.

▣ **सतीश राठी, इंदौर (म. प्र.)**

'सारिका' की ओर से बधाई

प्रख्यात लेखिका श्रीमती मन्नू भंडारी को उनके बहुचर्चित उपन्यास 'महाभोज' पर भारतीय भाषा परिषद्, कलकत्ता ने ग्यारह हजार रुपये का 'रामकुमार भुवालका पुरस्कार' प्रदान किया है. मन्नूजी के इस उपन्यास का नाट्य रूपांतर देश के कई भागों में सफलतापूर्वक मंचित हुआ है.

• मन्नू भंडारी

यह उपन्यास हिंदी में अपने ढंग का ऐसा उपन्यास है, जो किसी नये मोड़ का सूचक है और दिशावाहक भी. इस उपन्यास में गांव के गरीब मजदूरों और तमाम निर्बल लोगों के शोषण पर टिकी आज की अराजक राजनीतिक व्यवस्था और खोखले नारों से लैस नेताओं की घृणित करतूतों को बड़ी निर्ममता से बेपर्दा किया गया है. विधानसभा चुनाव के मौके पर बिसेसर की मौत मानो राज-नीतिक अखाड़े के गिद्धों के लिए 'महाभोज' का इंतजाम कर गयी. करुणा, मोह, ममता, सुख तथा दुख जैसी मानवीय भावनाएं भी जैसे मात्र उनके उपयोग की चीजें रह गयी हैं.

'महाभोज' के अलावा मन्नूजी ने आपका बंटी तथा कलवा आदि अन्य उपन्यास भी लिखे हैं. एक प्लेट सैलाब, मैं हार गयी, यही सच है, त्रिशंकु तथा आंखों देखा झूठ आपके प्रमुख कहानी-संग्रह हैं. एक नाटक 'बिना दीवारों के घर' भी प्रकाशित हुआ है. आपकी कहानी 'यही सच है' पर 'रजनीगंधा' जैसी चर्चित फिल्म बन चुकी है. शीघ्र ही एक और फिल्म 'जीना यहां' प्रदर्शित होनेवाली है.

3 अप्रैल, 1931 में मध्य प्रदेश के भानपुरा में जन्म लेनेवाली मन्नू भंडारी को साहित्य-संस्कार अपने पिता से मिले थे. फिलहाल, दिल्ली विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग में प्राध्यापिका.

'सारिका' परिवार की ओर से मन्नूजी को हार्दिक बधाई!

घिनौनेपन को दूर करना चाहिए!

देह व्यापार कथा विशेषांक : 1 के रूप में 'सारिका' का अंक : 315 प्राप्त हुआ. विभिन्न सच्ची देह व्यापार संबंधी कथाओं के संग्रह (आदि से आज तक देश-विदेश की) के रूप में अंक की सभी सामग्री अच्छी लगी, मगर विशेष आकर्षण का केंद्र सहादत हसन मंटो की कहानी 'नरगिस' रही.

युवालेखन कहानी प्रतियोगिता की पुरस्कृत कहानी **'बाजार बंद'** ठीक रही. विशेषांक के आधार पर तो यह देह-व्यापार संबंधी कथा पर आधारित है, फिर भी अंतिम अनुच्छेद में वर्णित वर्तमान शासन व्यवस्था तथा शासकों के शोषण का जो चित्रण लेखक ने किया, वह सराहनीय है. शासन को इस ओर विशेष ध्यान आकृष्ट कर अपने घिनौनेपन को दूर करना चाहिए.

रही वेश्यावृत्ति की परंपरा के जारी रहने की बात तथा वेश्याओं के निरंतर बनाये जाने की प्रथा की बात तो ये दोनों तो जारी ही रहेंगी, क्योंकि मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है और मनुष्य ही असामाजिक तत्व (यानी अपनी संस्कृति और सभ्यता का शत्रु) देवता के स्थान पर दैत्य बनने का दीवाना है. जब तक शासक वर्ग ही शोषण करेंगे, तब तक तो भारतीय नारियां (जो कि देवी समान पूज्य रही हैं.) विवशता का शिकार बनायी ही जाती रहेंगी और उस विवशता में उनसे देह-व्यापार ही कराया जायेगा.

▣ **राजेंद्रकृष्ण श्रीवास्तव, लखनऊ**

वेश्यावृति के रूप और भी हैं!

'देह-व्यापार-कथा-विशेषांक' एवं खासतौर पर 'अपनी-बात' पढ़कर लगा, आपके हिसाब से देह-व्यापार और वेश्यावृत्ति दोनों एक ही चीज हैं. आप का यह 'कांसेप्ट' अधूरा ही नहीं, बल्कि भ्रामक भी है, वरना विश्वव्यापी सामाजिक संदर्भों में आज की स्थितियों का हवाला देने के बावजूद आपने वेश्यावृत्ति और देह-व्यापार को मात्र नारी तक ही सीमित क्यों रखा? 'सोडोमी' के शिकार किशोरों को कैसे भूल गये? अमरीका में हो रहे 'होमो' के हो-हल्ले का कहीं कोई जिक्र नहीं. क्या ये सब देह-व्यापार के दायरे में नहीं आते?

वेश्यावृत्ति एक प्रकार का व्यापार है, इसमें दो राय नहीं, लेकिन यह देह-व्यापार का पर्याय नहीं, बल्कि इसका एक 'आस्पेक्ट' मात्र है. देह-व्यापार के और भी रूप हो सकते हैं, मसलन ऊपर के दो बटन खोलकर मौखिक परीक्षा तथा सिनेमाघर आदि में अपना उल्लू सीधा करने में माहिर 'युनिवर्सिटी वालाओं' के इस आचरण को आप क्या कहेंगे?

'प्रमोशन', 'ट्रांसफर' आदि के लिए बीवी का इस्तेमाल क्या है? मंजिल तक पहुंचने के लिए 'देह' को सीढ़ी बनाने का उपक्रम प्रचलित अर्थों में वेश्यावृत्ति न सही, पर क्या देह-व्यापार का अंश नहीं? यह अलग बात है कि मंजिल के अनुरूप 'रेट और लिमिट' का निर्धारण 'देह' स्वयं करता है. अतः यहां शोषण का प्रश्न नहीं उठता.

इसके विपरीत वेश्यावृत्ति को शोषण का प्रतीक समझा गया है, क्योंकि जीविका के लिए या फिर 'मरता क्या न करता' वाले लोगों को सामाजिक मान्यता के विरुद्ध चकला-उद्योग का निकृष्ट पेशा अपनाने के लिए बाध्य होना पड़ता है, जहां 'देह' रूपी 'कमोडिटी' का मूल्य-निर्धारण चकला-उद्योग का मालिक करता है. यह बताने की आवश्यकता नहीं कि उद्योग से उत्पन्न मुनाफा किसकी जेब में जाता है.

▣ एल. आर. मुरमू, नयी दिल्ली

इस वर्ष के नोबेल पुरस्कार विजेता : ग्राब्रियल गार्सिया मार्खेज

['देह व्यापार कथा विशेषांक' के तुरंत बाद सारिका ने 'नोबेल पुरस्कार विजेता कथाकार विशेषांक' की योजना इसीलिए बनायी थी, क्योंकि नोबेल पुरस्कारों की घोषणा इन्हीं दिनों होती है. इस अंक के विलंब का मुख्य कारण भी यही है कि हम अभी तक साहित्य पर नोबेल पुरस्कार की घोषणा का इंतजार कर रहे थे. इस घोषणा के साथ ही हम यह विशेषांक आप सबको समर्पित कर रहे हैं—सं]

इस बात की चर्चा कई वर्षों से थी कि किसी भी वर्ष ग्राब्रियल गार्सिया मार्खेज को नोबेल पुरस्कार मिल सकता है. अंततः वह वर्ष 1982 का रहा. 21 अक्तूबर 1982 को स्वीडी अकादमी ने 54 वर्षीय मार्खेज को नोबेल पुरस्कार दिये जाने की घोषणा की है. उपन्यासकार, कहानीकार मार्खेज लातीनी अमरीकी देश कोलंबिया के हैं और स्पेनी भाषा में लिखते हैं. 1928 में कोलंबिया के एक छोटे से शहर अराकटाका में जन्मे मार्खेज की शिक्षा कोलंबिया की राजधानी बोगोटा में हुई. वह एक अरसे तक पेशे से पत्रकार रहे और उन्होंने इस सिलसिले में भी बहुत-सी यात्राएं कीं, लेकिन पिछले कई वर्षों से वह पेरिस, स्पेन, मेक्सिको में स्वनिर्वासित जीवन बिताते रहे हैं. आजकल वह मेक्सिको में रहते हैं. वह अपने देश कोलंबिया (जनसंख्या लगभग 3 करोड़) वापस नहीं जाना चाहते, क्योंकि उन्हें भय है कि वहां की सैनिक सरकार उन्हें गिरफ्तार कर लेगी. मार्खेज का सबसे चर्चित उपन्यास 'वन हंड्रेड इयर्स ऑव सालीच्यूड' है. दूसरा चर्चित उपन्यास 'आटम ऑव द पैट्रिआर्क' है (अंग्रेजी अनुवादों के नाम) आधुनिक स्पानी लेखकों में मार्खेज के पाठक सबसे अधिक हैं और उनकी पुस्तकें स्वयं स्पानी और अंग्रेजी समेत कई भाषाओं में अनूदित होकर, एक बड़ी संख्या में बिकनेवाली पुस्तकें हैं.

मार्खेज के लेखन की व्याख्या कई तरह से की गयी है. कुछ लोग उन्हें अतियथार्थवादी (सररियलिस्ट) धारा का अप्रितम लेखक मानते हैं. कुछ उन्हें मनुष्य और जीवन की यथार्थवादी और तात्विक समझ के लिए एक विलक्षण लेखक मानते हैं जो कि वह निर्विवाद रूप से हैं. मार्खेज के गद्य में कविता का-सा स्वाद है. उनके लेखन का मानो हर वाक्य संवेगी, बहुस्तरीय और बहुअर्थी है. उसमें एक पारदर्शी चमक है. 'वन हंड्रेड इयर्स ऑव सालीच्यूड' लातीनी अमरीका के जंगल में कुछ 'खोजी' लोगों द्वारा एक शहर बसाये जाने की कहानी से शुरू होता है—और इसी बहाने खुलनी शुरू होती है एक परिवार और शहर के माध्यम से जीवन के मर्मों की कहानी. जीना, इच्छा, प्रेम, वासना, भय, मृत्यु, युद्ध, क्रांति, समाज, भाषा, संगीत—जैसे किसी भी जरूरी शब्द से जोड़ें, यह उपन्यास इन्हें अपने में समेटे हुए लगेगा. 1967 में पहली बार आर्हेंतीना में प्रकाशित होनेवाले इस उपन्यास के अंग्रेजी अनुवाद (1970) के प्रकाशित होने के बाद 'द टाइम्स' ने लिखा था : 'अत्यंत समृद्ध लेखन का उदाहरण. जंगल जैसा घना, ज्ञान, घटनाओं और विनोद से भरा हुआ—विस्मयकारी और विचारशील उपन्यास'. मार्खेज के लेखन में रूप, रस, गंध, स्पर्श और मानवीय ऊष्मा का अनोखा स्वाद भी है.

● प्रयाग शुक्ल

व्यक्तिचित्र

रवींद्रनाथ ठाकुर : जिन्हें भाषा भी गढ़नी पड़ी!

"कहानीकार की हैसियत से रवींद्रनाथ ठाकुर का स्थान तालस्तोय, मोपासां तथा चेखव की श्रेणी में है. . . मोपासां सेक्स के प्रति और तालस्तोय धर्म के प्रति सजग हैं, पर रवींद्रनाथ आदमी के भीतर के आदमी को उजागर करते हैं."

केवल बारह वर्ष की आयु से अस्सी वर्ष की आयु तक जिस व्यक्ति ने निरंतर कविता, गीत, कहानी, लघु-कथा, उपन्यास, नाटक, ललित निबंध, आत्मरचना, पत्र-साहित्य, गीति नाट्य, दीर्घ कविता, ज्योतिष, होम्योपैथी, जासूसी उपन्यास, भौतिक कथाएं, लिखी है, उसकी प्रतिभा को केवल कुछ पंक्तियों में चिह्नित करना असंभव है. रवींद्रनाथ ठाकुर का रचना-संसार सारी सीमाएं तोड़ता है और असीम से जा मिलता है. किसी भी युग के किसी एक रचनाकार से उनकी तुलना संभव नहीं है. व्यास, वाल्मीकि, होमर, शैली, कीट्स, हाइने, गेटे में से किसी के साथ भी रवींद्रनाथ ठाकुर की तुलना नहीं की जा सकती. ठाकुर अनुपम हैं. यह सर्वविदित है कि कवि को 'गीतांजलि' के लिए नोबेल पुरस्कार से सम्मानित किया गया था. 'गीतांजलि' वस्तुतः कवि की ईश्वर चेतना और अध्यात्म-चेतना का प्रतिफलन है. भारतीय परंपरा के अनुसार कवि ने निखिल-विश्व के उस रहस्यमय संचालक को 'प्रिय, सखा, प्राणेश की संज्ञा दी है.

केवल सोलह वर्ष की आयु में (1877-78) रवींद्रनाथ ठाकुर का पहला उपन्यास 'करुणा' प्रकाशित हुआ था. कहानी की रचना संभवतः तेरह-चौदह वर्ष की आयु से ही उन्होंने शुरू की. शुरू-शुरू में कवि ने इतिहास केंद्रित रोमांटिक उपन्यास की रचना की, लेकिन धीरे-धीरे उपन्यास और कहानी की कथावस्तु व्यक्ति, समाज और परिवेश केंद्रित होती गयी. बंगला साहित्य में ठाकुर कहानियों के प्रवर्तक समझे जाते हैं. कहानियों के लिए भाषा की रचना भी ठाकुर ने ही की. विश्व के किसी भी कवि-लेखक को सृजन के साथ-साथ अगर भाषा की रचना भी करनी पड़ती तो उसका क्या हश्र होता! कवि ने मई, 1941 में एक वक्तव्य में कहा है. ". . . गद्य रचना करते वक्त, काव्यमय भाषा से पृथक एक भाषा की रचना, कथा-प्रवाह के साथ-साथ मुझे करनी पड़ी थी. जिन मोपासां जैसे विदेशी लेखकों का जिक्र तुम लोग करते हो, उन्हें बनी-बनायी भाषा मिली थी. लिखते-लिखते अगर मेरी तरह उन्हें भाषा भी गढ़नी होती तो न जाने उनका क्या हाल होता!"

ठाकुर का संपूर्ण कथा-साहित्य 'गल्प-गुच्छ' तीन खंडों में प्रकाशित हुआ. ये रचनाएं शिल्प मंडित तो हैं ही, साथ ही ये व्यक्ति, समाज, शोषण, प्रकृति, परिवार तथा आदमी और आदमी के संबंधों की कथा भी कहती हैं. ठाकुर की कहानियों में इतना वैचित्र्य, इतनी विविधता है, जो अवाक् करती है. वैसे ऐसे समीक्षक भी हैं, जो कहते हैं, "एक राज-प्रासाद के शीर्ष से उन्होंने कलकत्ते का जीवन देखा है और लिख दिया है." अथवा "पद्मा नदी के सीने पर नाव में बैठे-बैठे उन्होंने तीर के गांव देखे और कहानियां लिख दीं." लेकिन रवींद्र ने 20 अक्तूबर, 1936 को एक वक्तव्य में स्वयं कहा है—"मैंने न केवल गांव की कथा लिखी है, बल्कि ग्रामीणों के संस्कार का कार्य भी किया है 'दरिद्र-नारायण' शब्द बंगला साहित्य को मैंने ही दिया है. अपनी समस्त रचनाओं के सारे अनुभवों को संचित कर ही मैंने कहानियां लिखी हैं."

'छुट्टी', 'काबुलीवाला', 'पोस्टमास्टर' 'समाप्ति', 'दीदी', 'ठाकुर दा', 'रासमोनिर छेले', 'क्षुधित पाषाण', 'कंकाल', 'नष्ट नीड़' (जिस पर सत्यजित रे ने 'चारुलता' फिल्म बनायी.) आदि कुछ ऐसी रचनाएं हैं, जो गीति-कविता, रहस्य और पारिवारिक स्नेह-ममता को अद्भुत अंतरंगता से रेखांकित करती हैं.

कहानीकार की हैसियत से ठाकुर का स्थान तालस्तोय, मोपासां तथा चेखव की श्रेणी में है. योरोप के श्रेष्ठ कथाकार होते हुए भी मोपासां सेक्स के प्रति थोड़ा सजग हैं. तालस्तोय अपनी रचनाओं के माध्यम से धर्म के प्रति सजग हैं, लेकिन ठाकुर की कथाएं आदमी के भीतर के आदमी को जितना स्पष्टतः उजागर करती हैं, उतना शायद किसी अन्य कथाकार की नहीं. आधुनिक बंगला कहानी का आज भारत में जो मान है, इसका सारा श्रेय रवींद्र को जाता है. श्रेष्ठ कवि होने के कारण ही वे संभवतः श्रेष्ठ कथाकार भी बन पाये हैं. □

● प्रस्तुति : आशीष सिन्हा

बातचीत

सर्वश्री बनारसीदास चतुर्वेदी, सुदर्शन, चंद्रगुप्त विद्यालंकार तथा श्रीमती सत्यवती देवी ने रवींद्रनाथ ठाकुर से उनकी रचना प्रक्रिया पर बातचीत की थी, जो 'फारवर्ड' पत्रिका में २३ फरवरी, १९३६ के अंक में छपी थी. प्रस्तुत है वह सदाबहार बातचीत.

मैं अपने परिवेश के प्रति बहुत ही सतर्क रहता हूं!

▣ रवींद्रनाथ ठाकुर

सुदर्शन : क्या आप अपनी रचनाओं की पृष्ठभूमि पर कुछ बोलना चाहेंगे? कहानियां आप के मन में कैसे पनपती हैं?

कवि : बहुत कम उम्र से ही मैंने कहानियां लिखनी शुरू कीं. जमींदार होने के नाते, मुझे गांव जाना पड़ता था. इस तरह मैं गांव के सहज-सरल लोगों के संपर्क में आया. ग्राम्य बंगाल का सौंदर्य और परिवेश दोनों मुझे भाते थे. बंगाल नदियों का देश है. इन नदियों का सौंदर्य और विस्तार आश्चर्यचकित कर देनेवाला है. वहां का जीवन मैंने बहुत करीब से देखा है और इसने मुझे प्रेरित किया है. मेरा जन्म और लालन-पालन कलकत्ते में हुआ था. अतः ग्राम्य जीवन से मैं अपरिचित था. इसी वजह से गांव मेरे लिए रहस्यावृत्त-सा था. ज्यों-ज्यों मैं सहज-सरल ग्रामीणों के संपर्क में आता गया, त्यों-त्यों मैं उन्हीं में से एक हो गया. मैंने अनुभव किया कि इनका परिवेश, इनकी दुनिया, कलकत्ता की दुनिया से एकदम पृथक है. मेरी शुरू की कहानियां इसी पृष्ठभूमि पर आधारित हैं और वे ग्राम्य जीवन से मेरे संपर्क की कथा कहती हैं. इन रचनाओं में यौवन की ताजगी है. इन कहानियों के लिखे जाने से पहले बंगला साहित्य में ऐसा कुछ नहीं लिखा गया था. निःसंदेह बंकिम चंद्र ने कुछ कहानियां लिखी थीं, पर वे रचनाएं रोमांटिक थीं. मेरी रचनाएं ग्राम्य जीवन के सुख-दुख, शोषण तथा संघर्षों पर आधारित थीं. उनमें एक सर्वदेशीयपन भी है. उन कहानियों को आज जब मैं पढ़ता हूं, इनमें से काफी भूल गया हूं—दुर्भाग्यवश मेरी याददाश्त बहुत अच्छी नहीं है. कभी कल लिखी गयी चीज मैं आज भूल जाता हूं—बहरहाल, आज भी वे रचनाएं मेरे सामने उन बीते क्षणों को एकदम उसी रूप में ला खड़ा करती हैं. इन रचनाओं में एक विश्वव्यापी अपील है, क्योंकि दुनिया भर में आदमी के दुख और सुख एक ही हैं. मेरी बाद की रचनाओं में यह ताजगी और कोमलता नहीं आ पायी है.

सुदर्शन : क्या जीवित व्यक्तियों को आपकी रचनाओं में स्थान मिला है?

कवि : जी हां. मेरी कहानियों के कुछ पात्र एकदम जीवन से उठाये गये हैं. उदाहरणतः 'छुट्टी' कहानी में लड़के (फटिक) का चरित्र, गांव के एक बालक पर आधारित है. इस कोमल, कल्पनाशील बालक को देखकर मुझे लगा, अगर इसे अपने परिवेश से दूर कलकत्ता ले जाकर, एक असहानुभूतिशील परिवार में, मामी के पास रखा जाये तो इस नन्हे बच्चे पर क्या बीतेगी?

चंद्रगुप्त : आप अपनी किस रचना को श्रेष्ठ समझते हैं?

कवि : (हंसते हुए) यह कहना बहुत कठिन है. कई ऐसी रचनाएं हैं, जो प्रिय हैं. नदी के किनारे व्यतीत मेरा जीवन हर्ष और विषाद से परिपूर्ण था. थोड़ी-सी कल्पना, चित्र और दृश्य रचनाओं का सृजन करते हैं. एक रचना, जिसका उल्लेख मैं करना चाहूंगा, ग्रामीण परिवेश लिये हुए है. कहानी में वर्णित उस लड़की को मैंने गांव में देखा है. लड़की बहुत जिद्दी, बागी और असाधारण थी. अपनी आजादी को वह किसी भी कीमत पर खोना नहीं चाहती थी. प्रतिदिन दूर से वह मुझे निहारती थी. कभी-कभी वह अपने साथ एक बच्चे को भी लाती थी और मेरी ओर उंगली उठाकर उस बच्चे से कुछ कहती थी. दिन-प्रतिदिन वह इस तरह आती रही. फिर एक दिन वह नहीं आयी. उस दिन नदी में पानी लेने आयी हुई ग्रामीण औरतों की बातचीत मैंने सुनी तो पता चला कि वह लड़की ससुराल जा रही है. ग्रामीण औरतें उस लड़की के भविष्य पर बहुत चिंतित थीं, क्योंकि लड़की बागी थी और व्यवहार-कुशल नहीं थी. अगले दिन नदी में एक छोटी-सी नाव दिखी. उस लड़की को जबर्दस्ती नाव पर बिठाया जा रहा था. संपूर्ण परिवेश उदासी और व्यथा से परिपूर्ण था. उसकी सखियां बेकाबू-सी हो रही थीं और कुछ उस लड़की से न डरने का अनुरोध कर रही थीं. धीरे-धीरे वह नाव नदी में अदृश्य हो गयी. यही घटना मेरी एक कहानी का आधार बन गयी. उस कहानी का शीर्षक है—'समाप्ति'.

एक पोस्टमास्टर था. वह मेरे पास आता था. वह अपने घर से काफी दिनों से बाहर था और वापस लौटने के लिए परेशान था. गांव का परिवेश अच्छा नहीं था. उसे लगता था कि जंगलियों के बीच उसे जबरदस्ती रखा गया है. वह छुट्टी पाने को इतना बेचैन था कि नौकरी से इस्तीफा तक देने के लिए तैयार था. वह मुझसे मिलता और ग्रामीण जीवन के बारे में बातें करता. वस्तुतः उसी की बातों से कहानी 'पोस्टमास्टर' लिखने की प्रेरणा मिली.

चतुर्वेदी : 'काबुलीवाला' की रचना कैसे हुई? इस कहानी की अपील विश्वव्यापी है तथा यह बहुत ही लोकप्रिय रचना है.

कवि : मेरी इस रचना में थोड़ी-सी कल्पना है. यद्यपि एक काबुलीवाला हमारे घर आया करता था और वह हम लोगों से काफी घुल-मिल गया था. मैंने कल्पना की कि उसके देश में उसकी भी कोई छोटी बच्ची होगी, जो उसे याद करती होगी.

चतुर्वेदी : कहानी का वह अंश जिसमें काबुलीवाला अपनी ससुराल जाने की बात कहता है, मुझे बहुत अच्छा लगा.

कवि : हमारे इधर जेल को 'श्वसुर-बाड़ी' भी कहा जाता है. क्या आपके उधर भी ऐसा ही कहा जाता है?

चतुर्वेदी : जी हां. (ठहाका) हमारे इधर भी इसे ससुराल ही कहते हैं.

चंद्रगुप्त : आपकी बाद की कहानियों की शैली पृथक है. आपको अपनी पिछली रचनाएं कैसी लगती हैं?

कवि : मेरी बाद की रचनाओं में वह ताजगी नहीं है, यद्यपि वे कई समस्याएं (सामाजिक) उठाती हैं और इनमें मनोवैज्ञानिक अपील भी है. जब मैं युवक था, तब मेरे सामने कोई सामाजिक अथवा राजनीतिक समस्या नहीं थी. अब ऐसी कई समस्याएं हैं, जो लिखते वक्त स्वतः रचनाओं में चली आती हैं. मैं अपने परिवेश के प्रति बहुत ही सतर्क रहता हूं. और जब तक उचित परिवेश न मिले, तब तक मैं कोई भी कलात्मक कार्य नहीं कर सकता. जब मैं युवक था, मैं जो कुछ देखता, वह करुणा के साथ घुल-मिलकर मेरी रचनाओं में आ जाता. अतः मेरी नज़र में उन रचनाओं का साहित्यिक मूल्य अधिक है. वे स्वतःस्फुर्त भी हैं. मेरी बाद की रचनाओं की शैली इसलिए भी पृथक है कि उसमें कहानी के लिए आवश्यक तकनीक है. वैसे अब भी यह इच्छा होती है कि मैं अपने यौवन के दिनों में वापस लौट जाऊं. मेरा जीवन कई भागों में विभक्त है और मेरी समस्त रचनाएं कई काल-खंडों में विभाजित की जा सकती हैं. हम सब एक ही जीवन में कई बार जन्म लेते हैं. एक काल-खंड से निकलकर जब हम अगले काल में प्रवेश करते हैं तो वह पुनर्जन्म के समान होता है. अतः हमारी रचनाएं भी निरंतर नव-जन्म लाभ करती रहती हैं. मेरे साथ यह अंतर इतना तीव्र है कि मैं अपने पिछले साहित्यिक जन्मों को बहुत जल्द भूल जाता हूं. पिछले दिनों जब मैं अपने यौवन काल की कहानियों के प्रूफ पढ़ रहा था तो लगा कि इनमें आज भी कितनी ताजगी है? □

● काजल घोष एवं आशीष सिन्हा

● बनारसी दास चतुर्वेदी

● चंद्रगुप्त विद्यालंकार

घटियापन की निशानी

कला के प्रजातंत्र को सार्वजनिक प्रशंसा की जरूरत नहीं पड़ती. वास्तव में, तत्काल मिलनेवाली प्रशंसा ज्यादातर घटियापन की निशानी होती है. □

▣ स्टेनबेक

रवींद्रनाथ ठाकुर : चित्रकार

"मेरी पेंसिल बार-बार टूट जाती है. कारण यही है कि मैं अपनी सोच के साथ उसे काफी तेज दौड़ाता हूं. मुझे लगता है कि स्वयं मेरे मन में तेज दौड़ने की प्रवृत्ति है."

यह बात चौंकानेवाली लग सकती है, लेकिन कुछ लोग यह मानते हैं कि रवींद्रनाथ साहित्यकार (जिसके लिए उन्हें नोबेल पुरस्कार मिला.) से भी बड़े चित्रकार थे. और ऐसा माननेवाले तो बहुत से हैं कि वह जितने बड़े साहित्यकार थे, उतने ही बड़े चित्रकार भी. ऐसी तुलनाएं या मान्यताएं अपने आप में कुछ निरूपित करती हों या नहीं, लेकिन वे रवींद्रनाथ के चित्रकार रूप के लिए बार-बार एक नयी उत्सुकता जरूर जगाती हैं. 'उत्सुकता जगाती हैं' यह बात हम जानबूझकर कह रहे हैं. हमारे देश में आज भी कई ऐसे पढ़े-लिखे लोग मिल जाते हैं, जो यह जानने पर कि रवींद्रनाथ चित्र रचना भी करते थे, अचरज प्रकट करते हैं. रवींद्रनाथ के साहित्यकार और चित्रकार रूप में कौन-सा 'बड़ा' या 'छोटा' है, इस बहस को छोड़ भी दें (और यह बहस तो है भी फिजूल-सी ही, क्यों कि कविता, संगीत, नाटक और कला—सभी से आप्लावित उनके व्यक्तित्व का बंटवारा आसान नहीं है.) तो भी इतना तो पाते ही हैं कि उनके साहित्यकार रूप की चर्चा ने उनके चित्रकार-रूप की चर्चा को कुछ ढककर जरूर रखा है. और कहने तथा याद रखने की बात यही है कि रवींद्रनाथ का चित्रकार-रूप भी असाधारण था.

रवींद्रनाथ ने चित्र-रचना की शुरुआत बहुत बाद में जाकर की थी—1928 में जब वह 67 वर्ष के थे लेकिन एक बार जब शुरुआत हुई तो ऐसा लगा, जैसे कोई बांध टूट गया हो. रवींद्रनाथ ने सैकड़ों की संख्या में चित्र बनाये—उन्होंने एक रचनात्मक उन्माद में चित्र-रचना की. कहते हैं कि रवींद्र-

उन्होंने एक रचनात्मक उन्माद में चित्ररचना की!

■ प्रयाग शुक्ल

नाथ ने कैनवास पर तैलरंग से काम इसलिए नहीं किया कि तैलरंगों को सूखने में देर लगती थी और चित्र-माध्यम में अपनी अभिव्यक्ति के लिए उन्हें ऐसी कोई 'प्रतीक्षा' भी असह्य लगती थी. उनका अधिकतर काम कागज पर ही—स्याही, पेंसिल, जलरंगों से बनाया हुआ है. कई बार उन्होंने रंग स्वयं तैयार भी किये. यों तो रवींद्रनाथ के चित्रों की कई विशेषताएं हैं, लेकिन एक उल्लेखनीय बात उनके चित्रों के संदर्भ में यह है कि इन चित्रों में उन्होंने जीवन का कोई 'आदर्शीकृत' रूप नहीं रखा.

इन चित्रों में रवींद्रनाथ अतल्मन की गहराइयों में ही उतरते चले गये और बाह्य जगत के रूप में भी किसी 'आदर्श सांचे' में प्रकट न होकर चित्र-विचित्र मुद्राओं में प्रकट हुए या इसे इस तरह कहें कि बाह्य जगत के रूपों के भी अतलमन से उन्होंने अपना सरोकार रखा.

इसका सबसे अच्छा उदाहरण 1937 में बनाया गया उनका चित्र 'एक बगीचे में पांच आदमी' है. इसमें आकृतियां किसी अनुभव से जितना आंदोलित लगती हैं, उतना ही बगीचा भी. ध्यान देने की बात यह है कि 'बगीचा' आकृतियों के अनुभव से आंदोलित न होकर 'निज' के किसी अनुभव से आंदोलित है. जब हम यह कहते हैं कि रवींद्रनाथ ने अपने चित्रों में जीवन का कोई आदर्शीकृत रूप नहीं रखा (यहां गौर कर सकते हैं कि साहित्य में उन्होंने जीवन का कमोबेश आदर्शीकृत रूप रखा.) तो हमारा यह आशय नहीं है कि चित्रों में उन्होंने जीवन को जस-का-तस स्वीकार कर लिया, बल्कि यह है कि जीवन, प्रकृति और मृत्यु के रहस्यों-मर्मों-रूपों से उन्होंने एक गहरी मुठभेड़ की, एक कलाकार की गहरी मुठभेड़.

रवींद्रनाथ के चित्रों में आकृति-रूप हैं, वनस्पतियां हैं, चित्र-विचित्र जीवाकृतियां हैं—उनकी अपनी ही विशिष्ट शैली में. और अपने ही विशिष्ट रंगों में. रवींद्रनाथ के रंगों का 'प्रकाश' विलक्षण है. यहां खुली सुबह या दोपहर का 'प्रकाश' नहीं है. न ही शाम के धुंधलके का—वह मंद, लेकिन अपनी ही 'चमक' वाला प्रकाश है. वह मार्ग रंग-मर्मों के निकट से निकटतर हमें ले जाता है.

■

इसमें आंशिक सच्चाई है कि रवींद्रनाथ के पहले 'चित्र' वे थे, जो पंक्तियों की काट-पीट से अनायास बन जाते थे, लेकिन इनका रवींद्रनाथ के बाद वाले चित्रों से कोई सीधा संबंध नहीं है. ठाकुर को अभिव्यंजनावादी (एक्सप्रेसनिस्ट) चित्रकार भी कहा गया है, लेकिन कई बार ऐसा लगता है मानों इसी सामान्य तर्क से कि यूरोप में उन्होंने अभिव्यंजनावादी चित्रकारों का काम देखा था. जैसा कि हमने पहले कहा, रवींद्रनाथ ने तो अपने ही एक रचनात्मक उन्माद में काम किया था और शांतिनिकेतन में ही ठीक उनकी

आंखों के सामने फली-फूली बंगाल शैली से भी उनके चित्रों ने कुछ भी नहीं लिया. 1939 में उन्होंने कहा था: "मेरी पेंसिल बार-बार टूट जाती है. कारण यही है कि मैं अपनी सोच के साथ उसे काफी तेज दौड़ाता हूं. मुझे लगता है कि स्वयं मेरे मन में तेज दौड़ने की प्रवृत्ति है." और 1939 में ही उन्होंने कहा था: "मेरे अधिकतर चित्रों में हंसी की कमी है. मैं नहीं जानता, ऐसा क्यों है, क्योंकि मैं तो हंसना-हंसाना खूब पसंद करता हूं, शायद गहरे में कहीं मुझमें पीड़ा ही है."

रवींद्रनाथ ने कभी-कभार की ऐसी टिप्पणियों के अतिरिक्त अपने चित्रों की और कोई व्याख्या नहीं की. वह चित्रों के शीर्षक देना भी पसंद नहीं करते थे. 1941 में उन्होंने एक बात और कही थी, जो गौरतलब है: "यथार्थ हमारे चारों ओर है. जब मैं कलाकार की आंख से इस यथार्थ को देखता हूं तो चीजें जैसे एक और तरह से 'खुलती' हैं. मैं उनके इस और तरह से खुलने को ही अपने चित्रों में पकड़ने का प्रयत्न करता हूं—आप मेरे चित्रों को यथार्थवादी कहें या नहीं."

■

रवींद्रनाथ ठाकुर के जीवन-काल में ही उनके चित्रों की कई प्रदर्शनियां यूरोप और अमरीका में आयोजित हुई थीं—और कुछ स्वदेश में. और उनके जीवन काल में ही देश-विदेश के कला-जगत में उन्हें अत्यंत महत्वपूर्ण चित्रकार के रूप में देखा गया था. इसी वर्ष राष्ट्रीय आधुनिक कला संग्रहालय ने उनके अनेक चित्रों की एक बड़ी प्रदर्शनी आयोजित की. इस प्रदर्शनी को देखकर बहुतेरे कलाकारों-लेखकों और अन्य दर्शकों ने यह टिप्पणी की कि 'रवींद्रनाथ की कला का फलक इतना बड़ा और गहरा है कि बार-बार देखने पर भी उसमें नये अर्थ खुलते हैं.' □

नन्हा मालिक

• रवींद्रनाथ ठाकुर

वात्सल्य का वह कौन-सा रूप था कि रायचरण अपने बेटे को मालिक के बेटे के रूप में पालता रहा और अपना सब कुछ उस पर कुरबान कर दिया? पर नतीजे में उसे क्या मिला? क्यों होता है ऐसा कि व्यक्ति अपने आपको त्याग और कर्तव्य की उस ऊंचाई पर पहुंचकर पाता है कि उसका अपना कुछ भी नहीं है, वह सब कुछ गंवा बैठा है.

बारह साल की उम्र में ही रायचरण इस घर में नौकर के रूप में आ गया था. वह उसी जाति का था, जिस जाति के मालिक थे. उसे मालिक के छोटे बेटे की देखभाल का काम सौंपा गया था. समय बीतने के साथ-साथ वह बच्चा रायचरण की गोद में खेलता हुआ बड़ा होकर स्कूल जाने लगा. फिर वह कालेज गया और उसके बाद उसे न्यायिक सेवा में प्रवेश मिल गया. विवाह तक वह केवल रायचरण की देख-रेख में रहा, पर जब एक मालकिन भी घर में आ गयी तो रायचरण के लिए अब एक के बजाय दो मालिक हो गये थे. उसका सारा प्रभाव क्षेत्र नयी मालकिन के पास पहुंच गया था. नवागंतुक ने उसका स्थान ले लिया था. अनुकूल के बेटा पैदा हुआ तो रायचरण की भरपूर देखरेख ने बालक को पूरी तरह उसी को सौंप दिया. वह उसे अपनी बांहों में उछालता, बच्चों की तुतलाती भाषा में उससे बातें करता. उसके चेहरे को अपने चेहरे से सटा लेता और फिर वह हंस पड़ता.

अब बच्चा घुटनों के बल चलने लगा था और इस तरह चलते हुए देहरी भी पार कर लेता था. जब रायचरण उसे पकड़ने के लिए आता तो वह शैतानी से चीखता और लपकता हुआ उनसे दूर भागने की कोशिश करता. उसकी तेज बुद्धि देखकर रायचरण अपनी मालकिन से बड़े रहस्यपूर्ण ढंग से कहता, "आपका बेटा एक दिन जज बनेगा."

नये-नये चमत्कार अपने नियत समय पर होते रहे. जब बच्चे ने अपने पैरों के सहारे चलना सीखा तो रायचरण के लिए वह मानव इतिहास के महान क्षण थे. जब वह अपने पिता को बा-बा, मां को मा-मा और रायचरण को चा-ना कहता तो रायचरण की खुशियों की कोई सीमा न रह जाती. वह सारी दुनिया को यह खबर सुना देता.

थोड़े दिन बाद रायचरण से कई तरह की मांगें की जाने लगीं. उदाहरण के लिए उसे दांतों के बीच लगाम थामे घुटनों और कुहनियों के बल चलते हुए घोड़ा बनना पड़ता. उसे नन्हे पहलवान के साथ कुश्ती लड़नी पड़ती और यदि वह पीठ जमीन पर टेके हार न मान लेता तो चीख मारते हुए जोर से रोने की आवाज आना निश्चित था.

इन्हीं दिनों अनुकूल बदली होकर पद्मा के किनारे एक गांव में आ गया. बरसात का मौसम था. दिन-ब-दिन बारिश तेज हो रही थी. नदी किसी भूखे अजगर की तरह झोंपड़ियों, गांवों, मक्का के खेतों को निगलती हुई, आसपास के क्षेत्र को अपने बाढ़ के पानी में डुबाती चली जा रही थी.

एक दिन दोपहर बाद बारिश थम गयी. बादल तो थे पर ठंड थी और दिन चमकदार था. रायचरण का नन्हा तानाशाह भला ऐसी सुंदर शाम को घर के भीतर कैसे रहता. आदरणीय महोदय लपककर अपनी बच्चा गाड़ी में चढ़ गये और रायचरण उसे धकेलता हुआ नदी के किनारे के धान के खेतों में ले आया. खेतों में कोई नहीं था और न नदी में ही कोई नाव थी. नदी के पार पश्चिम में बादलों में दरार पड़ी हुई थी. अस्तगामी सूर्य का शांत उत्सव अपनी रक्तिम आभा की छटा चारों ओर बिखेर रहा था. उस शांति के मध्य अचानक बालक ने उंगली से इशारा करते हुए कहा, "चा-ना, वो फूल!"

सामने फैले हुए कीचड़ के बीच मेंफूलों से आच्छादित एक

कदंब का वृक्ष खड़ा था. बालक उसको ललचायी आंखों से देख रहा था. रायचरण उसका मतलब समझ गया. अभी कुछ ही दिन पहले तो उसने इन फूलों से एक छोटी-सी बच्चा गाड़ी बनाकर दी थी और पूरे दिन वह उसे डोरी से पकड़कर खींचता रहा था. उस दिन रायचरण को अपने मुंह में लगाम नहीं डालनी पड़ी थी, पर उस शाम उसकी इच्छा घुटनों-घुटनों कीचड़ पार करके फूलों को लाने की नहीं थी. इसलिए जल्दी से उसने दूसरी ओर अपनी उंगली उठाते हुए कहा था, "अरे देखो बेबी, देखो, वह पक्षी देखो." और इस तरह की बातें करते हुए वह बच्चा गाड़ी को खींचता हुआ पेड़ से दूर ले जाने लगा.

पर बच्चा भी तो भावी जज था, इतनी आसानी से बहकावे में कैसे आ जाता. और फिर उसकी नजर को आकर्षित करने के लिए और कोई चीज भी तो नहीं. किसी काल्पनिक चिड़िया के नाम से भला कब तक बहकाया जा सकता था.

नन्हे मालिक ने हठ पकड़ ली थी और रायचरण की अक्ल जवाब देने लगी थी. "ठीक है बेबी," उसने हार मान ली, "तुम गाड़ी में चुपचाप बैठो और मैं तुम्हारे लिए वह सुंदर फूल लेकर आता हूं. याद रखना, पानी के पास मत चले जाना."

यह कहने के साथ-साथ उसने अपनी धोती घुटनों के ऊपर चढ़ायी और कीचड़ में पेड़ की तरफ बढ़ने लगा.

जैसे ही रायचरण गया, उसके नन्हे मालिक ने देखा कि नदी तेजी से छींटे उछालती और गुरगुराती हुई बह रही थी. लगता था जैसे अवज्ञाकारी नन्हीं-नन्ही लहरें हजारों बच्चों की हंसी हंसते हुए किसी बड़े रायचरण से दूर भाग रही हों. उनकी इस शैतानी से उसका नन्हा दिल भी उत्तेजित और बेचैन हो गया. वह चुपके से बच्चा गाड़ी में से नीचे उतरा और ठुमकता हुआ नदी की ओर बढ़ने लगा. चलते हुए उसने एक छोटी-सी छड़ी भी उठा ली और किनारे की ओर झुकता हुआ उसे पानी में झुलाने लगा, जैसे मछली तैर रही हो. नदी की शैतान परियां रहस्यमय आवाजें निकालती मानों उसे अपने क्रीड़ागृह में आमंत्रित कर रही थीं.

रायचरण अंजुलीभर फूल तोड़कर, उन्हें अपनी धोती के कोने से बांधकर अपने चेहरे को हंसी से फैलता हुआ नीचे उतरा, पर जब वह बच्चा गाड़ी के पास पहुंचा तो वहां कोई नहीं था. उसने चारों ओर देखा, पर कहीं कहीं कोई न दिखा. अपने टूटे हुए दिल की गहराइयों से उसने एक दहला देनेवाली चीख भरी, "मालिक, मालिक, छोटे मालिक!"

पर किसी भी आवाज ने 'चा-ना' कहकर जवाब न दिया. उसकी पीठ के पीछे कोई बच्चा शैतानी से नहीं हंसा. उसकी वापसी पर किसी खुशीभरी किलकारी ने उसका स्वागत न किया. केवल नदी बह रही थी—छींटे उछालती, गुर्राती हुई, जैसे वह कुछ जानती ही न हो और बच्चे की मृत्यु जैसी मानवीय घटनाओं पर ध्यान देने का उसे समय ही न हो.

शाम के बीतने के साथ ही रायचरण की मालकिन बहुत चिंतित हो गयी. उसने ढूंढने के लिए चारों ओर आदमी भेज दिये. वे हाथों में लालटेन लिये निकल पड़े और आखिरकार पद्मा के किनारे आ पहुंचे. वहां उन्होंने देखा कि रायचरण किसी तूफानी हवा की तरह खेतों में इधर-उधर भाग रहा था और चीख रहा था—"मालिक, मालिक, नन्हे मालिक, मालिक!"

आखिर वे रायचरण को घर ले आये. आते ही वह अपनी मालकिन के चरणों पर लोट गया. उन्होंने उसे हिलाया, उससे सवाल पूछे. बार-बार पूछा कि उसने बच्चे को कहां छोड़ दिया, पर वह एक ही बात कह रहा था कि वह कुछ नहीं जानता. हालांकि लोगों का विचार था कि बच्चे को पद्मा निगल गयी है, फिर भी दुविधा बनी हुई थी. उस शाम को बनजारों का एक दल गांव के बाहर देखा गया था और कुछ लोगों को उन पर शक हो रहा था. दुखियारी मां को तो रायचरण तक पर शक हो रहा था कि बच्चे को वही चुराकर ले गया है. वह रायचरण को बुलाकर एक तरफ ले गयी और बड़ी विनय से कहा, "रायचरण, मेरे बच्चे को मुझे वापस दे दो! वापस दे दो मेरे बच्चे को! जितने पैसे चाहो मांग लो, पर मेरे बच्चे को वापस दे दो!"

अनुकूल ने अपनी पत्नी को समझाने की बहुत कोशिश की कि रायचरण पर शक करना उस पर अन्याय होगा. वह कह रहा था, "भला वह यह अपराध क्यों करेगा?"

मां का एक ही जवाब था, "बच्चे के शरीर पर सोने के आभूषण थे, कौन जानता है. . .?"

इसके बाद तर्क करना असंभव था.

▣

रायचरण वापस अपने गांव लौट गया. अब तक उसके कोई बच्चा नहीं था और न अब बच्चे होने की कोई आशा थी, पर एक ही साल बाद उसकी पत्नी ने एक बच्चे को जन्म दिया और मर गयी.

नवजात शिशु को देखते ही पहली नजर में तो रायचरण के दिल में अप्रसन्नता के ही भाव आये. उसके दिमाग के भीतर कहीं छिपी हुई अप्रसन्नता इस बात के लिए भी थी कि यह उसके नन्हे मालिक की जगह लेने के लिए अनधिकृत रूप से आया है, पर धीरे-धीरे रायचरण के दिमाग में एक परिवर्तन आ गया. एक विचित्र बात हुई. अब यह बच्चा घुटनों के बल चलने लगा था और चेहरे पर शैतानी मुस्कान लिये देहरी पार करने लगा था. अपने को बचाते हुए देहरी पार करने की उसकी चालाकी बड़ी मोहक थी. उसकी आवाज, उसकी हंसी और आंसू, मुद्राएं—सब बिल्कुल नन्हे मालिक जैसी ही थीं.

फेलना (रायचरण की बहन ने नये बच्चे को यही नाम दिया था.) अब बोलने लगा था. वह तुतलाती बोली में 'बा-बा' 'मा-मा' कहना सीख गया था. रायचरण ने जब उन चिर-परिचित ध्वनियों को सुना तो रहस्य खुल गया. नन्हा मालिक अपने 'चा-ना' के मोह का भूल नहीं पाया, इसलिए उसने उसके ही घर में फिर से जन्म ले लिया है.

रायचरण के मन में इस बात के पक्ष में ये तर्क थे, जिन पर विवाद हो ही नहीं सकता.

1. नये बच्चे का जन्म नन्हे मालिक की मृत्यु के बाद हुआ.
2. प्रौढ़ावस्था में आकर उसकी पत्नी भला एक बच्चे को कैसे जन्म दे देती.

3. नया बच्चा ठुमकता हुआ चलता है और 'बा-बा' तथा 'मा-मा' पुकारता है. ऐसा हर चिह्न उसमें मौजूद है, जो उस भावी जज में था.

तब अचानक रायचरण को उसकी मां का वह भयानक आरोप याद आया. "आह," उसने आश्चर्य में भरकर कहा, "मां का दिल बिल्कुल ठीक सोचता है. वह जानती थी कि मैंने उसके बच्चे को चुरा लिया है." एक बार जब वह इस निष्कर्ष पर पहुंच गया तो उसका मन अतीत में की गयी अपनी लापरवाही के प्रति पश्चाताप से भर आया. अब उसने अपने आपको तन और मन से नये बच्चे के प्रति समर्पित कर दिया और उसका समर्पित सेवक बन गया. वह उसका पालन वैसे ही करने लगा, जैसे अमीर व्यक्ति के बेटे का होता है. वह उसके लिए एक बच्चा गाड़ी ले आया. पीली साटन की वास्कट और सोने की जरी का काम की हुई टोपी भी बनवा दी. उसने अपनी मृत पत्नी के सोने के आभूषणों को गलवाकर बच्चे के लिए सोने के बड़े घुंघरू बनवा दिये. वह उसको पड़ोस के बच्चों के साथ नहीं खेलने देता था और उसका रात और दिन का एकमात्र साथी खुद ही बन गया था.

फिर वह समय आया, जब बच्चा स्कूल जाने लगा. रायचरण ने अपनी जमीन का छोटा-सा टुकड़ा भी बेच दिया और फिर कलकत्ता आ गया. यहां आकर बड़ी मुश्किल से नौकरी मिल पायी. फेलना को उसने स्कूल में भर्ती करा दिया. उसे अच्छी से अच्छी शिक्षा, अच्छे से अच्छा भोजन और अच्छे से अच्छे कपड़े दिलाने में उसने कोई कसर न उठा रखी. इस दौरान खुद उसने एक मुट्ठी चावल खाकर गुजारा किया.

इसी तरह से बारह साल बीत गये. लड़का अब अच्छी तरह से लिखने और पढ़ने लग गया था. वह गोरा-उजला, तंदुरुस्त और देखने में सुंदर था. वह अपने व्यक्तित्व पर बहुत ध्यान देता था. उसे बहुत टीप-टाप से रहने की आदत पड़ गयी और फिजूलखर्च हो गया. वह रायचरण को तो पिता की नजर से देखता ही नहीं था, क्योंकि रायचरण ने उसे पिता का दुलार तो दिया, पर व्यवहार किसी नौकर के रूप में ही किया. एक और गलती यह हुई कि उसने यह बात गुप्त ही रखी कि वह इस बच्चे का पिता है.

जहां फेलना रहता था, उस हॉस्टल के लड़के रायचरण के ग्रामीण आचार-व्यवहार की मजाक उड़ाते और अपने पिता के पीठ पीछे तो फेलना भी उनके मजाक में शामिल हो जाता. पर अपने दिल के भीतर सभी छात्र उस बूढ़े आदमी के भोलेपन और सरल हृदय को प्यार करते थे और फेलना तो उसे बहुत प्यार करता था. पर जैसा कि मैं पहले भी बता चुका हूं, इस प्यार में एक तरह की कृपा भी शामिल थी.

रायचरण धीरे-धीरे बूढ़ा होता चला गया और उसका वर्तमान मालिक उसके काम में लगातार त्रुटियां देख रहा था. वह बालक के लिए खुद भूखा रह रहा था. वह शारीरिक रूप से कमजोर हो गया और काम के लायक नहीं रह गया. वह भूलने लगा और उसका दिमाग भी मंद हो गया, पर उसका मालिक तो उससे पूरे नौकर के काम की अपेक्षा रखता था और गलतियां बर्दाश्त नहीं करता था. जमीन बेचने से जो पैसा रायचरण को मिला था, वह भी खत्म हो चला था. लड़का अपने कपड़ों के लिए शिकायत करता और ज्यादा पैसे मांगता.

▣

रायचरण ने फैसला कर लिया. जहां नौकरी कर रहा था, नौकरी छोड़ दी. बचे हुए थोड़े से पैसे फेलना को दिये और उससे कहा, "मुझे अपने घर, गांव में कुछ जरूरी काम है. जल्दी ही लौट आऊंगा."

ईश्वर और सृजन

▣ रोम्यां रोलां

पच्चीस साल पहले की बात है. मैं सुबह के समय घूमता हुआ एक गिरजे के सामने से गुजरा. पादरी प्रवचन पढ़ रहा था :

"ईश्वर! हमारे शत्रुओं का नाश करो, अधर्मियों के लिए नरक का द्वार खोल दो, हमारे देश को सुख-संपदा से भर दो, हमारे सम्राट को दिग्विजयी बनाओ. . ."

आज एक चौथाई सदी बीतने पर भी हमारे गिरजाघरों में लगभग इसी प्रकार के प्रवचन पढ़े जाते हैं. उनके खयाल से मेरे मन में विद्रोह की आंधी उठती है और मैं सोचता हूं : कैसा है यह प्यारा ईश्वर? वह दया-सहानुभूति का ईश्वर नहीं, वह अनंत प्रेम का ईश्वर नहीं, बल्कि वह हिंसा का ईश्वर है, रक्तपात का ईश्वर है, जो दो-दो विश्वयुद्धों को जन्म देकर शैतान की हंसी हंसता है.

पिछले पच्चीस सालों से मैं उस ईश्वर से घृणा करता आ रहा हूं और अपनी कल्पना में एक ऐसे ईश्वर को साकार करता रहा हूं, जो मनुष्य के अपार गौरव और महानता का प्रतीक हो. उस ईश्वर की खोज में मैंने संसार के सभी नये-पुराने दर्शन शास्त्र पढ़े हैं, परंतु मुझे संतोष नहीं मिला. हां, हिंदुओं का वेदांत पढ़ने पर मुझे जरूर कुछ संतोष हुआ है और उसने मेरी कल्पना के ईश्वर को साकार किया है. हिंदू-दर्शन कहता है : "मुझे घृणा से मुक्त कर दो, मुझे अजातशत्रु बनाओ और भावनाओं के तूफान में मुझे इस प्रकार अचल-अटल बनाओ कि मैं सबको समझ सकूं और प्यार कर सकूं. . ."

इस प्रार्थना का महत्व समझते हुए उपनिषद कहते हैं : "हर जगह आनंद का केवल एक ही माध्यम है; सृजन. सृजन के सम्मुख अन्य सभी सुख छाया के समान हैं—वह सृजन चाहे शरीर के प्रसंग में हो, चाहे आत्मा के प्रसंग में. सृजन हमें इस शरीर की कैद से मुक्त करता है और जीवन को तूफानी लहरों में धकेलकर हमें देवता बनाता है, क्योंकि सर्जक एक ऐसा शिल्पी है, जिसके सामने सर्वभक्षक काल ने भी हमेशा हार मानी है. □

● प्रस्तुति : सुखबीर

...चल पड़ा, जहां इन दिनों अनुकूल मैजिस्ट्रेट था. अनुकूल की पत्नी को बेटे का गम अभी तक खाये जा रहा था. उसके और कोई बच्चा नहीं हुआ था.

दिन भर के कचहरी के काम से थका अनुकूल एक दिन, आराम कर रहा था. उसकी पत्नी किसी फकीर से काफी ज्यादा कीमत पर कोई बूटी खरीद रही थी, जिसके बारे में वह बता रहा था कि इससे बच्चा जरूर होगा. बरामदे से नमस्कार का स्वर सुनाई दिया. रायचरण था. अपने पुराने नौकर को देखा तो अनुकूल का दिल भर आया. उसने उससे कई तरह के सवाल पूछे और वापस अपनी नौकरी पर आने का कहा. रायचरण धीरे-से मुस्कराया और बोला, "मैं अपनी मालकिन को प्रणाम करना चाहता हूं."

अनुकूल रायचरण को घर के भीतर ले गया. वहां मालकिन ने उसका स्वागत उस गर्मजोशी से नहीं किया, जैसे मालिक ने किया था. रायचरण ने इस पर कोई ध्यान नहीं दिया और हाथ जोड़कर कहा, "आपके बेटे को पद्मा ने नहीं चुराया था, चोर तो मैं था."

अनुकूल चिल्ला-सा उठा, "हे भगवान! क्या? कहां है वह?" रायचरण ने जवाब दिया, "वह मेरे साथ है. मैं परसों उसे लेकर आऊंगा."

इतवार का दिन था. कचहरी आज लगती नहीं थी. दोनों पति-पत्नी सुबह से ही टकटकी लगाये बैठे थे. दस बजे वह आया, फेलना का हाथ थामे.

अनुकूल की पत्नी ने बिना कुछ पूछे लड़के को अंक में भर लिया. खुशी में वह अपने काबू में नहीं रह गयी थी. कभी हंसती, कभी रोती, कभी उसे छूकर देखती, उसके बालों, उसके माथे को चूमती. भूखी, उत्सुक निगाहों से उसे ताकती. लड़का दिखने में अद्भुत सुंदर था और अमीर आदमी के बेटे जैसा लग रहा था. अनुकूल का मन भी मोह से भर आया.

फिर भी उसके भीतर बैठे मैजिस्ट्रेट ने पूछ लिया, "क्या तुम्हारे पास कोई सबूत है?"

रायचरण ने कहा, "ऐसे काम का भी कहीं सबूत होता है? केवल ईश्वर ही जानता है कि मैंने आपके बच्चे को चुराया था और दुनिया में कोई नहीं जानता."

जब अनुकूल ने देखा कि उसकी पत्नी किस तरह बेताबी से दुलार रही है तो उसे लगा कि सबूत की बात करना कितना बेमानी है. बुद्धिमानी इसी में है कि विश्वास कर लिया जाये. "पर," उसने गंभीरता से कहा, "रायचरण, तुम यहां नहीं रहोगे."

"मैं कहां जाऊं मालिक?" रायचरण ने हाथ जोड़कर हृदयद्रावक स्वर में कहा. "मैं बूढ़ा हूं. बूढ़े आदमी को कौन नौकर रखेगा?" तो मालकिन ने कहा, "उसे रहने दो. मेरा बच्चा खुश रहेगा. मैं उसे माफ करती हूं."

पर अनुकूल की मैजिस्ट्रेटी चेतना ने उसे अनुमति नहीं दी, "नहीं," उसने कहा, "जो कुछ उसने किया, उसके लिए उसे माफ नहीं किया जा सकता."

रायचरण जमीन पर लेट गया और अनुकूल के पांव पकड़ लिये. "मालिक," वह चिल्लाया, "मुझे यहां रहने दो.

> ## चर्चिल का इतिहास लेखन
>
> चर्चिल का एक प्रकाशक अक्सर सुबह-सुबह उनके निवास पर पहुंच जाता था. पिछले बीस वर्षों से वे अपने युग के अंग्रेजीभाषी लोगों के इतिहास पर काम कर रहे थे. तभी युद्ध छिड़ गया और चर्चिल के दिमाग में युद्धकालीन उत्तेजनापूर्ण स्थितियों और घटनाओं को कई भागों में सिलसिलेवार लिखने का फितूर सवार हो गया. लिहाजा इतिहास-लेखन का काम बीच में ही रोक देना पड़ा.
>
> प्रकाशक इन्हीं दिनों फिर चर्चिल से मिला... पर इस बार चर्चिल ने उसे निराश नहीं किया.
>
> "यह रहा... पूरे चार लाख पचास हजार शब्दों में है... मैं इसे प्रकाशित देखकर खुशी महसूस करूंगा."
>
> जब उनसे पूछा गया कि इस किताब को उन्होंने कहां पर समाप्त किया है तो चर्चिल ने जवाब दिया, "मैंने इसे लिंकन की मृत्यु पर समाप्त कर दिया है. मुझे यही सबसे महत्वपूर्ण हादसा नजर आया!"
>
> सकुचाते हुए प्रश्नकर्ता ने फिर पूछा, "पर हमारे अनुबंध के हिसाब से तो इसे वर्तमान युग तक होना था."
>
> "अरे, लिंकन की मृत्यु भी तो कुछ ही समय पहले हुई है!" चर्चिल के होंठों पर मसखरी मुस्कराहट फैल गयी. □
>
> ● प्रस्तुति : महेश

यह काम करनेवाला मैं नहीं था, ईश्वर था."

"नहीं," उसने कहा, "मैं तुम्हें अनुमति नहीं दे सकता. अब मैं तुम पर विश्वास नहीं कर सकता. तुमने विश्वासघात किया है." रायचरण उठ खड़ा हुआ और बोला, "यह काम करने वाला मैं नहीं था."

"तो फिर यह किसने किया?" अनुकूल ने पूछा.

रायचरण ने जवाब दिया, "मेरी किस्मत ने."

"कोई भी पढ़ा-लिखा आदमी इस सफाई को स्वीकार नहीं कर सकता." अनुकूल अपनी बात पर अड़ा रहा.

जब फेलना ने देखा कि वह एक अमीर मैजिस्ट्रेट का बेटा है, रायचरण का नहीं, तो पहले तो यह सोचकर उसे बहुत गुस्सा आया कि उसे अपने जन्म से मिले अधिकारों से धोखा देकर वंचित रखा गया, पर फिर रायचरण का दुख देखकर उसने दयालुता से अपने पिता से कहा, "पिताजी, इसे माफ कर दीजिए. यदि आप इसे हमारे साथ नहीं रहने देना चाहते तो थोड़ी-सी मासिक पेंशन ही दे दीजिए."

यह सुनने के बाद रायचरण ने एक भी शब्द न कहा. आखिरी बार उसने अपने बेटे के चेहरे पर नजर डाली. अपने पुराने मालिक और मालकिन को प्रणाम किया और बाहर निकलकर दुनिया के असंख्य लोगों के बीच कहीं खो गया.

महीने के अंत में अनुकूल ने उसके गांव कुछ पैसे भेजे, पर पैसे वापस लौट आये. वहां रायचरण नाम का कोई आदमी नहीं रहता था. □

जब रवींद्रनाथ ठाकुर को नोबेल पुरस्कार मिला!

▣ हरिमोहन शर्मा

> **'गीतांजलि' का अंग्रेजी अनुवाद छपते ही दुनिया, खासकर योरोप में धूम-सी मच गयी और उसी पर रवींद्रनाथ को नोबेल पुरस्कार मिल गया. पुरस्कार मिलने की अंतर्कथा के साथ पढ़िए पुरस्कार पाने के बाद का वह हंगामा, जो रवींद्रनाथ के एक भाषण से अचानक उठ खड़ा हुआ था.**

पंद्रह नवंबर, 1913 की बात है. शाम के समय चौपहाड़ी के साल-वन में रवींद्रनाथ ठाकुर अपने सहयोगियों के साथ टहल रहे थे. सहसा उन्होंने कुछ लोगों को शांति निकेतन से अपनी ओर दौड़ते देखा. जब ये लोग उनके पास आये तो कवि ने विस्मय के साथ उन लोगों से पूछा, "क्या बात है?"

लोगों ने उनके हाथ में एक तार पकड़ा दिया. तार में कवि को 8000 पौंड के नोबेल पुरस्कार की प्राप्ति का शुभ संवाद था.

शांत भाव से तार को पढ़कर अपने एक सहयोगी से रवींद्रनाथ ने कहा, "तो नेपाल बाबू, नालियों के खर्चे की चिंता तो दूर हुई, किंतु अब इस पुरस्कार के कारण नयी-नयी चिंताएं जन्म लेंगी. पहली चिंता तो यही है कि एकांत में रहना अब मेरे लिए असंभव हो जायेगा."

रवींद्रनाथ को भले ही यह तार पंद्रह नवंबर को मिला हो, किंतु कलकत्ता निवासियों को रवींद्रनाथ द्वारा इस पुरस्कार की प्राप्ति का समाचार दो दिन पूर्व ही मिल चुका था. सर्वप्रथम इस समाचार को प्रकाशित करने का श्रेय सांध्य पत्र 'एंपायर' को मिला था. समाचार प्रकाशित हुआ. पत्र के संपादक ने उस पर टिप्पणी करते हुए लिखा था, "स्वीडन की अकादमी द्वारा एशिया खंड और इस खंडप्राय देश के साहित्य को विश्व की एक शक्ति के रूप में मान्यता मिली है और उसके एक साहित्यकार को साहित्य का सर्वोत्तम पुरस्कार मिलने का सुअवसर मिला है. इसके अतिरिक्त, एक सत्य यह भी है कि पहली बार 8000 पौंड का पुरस्कार एक ऐसे कवि को दिया जा रहा है, जिसकी अभिव्यक्ति की भाषा पुरस्कार देनेवाले देश की भाषा से भिन्न है."

इस समाचार को सुनकर रवींद्रनाथ के अनन्य भक्त तथा सहयोगी अजित-कुमार चक्रवर्ती गर्व और हर्ष के कारण पहले तो कुछ बोल नहीं पाये और फिर गदगद होकर उनके चरणों में लोटने लगे. रवींद्रनाथ ने उन्हें ऊपर उठाकर गले लगाते हुए कहा, "इसमें इतना हर्ष-विभोर होने की क्या बात है अजित! पुरस्कार जरूर मिला है, लेकिन जीवन से शांति सदा के लिए चली गयी है. देख लेना, अब यह दुनिया मुझे चैन से नहीं बैठने देगी."

और, उनका कहा सही निकला. अगले दिन से ही उन पर बधाइयों की वर्षा होने लगी. दर्शनार्थियों का तांता लग गया. 23 नवंबर, रविवार को कलकत्ता तथा अन्य स्थानों से 600 लोगों का एक दल उनसे मिलने शांति-निकेतन आया. अनेक प्रतिष्ठित तथा सम्माननीय व्यक्ति भी इस दल में सम्मिलित थे.

शांतिनिकेतन के आम्रकुंज में रवींद्रनाथ के सम्मान में डॉ. जगदीश चंद्र बसु की अध्यक्षता में एक सभा आयोजित की गयी. सभी उपस्थित व्यक्तियों की ओर से डॉ. बसु ने सम्मान-पत्र पढ़ा. कवि सत्येंद्रनाथ दत्त ने मंगल-स्तोत्र गाया तथा अनेक वक्ताओं ने रवींद्रनाथ को पुष्पांजलि अर्पित की. ऑक्सफोर्ड मिशन के श्री थॉमस ने कहा, "किपलिंग ने पूर्व और पश्चिम के मिलन को असंभव बताया था, किंतु रवींद्रनाथ ने इस मिलन को संभव कर दिखाया है."

कई दिनों तक सम्मान-समारोह के अवसर पर रवींद्रनाथ ने जो कुछ कहा था, उसके लिए उनकी कटु आलोचना हुई. शांति-निकेतन से कलकत्ता लौटने के बाद, उनके आलोचकों ने समाचारपत्रों के माध्यम से उनकी खूब भर्त्सना की और कई दिनों तक विष-वमन करते रहे. कहनी-अनकहनी सब कही, किंतु आश्चर्य यह था कि इस मौके पर उनके सबसे कटु आलोचक विपिनचंद्र पाल ही उनके सबसे सशक्त समर्थक बनकर सामने आये. पाल रवींद्रनाथ को आधार-हीन तथा हवाई शब्द-जाल बुननेवाला कवि मानकर, उनका उपहास किया करते थे. 'हिंदू रिव्यू' में रवींद्रनाथ के आलोचकों और निंदकों को मुंहतोड़ उत्तर देते हुए पाल ने लिखा, "सम्मान-समारोह के अवसर पर रवींद्रनाथ ने जो कुछ कहा, ठीक कहा. उनके समान कोई भी संवेदनशील तथा भावुक

आदमी ऐसे मौके पर ऐसी ही कठोरता से काम लेता, पर प्रत्ययनेय बुद्धिवालों को रवींद्रनाथ ने खरा और सही उत्तर दिया है."

काफी बवंडर उठा, रवींद्रनाथ के नोबेल पुरस्कार मिलने पर दिये गये भाषण को लेकर, लेकिन एक बार अपने विचार व्यक्त करके रवींद्रनाथ अपने काम में लग गये. अपने सज्जन स्वभाव के अनुसार उन्होंने इस शोर-शराबे की ओर अधिक ध्यान नहीं दिया.

इस समारोह के पश्चात एक महीने की अवधि में गवर्नमेंट हाउस में एक पृथक सम्मान-समारोह का आयोजन किया गया, जिसमें, 28 जनवरी, 1914 को बंगाल के गवंनर लार्ड कारमायकेल ने रवींद्रनाथ को स्वीडन अकादमी से प्राप्त नोबेल पुरस्कार, स्वर्ण पदक एवं सम्मान-पत्र अर्पित किया.

समारोह के पश्चात, कुछ दिन कलकत्ता तथा शांतिनिकेतन में बिताकर स्वास्थ्य तथा शांति प्राप्त करने के उद्देश्य से रवींद्रनाथ फागुन में सियालदह चले गये. वहां उन्होंने 'गीतिमाल' को पूरा किया और 'गीतालि' की रचना आरंभ की. 'गीतांजलि' 1924 में पुस्तकाकार प्रकाशित हुई. 'नैवेद्य' से रवींद्रनाथ की रहस्यवादी कविताओं का जो अध्याय आरंभ हुआ था, उसकी समाप्ति 'गीतालि' में हुई. 'गीतांजलि', जिस पर उन्हें नोबेल पुरस्कार मिला तथा 'गीतिमाल' इसी के बीच की कड़ियां हैं.

नोबेल पुरस्कार के बाद रवींद्रनाथ के सम्मान का सागर लहराने लगा. विश्व के प्रत्येक देश और भारत के प्रत्येक प्रांत ने रवींद्रनाथ और उनके काव्य का परिचय करने की उत्सुकता दिखायी. वे देखने में कैसे हैं, किस ढंग से बोलते हैं, किस ढंग से लिखते हैं, उनका रहन-सहन कैसा है, आदि की जानकारी प्राप्त करने की अभिलाषा की एक प्रबल लहर सारे भारत में दौड़ गयी.

नोबेल पुरस्कार मिलने से पूर्व स्थिति यह थी कि भारत के अन्य प्रांतों के निवासी रवींद्रनाथ के नाम से भी परिचित नहीं थे. उनकी रचनाओं से परिचित होने का तो प्रश्न ही नहीं उठता. अब वे जानने का प्रयास करने लगे, "कौन है रवींद्रनाथ ठाकुर? कहां रहते हैं? 'गीतांजलि' के अलावा क्या उन्होंने कुछ और भी लिखा है?"

बंगाल इस पुरस्कार का समाचार पाकर विस्मय से दंग था ही. उसका सिर अभिमान से ऊंचा हो गया था. लोग आपस में कहने लगे, "अच्छा, ये तो हमारे रोबी ठाकुर हैं. सच तो है, विश्व-काव्य के क्षेत्र में इतनी उच्च प्रतिभा का दान अपने रोबी ठाकुर के अतिरिक्त और कौन दे सकता था?"

रवींद्रनाथ ठाकुर का वह विवादास्पद भाषण

मैं इस सम्मान को कैसे स्वीकार कर सकता हूं?

सम्मान-पत्र के उत्तर में रवींद्र ने कहा, "आपने सम्मान के मधु से भर सुवर्ण-चसक मुझे अर्पित किया है, उसके मधु का स्वाद लेने में मैं असमर्थ हूं और इसके लिए क्षमा-प्रार्थी हूं. मैं सार्वजनिक नेता नहीं हूं, जो अपनी सेवा पर जनता द्वारा इस रूप में मान्यता की मुहर लगने से प्रोत्साहित होकर, अपने कार्य में अग्रसर हो जाता है. मैं तो एक साधारण कवि हूं, जो स्वांतः सुखाय साहित्य का सृजन करता है और लोगों की निंदा किंवा प्रशंसा के प्रति सर्वथा उदासीन रहता है. आज तक मुझे सम्मान के स्थान पर अपमान, बधाई के स्थान पर कटु आलोचना ही मिली है, किंतु उसे शांत भाव से सहकर मैं निरंतर अपनी प्रवृत्ति एवं प्रेरणा के अनुरूप साहित्य-सृजन करता रहा हूं और भविष्य में भी करता रहूंगा. वैसे, मुझे यह आश्चर्य अवश्य है कि जिस व्यक्ति का अब तक अपमान और उपहास ही किया जाता रहा था, उसके सिर पर सहसा यह सम्मान का सेहरा क्यों बांधा जा रहा है? क्या इसलिए कि मैं विदेशियों द्वारा सम्मानित हुआ हूं और विदेशी भी मुझे क्यों सम्मानित कर रहे हैं, यह भी मेरी समझ में नहीं आता है. सागर के पूर्वीय तीर पर बैठकर मैं आज तक जिस जीवन-स्वामी के चरणों में भावपुष्प चढ़ाता रहा हूं, उसी ने संभवतः पश्चिमीय तीर पर स्थित होकर उन्हें सहर्ष स्वीकार किया है. इसी को मैं अपना लाभ मानता हूं. कारण जो भी रहा हो, पर पश्चिम ने सचमुच मुझे सम्मान की माला पहनायी है, किंतु मैं मानता हूं कि इसमें गरिमा उन्हीं की गुण-ग्राहिता की है और मेरी कविता से या मेरे देश से इस सम्मान का संबंध बहुत कम है. मैं यह स्वीकार करने को बिलकुल तैयार नहीं हूं कि नोबेल पुरस्कार की प्राप्ति से मेरे काव्य के गुणों में कोई विशेष वृद्धि हुई है. और इसी कारण, भारत के प्रतिनिधि के रूप में आपके इस सम्मान को भला मैं कैसे स्वीकार कर सकता हूं? आज यह साहस मैं भले ही कर लूं, लेकिन कल क्या होगा? यदि मेरी प्रतिभा के सागर में भाटा आ गया तो मेरी हालत बड़ी दयनीय हो जायेगी.

इसलिए बड़ी नम्रता के साथ मैं यह निवेदन करना चाहता हूं कि इस प्रकार के क्षणिक और औपचारिक सम्मान को स्वीकार करने के स्थान पर मैं कटु तथा दुःसह सत्य का सामना करना ज्यादा पसंद करूंगा. इस अस्थायी प्रोत्साहन के वश में आना उचित नहीं है, ऐसा मुझे लगता है. मेरी कविताओं के वास्तविक प्रशंसकों से असली प्रोत्साहन मुझे पहले ही प्राप्त हो चुका है और उनके अकृत्रिम स्नेह के प्रति मैं उनका कृतज्ञ हूं. उनमें से अनेक यहां उपस्थित हैं, यह मेरे लिए हर्ष का विषय है, किंतु सार्वजनिक रूप से सम्मानित होने योग्य कोई विशिष्ट कार्य मेरे द्वारा हुआ है, ऐसा मैं नहीं मानता.

जिसकी कृपा से निंदा, सराहना में, अप्रतिष्ठा, प्रतिष्ठा में और जीवन के शूल, पुष्पों में परिवर्तित हो जाते हैं, उस जीवन-स्वामी के चरणों में आज मेरी यह प्रार्थना है कि भविष्य में जब इस प्रकार के क्षणिक तथा औपचारिक सम्मान मुझे आतंकित करें, तब वे मुझे अपने विशाल बाहुओं में भरकर मेरी रक्षा करें, क्योंकि ऐसे सम्मानों के आक्रमणों से वे ही मेरी सुरक्षा कर सकते हैं." □

नोबेल पुरस्कार की प्राप्ति के बाद रवींद्रनाथ पर योरोप और अमरीका से भी बधाइयों की वर्षा होने लगी. उन लोगों ने भी, जिन्होंने कभी कवि की एक पंक्ति भी नहीं पढ़ी थी और कभी उनके साथ कोई व्यवहार नहीं रखा था, रवींद्रनाथ की प्रशंसा के पुल बांधने में कोई कसर बाकी नहीं रखी. रोडेंस्टाइन को लिखे एक पत्र में रवींद्रनाथ ने ठीक ही लिखा—"वास्तव में ये लोग मेरी कीर्ति का ही सम्मान कर रहे हैं, मेरा नहीं".

ये वही रोडेंस्टाइन थे, जिन्होंने रवींद्रनाथ और उनकी 'गीतांजलि' का परिचय पश्चिम के शीर्षस्थ साहित्यकारों से करवाया था और रवींद्रनाथ को नोबेल पुरस्कार मिलने की भूमिका तैयार की थी.

▣

एक प्रख्यात चित्रकार होने के अलावा, रोडेंस्टाइन साहित्य-रसिक भी थे. 1912 में 'माडर्न रिव्यू' में उन्होंने सिस्टर निवेदिता द्वारा अनूदित रवींद्रनाथ की अनुपम कथा-कृति 'काबुलीवाला' पढ़ी थी. उससे प्रभावित होकर उन्होंने तुरंत रवींद्रनाथ के भतीजे तथा चित्रकार गगनेंद्रनाथ ठाकुर को पत्र लिखकर इस कथाकृति के रचयिता की अन्य कृतियों के संबंध में पूछताछ की थी.

भारतीय चित्रकला व शिल्प का यथार्थ परिचय प्राप्त करने के उद्देश्य से वे भारत पधारे थे, तब भारतीय कलाओं के भक्त हैवेल के कहने पर कुछ दिन ठाकुर-परिवार में रह चुके थे. उन दिनों गगनेंद्र और अवनींद्रनाथ ठाकुर के साथ कला और साहित्य के बारे में उनकी काफी चर्चा होती थी. उन्हें यह भी याद था कि उस समय एक युवक मौन भाव से उनकी बातें सुनता रहता था, पर चूंकि तब उनका परिचय उस युवक से नहीं कराया गया था, इस कारण वे उसका नाम भी नहीं जानते थे, किंतु जब उन्हें पता चला कि वह मूक, संकोची युवक 'काबुलीवाला' का रचयिता है तो वे विस्मय से दंग रह गये. रवींद्रनाथ से मिलने की उनकी उत्सुकता चरम सीमा पर पहुंची और उन्होंने लंदन में रहनेवाले अमथ लालमेन तथा डॉक्टर ब्रजेंद्रनाथ से रवींद्र को लंदन बुलाने का आग्रहपूर्ण अनुरोध किया.

7 मई, 1912 को वे बंबई से लंदन के लिए रवाना हुए. पहुंचे तो अपने पुत्र तथा पुत्रवधू के साथ होटल में ठहरे, किंतु बाद में रोडेंस्टाइन के घर के पास ही किराये का घर ले लिया.

एक दिन रोडेंस्टाइन के अनुरोध पर उन्होंने सकुचाते-सकुचाते 'गीतांजलि' के अनूदित गीत उन्हें दिखाये. रोडेंस्टाइन ने उनकी खूब सराहना की.

रोडेंस्टाइन ने वे सभी गीत प्रख्यात अंग्रेज कवि यीट्स के पास भिजवा दिये. उनकी टंकित प्रतियां उन्होंने विख्यात साहित्य समीक्षक एवं साहित्यकार ब्रेडले तथा स्टफर्ड ब्रुक के पास भी भिजवा दीं, उनका मर्म जानने के उद्देश्य से. ब्रेडले ने उन्हें पढ़कर तुरंत लिखा: "ऐसा लगता है कि हमारे बीच फिर एक महान कवि का उदय हुआ है." अस्सी वर्षीय इस कवि ने लिखा, "मेरे मन में इन कविताओं के प्रति प्रशंसा के भाव तो हैं ही, मैं उनका कृतज्ञ भी हूं कि उनसे मुझे आध्यात्मिक सहारा भी मिला. सच तो यह है कि मेरे पास उनकी उचित सराहना के लिए उपयुक्त शब्द ही नहीं हैं."

इन दोनों मनीषियों की सम्मतियों से उत्साहित होकर रोडेंस्टाइन ने 30 जून, 1912 को कुछ चुने हुए शीर्षस्थ साहित्यकारों को अपने घर में रवींद्रनाथ की कविताएं सुनने के लिए आमंत्रित किया. इन साहित्यकारों में यीट्स, एज्रा पाउंड, मे सिक्लेयर, एव्हलीन श्रंगहिल, एलिस मेनेल, नेव्हिन्सन, सी. एफ. एंड्रयूज, ट्रेव्लीन आदि का समावेश था.

यह पहला अवसर था, जब विदेशी समाज और भाषा में कविता का गद्यरूप में पाठ हो रहा था. अंग्रेजी में प्रकाशित 'गीतांजलि' मूल 'गीतांजलि' का गद्य रूप ही है. उन कविताओं में अभिव्यक्त भाव और कल्पनाचित्र दोनों ही श्रोताओं के लिए नये थे.

पाठ समाप्त हुआ.

रवींद्रनाथ ने आश्चर्य से देखा, चारों ओर सन्नाटा छाया हुआ था, श्रोता मुग्ध ही नहीं, सम्मोहित भी हो गये थे. कविताओं में अभिव्यक्त कोमल भावनाओं और भावोदात्त कल्पनाओं ने उनकी सुध-बुध ही खो दी थी. वे कैसे कुछ कहते? वे इतने अधिक चकित थे कि उनके पास बधाई देने के लिए भी कोई शब्द न था. फिर भी, जिन दो व्यक्तियों ने सबसे पहले पूरे आदर के साथ अपनी मनोगत सराहना को व्यक्त किया, वे थे सी. एफ. एंड्रयूज और 'एवरीमैन बुक्स ग्रंथमाला' के संपादक अर्नेस्ट रीज. शेष लोग इतना ही कह पाये कि 'गीतांजलि' का प्रकाशन तुरंत और अवश्य होना चाहिए. यीट्स और रोडेंस्टाइन ने घोषणा कि वे दोनों मिलकर स्वयं उसका प्रकाशन करेंगे. 'गीतांजलि' की कुछ प्रतियां सर्वप्रथम इंडिया हाउस की ओर से प्रकाशित हुईं. बाद में ब्रिटेन की चोटी की प्रकाशन-संस्था मैकमिलन कंपनी ने 'गीतांजलि' की सस्ती आवृत्ति प्रकाशित की.

'गीतांजलि' के प्रकाशित होते ही विश्व-साहित्य-जगत में धूम-सी मच गयी. सभी आलोचकों ने उसकी भूरि-भूरि प्रशंसा की और 'गीतांजलि' की प्रतियां हाथोंहाथ बिक गयीं.

10 जुलाई, 1912 को यीट्स ने रवींद्रनाथ के सम्मानार्थ एक होटल में एक प्रतिभोज का आयोजन किया, जिसमें चोटी के साहित्यकार और विद्वान मौजूद थे. सम्मान-समारोह में उपस्थित व्यक्तियों को धन्यवाद देते हुए रवींद्रनाथ ने कहा, "आप लोगों की भाषा से मैं भली भांति परिचित नहीं हूं, अतएव उचित शब्दों में धन्यवाद देने में असमर्थ हूं. मेरे जीवन का यह सबसे सुनहरा दिन है. आप सबने मेरा जो प्रेमपूर्ण स्वागत किया, उससे मैं विस्मित और मुग्ध हूं." □

नोबेल पुरस्कार : अफ्रो-एशियायी देशों के साथ सौतेला व्यवहार क्यों ?

▣ भीष्म साहनी

नोबेल पुरस्कार मिलने पर व्यक्तिगत रूप से कोई लेखक निश्चय ही गौरवान्वित महसूस करता है, पर वास्तव में जबकि उत्कृष्ट लेखक को पुरस्कार दिया जाता है तो स्वयं पुरस्कार ही गौरवान्वित होता है. तालस्तोय को नोबेल पुरस्कार नहीं मिला था, पर इससे ताल्स्तोय के गौरव में कमी नहीं आयी. भारत में यदि रवींद्रनाथ ठाकुर को पुरस्कार नहीं दिया जाता तो उनकी देन का फिर भी ऊंचा ही मूल्य आंका जाता और यदि नोबेल पुरस्कार देने वाली संस्था, उत्कृष्ट लेखकों को पुरस्कार न देकर घटिया राजनीति तथा जोड़-तोड़ का शिकार हो जाती है तो इससे नोबेल पुरस्कार की प्रतिष्ठा को ही आंच आती है.

मैंने वे आंकड़े नहीं देखे हैं जिनसे पता चलता है कि यह पुरस्कार अब तक किन-किन देशों के लेखकों को मिल चुका है. पर जिन लोगों ने इनका अध्ययन किया है वे बताते हैं कि सदा उत्कृष्ट लेखकों को ही यह पुरस्कार मिलता रहा हो, ऐसा नहीं है और पुरस्कार देने वालों ने यह जानने की संजीदगी से कोशिश भी नहीं की है कि कहां पर कौन बढ़िया लिख रहा है. भाषा और अनुवाद की समस्या है जरूर, पर आज यह समस्या असाध्य समस्या नहीं है. ऐसा जरूर जान पड़ता है कि पुराने पूर्वाग्रह भी उनके निर्णयों को प्रभावित कर रहे हैं. उपनिवेशवादी मनोवृत्ति का असर अभी तक बना हुआ है. जिस नजर से अंग्रेजों के जमाने में हमारे यहां भारतीय भाषाओं तथा भारतीय साहित्य को आंका जाता था, उसी नजर से आज भी एशिया, अफ्रीका और लेटिन अमेरिका की भाषाओं और उनके साहित्य को देखा-आंका जाता है. यह कोई नहीं कहता कि दुनिया के सभी हिस्सों में उत्कृष्ट साहित्य ही लिखा जाता होगा और यह भी कोई नहीं कहता कि सभी देशों में साहित्य-सृजन का स्तर एक जैसा है. यह भी संभव है कि एक प्रकार का साहित्य एक भूखंड के लोगों को तो रुचे, पर दूसरे भूखंड के लोगों को न रुचे. जैसे हमारा शास्त्रीय संगीत सभी को समान रूप से प्रभावित नहीं करता. लेकिन उत्कृष्ट क्या है, इसका भी फैसला एक नपा-तुला मानदंड नहीं कर सकता. चूंकि फैज की कविता अथवा फिराक गोरखपुरी की कविता आपकी कसौटी पर खरी नहीं उतरती, इसलिए ये कवि नोबेल पुरस्कार के अधिकारी नहीं बन सकते, या चूंकि अनेक अफ्रीकी देशों में लेखकों ने औपनिवेशिक भाषा को अपनाया है और उसके माध्यम से साहित्य सृजन किया है और चूंकि इनके हाथ में यह माध्यम इतना सक्षम नहीं हो सकता जितना उन देशों के लेखकों के हाथ में जिनकी यह अपनी भाषा है, इसलिए उनसे स्तरीय लेखन की अपेक्षा नहीं की जा सकती, यह भी बात समझ में नहीं आती. मुख्य बात यही है कि अफ्रो-एशियायी देशों के साहित्य की ओर इन महानुभावों का ध्यान ही नहीं गया, और जो गया भी है तो बड़े सतही स्तर पर. यहां पूर्वाग्रह भी काम कर रहे हैं. जानकारी का अभाव भी है, और एक प्रकार की उदासीनता भी, जो सरपस्ती की भावना से पैदा होती है.

क्या नोबेल पुरस्कार समिति का चयन संतुलित, पूर्वाग्रहों से मुक्त और वस्तुपरक है? . . . जिन साहित्यकारों को अब तक यह पुरस्कार मिल चुका है, क्या वे सचमुच अपने समय के उत्कृष्ट लेखक हैं? . . . क्या वजह है कि अफ्रो-एशियायी देशों के प्रति इस दिशा में उदासीन रवैया अपनाया जा रहा है . . .? नोबेल पुरस्कार की राजनीति को रेखांकित करती बहसतलब टिप्पणी—

पर न तो हमारा देश ललचायी नजर से नोबेल पुरस्कार की ओर देख रहा है और न ही संघर्षरत अफ्रीका के देश ही. यदि एशिया और अफ्रीका के लेखकों को यह पुरस्कार दिया जायेगा तो इससे पुरस्कार की ही साख बढ़ेगी. इन लेखकों की मान्यता अथवा लोकप्रियता में कोई अंतर नहीं पड़ने वाला है जो इसे प्राप्त नहीं कर पाते.

पर यदि नोबेल पुरस्कार समिति का चयन संतुलित, पूर्वाग्रहों से मुक्त और वस्तुपरक होगा, तो इसमें संदेह नहीं कि यह संस्था, अंतर्राष्ट्रीय सूझ-बूझ बढ़ाने में तथा विभिन्न संस्कृतियों को एक-दूसरे के अधिक निकट ला पाने में बड़ी सार्थक और मूल्यवान भूमिका निभायेगी. □

क्या नोबेल पुरस्कार पर पश्चिमी देशों की ही इजारेदारी है ?

▣ परिचर्चा : बीर राजा

हर पुरस्कार के पीछे बड़े राष्ट्रों का स्वार्थ होता है. नोबेल पुरस्कार भी इस राजनीति से अछूता नहीं. यह भी सच्चाई नहीं है कि सभी पुरस्कार सही लोगों को ही मिले हैं.

यह भी जग-जाहिर है कि हमेशा से ही अफ्रीका और एशियायी देशों से रंग-भेद तथा आर्थिक पिछड़ेपन के कारण सौतेला व्यवहार हो रहा है. इस स्थिति में इस पुरस्कार के प्रति क्या रुख होना चाहिए! अपनी सरकार का रुख, सत्ता की संस्कृति में कितनी रुचि, हमारी भाषा तथा अंग्रेजी, इन सवालों पर हमारे साहित्यकार किस तरह सोचते हैं, जरा देखिए तो!

शुद्ध राजनीति है : अमृत लाल नागर

जब से यह शुरू हुआ, इसमें ऐसा लगता है ज्यादातर लूट हो जाती है. एकदम शुद्ध राजनीति है, वह भी बड़ी राजनीति. जब से यह पुरस्कार शुरू हुआ तब से यह लूट मची है. रूस में पास्तरनाक को मिल गया. मुझे उनके व्यक्तित्व से कुछ नहीं, लेकिन उन्हें मिलने में थी राजनीति ही. खूब शोर हुआ, पाप सब पर उजागर हो गया. बाद में शोलोखोव को मिल गया. यह तो उस शोर के कारण मिला जो पास्तरनाक को लेकर हुआ था. यह भी राजनीति ही थी.

तालस्तोय को नहीं मिला. बहुत शोर हुआ, सवाल उठे पर उन्हें दिया नहीं. पिछले दिनों मैं स्पेन के एक लेखक का उपन्यास खरीद लाया. पढ़ा, समझ में नहीं आया उसे पुरस्कार क्यों मिला. इस हिसाब से हमारे भगवती प्रसाद बाजपेयी को अब तक दो नोबेल पुरस्कार मिल चुके होते.

स्वीडन एक छोटा देश है. छोटे देशों की हर बात बड़े देशों के इशारे पर चलती है. उनका फैसला वही होगा जो बड़े चाहेंगे. यह फुल पोलिटिकल एंगल से ही भाग्यशाली को मिलता है. शुरू के बरसों में कुछ पुरस्कार अच्छे मिले. जितना हम यूरोप के साहित्य के बारे में जानते हैं उसका रत्ती भर भी वह हमारे बारे में नहीं जानते.

अफ्रीका, चीन में किसको मिला? हां पर्ल एस. बक ने चीन पर लिखा, उसे जरूर दिया.

अफ्रीका में क्या किसी ने लिखा ही नहीं? या वहां लेखक ही नहीं होते. या वहां के साहित्य को पढ़ने के लिए यूरोप वाले अपने मानस को तैयार नहीं कर पाये जैसे कभी बंगाल वालों को यह स्वीकार करने में बरसों लग गये थे कि हिंदी में भी कुछ है—उर्दू वाले भी उर्दू के अतिरिक्त अंग्रेजी को स्वीकार लेंगे, लेकिन हिंदी साहित्य को नहीं.

कभी बाहर लहर थी, हम भारत को समझें. जर्मनी के मैक्समूलर भारत के प्रति लिखते हुए प्रोज में कविता लिखते . . . विलियम जोंस ने बहुत काम किया. वे अलग होकर, हमारे प्रपंचों से दूर होकर लिखते थे. अब यह छूट गया है. टैगोर को पुरस्कार मिला. वह बाहर गये, धनी व्यक्ति थे ईट्स से मित्रता थी, मिले, वह प्रभावित हुआ. उसने अंग्रेजी में अनुवाद किया. जातीय मानव का नाम लिया. असल कारण तो थे बंगाल के आंदोलन. . .अंग्रेजों ने बंगालियों को खुश करना था.

इधर कई बार हमने सुना पंजाब के डा. गोपाल सिंह का नाम भी लिया जा रहा है. अब पंजाब बचाना है तो यही होना है—पुरस्कार ही गंदी राजनीति है. टैगोर यूरोप में कितने मशहूर हैं? रूस के कारण दूसरे हैं. हमारे अंग्रेजी लेखक विदेशी बाजारों में न होने के बराबर बिकते हैं.

हिंदी साहित्य बाहर जाने लगा है. पढ़ा भी जाता है. लेकिन मूल्यांकन नहीं होता. कमी हममें है. हम अपनों से ही नकारे जाते हैं. प्रेमचंद को भी हमने पीटने की कसर नहीं रखी. . . हिंदू थे इसलिए प्रगतिशीलों ने उठा दिया. उन दिनों मुस्लिम नाम बहुत थे. हम किसी को बढ़ाना नहीं जानते, नकारने में अव्वल दर्जे के उस्ताद हैं.

जब हमारे लेखक बाहर जाते हैं, वे अपना ही नुकसान कर आते हैं. सबकी बुराई और अपनी तारीफ. . .अपने ही साहित्य के प्रति उदासीन हैं. और मूल्यांकन नहीं हो पाता. . .

आजादी के बाद हम किस लेखक के बारे में कह सकते हैं कि उसका असर प्रेमचंद, प्रसाद या निराला जैसा है! किसी को उठने ही नहीं दिया गया. फिर बाहर कौन पूछेगा.

अपने देश में अधपकी दृष्टियां हैं. प्रगतिशीलों की सोच प्रक्रिया खत्म हो चुकी है, अपनी अकुलाहट में जो कह जाते हैं उस स्तर को आम आदमी भी क्रास कर गया है.

पुरस्कारों की कोई अहमियत नहीं है. साथ में जो लक्ष्मी आती है वही अच्छी लगती है सबको. बीर राजा, बुरा न मानो हर शाम को मैं 'सर्वउत्तम' पुरस्कार लेता हूं और पुरस्कारों की राजनीति भूल जाता हूं. . .

नोबेल पुरस्कार और अफ्रो एशियायी देश : कुंवर नारायण

पुरस्कारों के पीछे जिस प्रकार की राजनीति रहती है उससे नोबेल पुरस्कार भी मुक्त नहीं लगता. अंतर्राष्ट्रीय स्तर का पुरस्कार है तो अंतर्राष्ट्रीय स्तर की ही राजनीति भी. इस राजनीति में जब अफ्रो-एशियायी देश ही उपेक्षित और शोषित रहे तो फिर उनके साहित्य को कौन पूछता?

राशि और प्रचार बड़ा होने के कारण नोबेल पुरस्कार विश्वविख्यात जरूर है, पर जहां तक साहित्य का सवाल है, उसका चरित्र सचमुच अंतर्राष्ट्रीय कहा जा सकता है इसमें मुझे संदेह है. विश्व क्या, केवल यूरोपीय संदर्भ में भी उसका रवैया बहुत निष्पक्ष और न्यायपूर्ण नहीं रहा. सन् 1967 तक पांच स्वीडी साहित्यकार पुरस्कृत हुए जिनमें से एक भी अंतर्राष्ट्रीय ख्याति का नहीं.

अंतर्राष्ट्रीय ख्यातिप्राप्त तात्स्तोय का नाम बराबर अस्वीकृत होता रहा. तात्स्तोय की मृत्यु 1910 में हुई, तब तक दस साहित्यकार पुरस्कृत हुए जिनमें से आज शायद एक किपलिंग को छोड़कर किसी का भी नाम लेना मुश्किल होगा. गांधी और नेहरू कभी भी शांति-पुरस्कार के काबिल नहीं समझे गये!

सम्माननीय को सम्मानित करके एक पुरस्कार स्वयं भी सम्मानित होता है अन्यथा वह धीरे-धीरे अपनी गरिमा खो देता है. किन्हीं भी कारणों से अगर नोबेल पुरस्कार अफ्रो-एशियायी देशों की प्रतिभाओं को आदर दे सकने में असमर्थ रहा तो यह इन देशों को नहीं पुरस्कार को छोटा करता है.

शॉ और सार्त्र जैसे साहित्यकारों ने इस पुरस्कार को महत्व नहीं दिया तो इससे उनका अपना महत्व नहीं घटा. अफ्रो-एशियायी देश कम से कम इतना तो कर ही सकते हैं कि किसी पुरस्कार के पीछे अगर नीयत साफ नहीं है तो उसे एक उपेक्षक के स्वाभिमान से देखें, एक उपेक्षित की हीन भावना से नहीं.

यह सच्चाई है, अफ्रीकी देशों के साथ शुद्ध रंग-भेद के कारण नोबेल पुरस्कार कमेटी कुछ नहीं कर रही. उन्हें लगता है काला आदमी वह कुछ कर ही नहीं सकता जिससे अंतर्राष्ट्रीय धारायें बनती हैं.

कालों के कला जगत में पश्चिम की रुचि एक तरह से उदारता की रुचि है. काले कैसे रहते हैं, क्या पहनते हैं, क्या खाते हैं कैसे बोंगो बजाते हैं. यह कुछ ऐसे है, जैसे फैशनेबल महिलायें देहाती औरतों की चूड़ियां, लहंगा सीधे पल्ले की धोती को अपनाती हैं.

अफ्रीका के प्रति पश्चिम की सारी समझ ऐनथ्रोपोलाजि (जीवज्ञान) के माध्यम से हुई, एक तरह से म्यूजियम के रूप में . . . जीवन के रूप में स्वीकार नहीं किया. इसीलिए वहां के पर्यटक मिस्र तक आते हैं. कांगो तक नहीं. अफ्रीका की कोई गिनती नहीं. . . वहां कोई संगीतकार, पेंटर, चिंतक या लेखक हो ही नहीं सकता!

पिछली सदी में बहुत से कालों ने यूरोप में जाकर कहा, कला, दर्शन, साहित्य में कत्थई तथा काले लोग बहुत पहले से समृद्ध रहे हैं. वह मानने को तैयार नहीं. उनकी धारणा के अनुसार अरब, दक्षिण एशिया तथा दक्षिण पूर्वी एशिया के इलाके में कुछ नहीं हो रहा. या उन्हें खबर नहीं या वे चाहते नहीं.

जापान एशिया का एक देश ऐसा है. जो कला विज्ञान और दर्शन की अंतर्राष्ट्रीय मुख्य धारा में शामिल है. जापान की शिरकत का कारण कला, और दर्शन का विकसित होना नहीं. अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर जापान की बराबर की आर्थिक चुनौती है, क्योंकि वहां का सिक्का येन, डालर, पाऊंड और मार्क तीनों को चुनौती दे सकता है. इसलिए यूरोपीय सभ्यता जापान को सांस्कृतिक घूस देती है.

हीन भावना स्वयं में है : मुद्राराक्षस

जापान फिलासफी में जीरो है लेकिन यूरोप तथा भारत बहुत अमीर रहे हैं . . . ये बड़े बोल नहीं हैं. अमेरिका की दार्शनिक उपलब्धि यूरोप तथा भारत के मुकाबले में बहुत छोटी है. अमरीकी दार्शनिक पर्स तथा विलयम जेम्स, इनकी हैसियत बरतानिया के स्टुअर्ट मिल से अधिक नहीं.

साहित्य में खुद यूरोप के लोगों ने ही कहा है कि पिछले दस बरसों में पांच ऐसे साहित्यकारों को पुरस्कार मिले जिनकी उपलब्धि यूरोप वालों को ही नहीं मालूम.

पाब्लो नेरूदा की जीवनी पढ़ने से स्पष्ट होता है कि खुद पाब्लो नेरूदा को भी पुरस्कार पाने के लिए कोशिशें करनी पड़ी. पुरस्कार कठिनाई से ही मिला. . . यों अपनी स्थिति कम खराब नहीं. बांग्ला देश, इंडोनेशिया, श्रीलंका, आदि में कौन अच्छे लेखक हैं, यह हम नहीं जानते. भारतीय भाषाओं के बड़े लेखकों के बारे में भी कुछ नहीं जानते. किसी पुरस्कार बाद ही पता चलता है. हमें भी शर्म आनी चाहिए, ऐसी स्थिति में हम चाहते हैं विदेशी हमें जानें.

यह बात साफ करनी बहुत जरूरी है कि नोबेल पुरस्कार अंतर्राष्ट्रीय राजनीति में राष्ट्रों की उपलब्धि है, उसे राष्ट्र ही प्राप्त करता है, व्यक्ति नहीं. भारत जब तक बरतानवी सल्तनत थी तब तक टैगोर और रमन को पुरस्कार मिला, यह उन्हें न मिलकर बरतानिया को दिये गये थे.

आज हमारी सरकार का कहना है कि अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर भारत को बहुत प्रतिष्ठा मिली. यह बात कितनी गलत है इसका नमूना सिर्फ इस बात से मिल सकता है कि अंतर्राष्ट्रीय सांस्कृतिक धारा में भारत की कहीं भी कोई हिस्से-

ारी नहीं. न ही कोई मान्यता है. . . ंतर्राष्ट्रीय संस्कृति से संबंधित राष्ट्र ंघ का जो हिस्सा है उसका पूरा गठन, वरूप और उसके काम देख कर ंदाजा लगाया जा सकता है कि जहां ापान जैसे देश को बड़ा स्थान मिल ाता है वहां भारत बहुत ज्यादा पीछे हता है.

रंगमंच, चित्रकला, संगीत, साहित्य ौर दर्शन इनमें से किसी क्षेत्र में ापान भारतीय उपलब्धियों से पीछे है. स देश की सरकार यह जिम्मेदारी नभाने में नाकाम रही है कि इस देश ी संस्कृति आज भी किन अर्थों में सरे देशों से आगे है. सत्ता स्वयं नहीं ानती कि इस देश में संस्कृति के क्षेत्र ं क्या हो रहा है? कुछ हस्त शिल्प, ुछ नृत्य कलाकार तथा श्रीमती ुब्बा लक्ष्मी—यदि बहुत आगे बढ़ते ं. . .पं. रवी शंकर समझ में आ जाते ा. भगवान दास फिर भी समझ में हीं आते.

इस देश की पूरी व्यवस्था पूंजी वादी ंत्र से ग्रस्त है इसलिए सत्ता का सारा यान एप्लाइड साइंस पर है. क्योंकि न्हीं से उद्योग पनपते हैं, इसीलिए वशुद्ध विज्ञान और विशुद्ध दर्शन, इन ोनों की सरकारी उपेक्षा होती है. न दोनों क्षेत्रों में काम करने वाला पने देश में ही मार खायेगा और ंतर्राष्ट्रीय स्तर पर अपनी ही सरकार ा समर्थन कभी नहीं पायेगा. कुछ ोग नोबेल पुरस्कार के प्रति, साहित्य ं भाषा को कारण मानते हैं और बराकर अंगरेजी में लिखते हैं. यह लत सोच है, इससे कोई लाभ नहीं. जस दिन हमारे देश को अंतर्राष्ट्रीय तिष्ठा मिल जायेगी उस दिन मुद्राक्षस हिंदी में नहीं भोजपुरी या अवधि ं लिखे, नोबेल पुरस्कार कमेटी में ाम सुझाया जाने लगेगा.

जहां तक साहित्य का सवाल है मेरा क्का विचार है जैसे हमारा शास्त्रीय ाहित्य दुनिया का सबसे अच्छा ाहित्य है वैसे ही हमारा आज का ाहित्य भी सबसे अच्छा है. हीनभावना वयं में है.

मैं नोबेल पुरस्कार का ट्रस्टी भर हूं!

▣ विलियम फॉकनर

मुझे लगता है कि यह पुरस्कार व्यक्ति के रूप में मुझे नहीं, अपितु मेरी कृतियों को प्रदान किया गया है, वे कृतियां जिनका सृजन मैंने आजीवन मानवीय आत्मा की यंत्रणा और घोर परिश्रम के बीच किया. यह सृजन न महिमा-प्राप्ति के लिए किया गया था, न धन-प्राप्ति के लिए.

तो, मैं यह मानता हूं कि मैं इस नोबेल-पुरस्कार का एक ट्रस्टी भर हूं. वह एक ट्रस्ट की भांति ही मेरे पास है. जहां तक इस पुरस्कार की राशि का प्रश्न है, मैं उसका उपयोग और वितरण इस पुरस्कार के मूल उद्देश्यों के अनुरूप ही करूंगा. लेकिन, इस पुरस्कार के कारण मेरी जो जयजयकार हुई है, उसका उपयोग मैं एक ऐसे परमोत्कर्ष के रूप में करना चाहूंगा, जो उन तरुण-तरुणियों का लक्ष्य बने, जो आज उसी यंत्रणा के दौर से गुजर रहे हैं, जिससे मैं गुजरा था, जो वैसा ही घोर परिश्रम कर रहे हैं, जो मैंने किया था. यश और सम्मान के जिस शिखर से मैं आज उन्हें संबोधित कर रहा हूं, उसी पर वे एक दिन पहुंचकर आनेवाली पीढ़ी का मार्ग-दर्शन करें, यही मेरी कामना है.

आज हमारी त्रासदी यह है कि जिस सार्विक भय से हम पहले आतंकित रहते थे, और जो पहले हमारे लिए असहनीय था, आज हम उसके अभ्यस्त हो गये हैं, और बिना किसी आशंका के उसे सहन करते जाते हैं. ▣

हमारे साहित्य की पहचान कैसे करेंगे : रामलाल

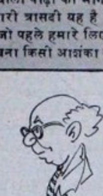

मैं नार्वे और स्वीडन में जा चुका हूं. वहां साहित्यकारों की बहुत कदर है. उन्हें इतनी ज्यादा इज्जत मिलती है कि वहां के लेखकों की तस्वीरें करेंसी नोटों पर छपती हैं. वहां मैं इसलिए गया कि उन्होंने कभी टैगोर को नोबेल पुरस्कार भी दिया.

मैं इस बात से सहमत नहीं कि टैगोर को मिले पुरस्कार के साथ कोई राजनीति जुड़ी थी. यह बात जरूर है, कि टैगोर अमीर आदमी थे, वह खुद बाहर गये उन्होंने अपनी नज्मों के अनुवाद करवाये अपने दोस्तों को सुनाये. उन्होंने अपना परिचय खुद वहां जाकर करवाया. तभी वह पुरस्कार पा गये. पुरस्कार के साथ मुझे कोई राजनीति दिखाई नहीं देती. उनकी अपनी कमेटी है. यह अलग बात है कि उस पर दक्षिण पंथी छाये हों. मुझे वहां बड़े देशों की राजनीति नहीं दिखाई दी. सारी समस्या अनुवाद की है. यही वह माध्यम है जिस से हम अंगरेजी दुनिया के सामने पहुंच सकते हैं. नहीं तो वह हमारे साहित्य की पहचान कैसे करेंगे.! हमारे यहां कोई ऐसी पत्रिका नहीं जो हमारी सब भाषाओं के नुमायंदा साहित्य को अंगरेजी में छापती हो. न ही ऐनथ्रालोजी की तरफ सरकार का ध्यान गया है. दरअसल, हमारी सरकार का यहां की तहजीब और संस्कृति से कोई वास्ता नहीं है और न ही उसे इसकी फिक्र है.

कितना अच्छा साहित्य हमारी इलाकाई भाषाओं में पड़ा हुआ है. हमें इस सिलसिले में कुछ मालूम ही नहीं. हमारे यहां गलत साहित्यकारों का बोल बाला है. वही बाहर पहुंचता है उसे वहां कौन पसंद करेगा! न ही यहां के अंगरेजी लेखक भारत के साहित्य की नुमयंदगी कर सकते हैं. चाहे मुल्क राज आनंद हों चाहे कमला मार्कंडे हों.

पश्चिम ने हमारे साहित्य की खोज नहीं की. एक अफीकी का लिखा उपन्यास 'रूट्स' इन दिनों 'गॉड फादर' से भी अधिक बिक रहा है. अंग्रेजी में लिखा गया इसीलिए. अफ्रीका के लिए रंगभेद की नीति हो सकती है. □

खेतों से टूटे हुए

• जॉन स्टेनबैक

क्या वजह थी कि जो परिवार कल तक धरती के अपने छोटे-छोटे टुकड़ों पर निर्वाह करते थे, अब अचानक काम और रोटी की तलाश में मारे-मारे भटकने लगे? यह मानव का मानव के प्रति षडयंत्र है या विधि का विधान? तेजी से पनप रही सामाजिक-आर्थिक विसंगतियों को उजागर करता उपन्यास "ग्रेप्स ऑव रैथ" का एक अंश—

वे लोग अब प्रवासी बनकर भटकने लगे थे. वे परिवार, जो धरती के एक छोटे-से टुकड़े पर निर्वाह करते थे, जो उस टुकड़े पर जन्मे थे और मर गये थे, जिन्होंने उस टुकड़े की उपज पर गुजारा किया था और अब उस धरती से टूटकर रोजी की तलाश में भटकते हुए आगे बढ़ रहे थे, और उनके सामने पूरा पश्चिमी इलाका फैला हुआ था, जिसमें वे जहां चाहें जा सकते थे. और वे काम की तलाश में भटकते रहे. सड़कें थीं कि लोगों से भरी हुई थीं, और जहां कहीं भी पानी के पोखर थे, उनके गिर्द लोगों ने डेरे डाले हुए थे. उन लोगों के पीछे और लोग आ रहे थे. सभी बड़ी सड़कें लोगों से भरी हुई थीं. उन इलाकों में सीधे-सादे किसान रहते थे, कोई परिवर्तन नहीं आया था. उन्होंने न मशीनों से खेती-बाड़ी की थी, और न ही मशीनों की शक्ति और खतरे को जाना था. उनकी जिंदगी औद्योगीकरण के विरोधाभास में नहीं बीती थी.

और फिर, एकाएक मशीनों ने उन्हें उनके खेतों से तोड़कर एक ओर धकेल दिया, और वे सड़कों पर भटक[ने] लगे. उस जिंदगी ने उन्हें बदल दिया—उन बड़ी सड़कों ने, सड़कों के किन[ारे] लगने वाले कैंपों ने, भूख के भय और खुद भूख ने उन्हें बदल दिया. भू[खे] पेटवाले बच्चों ने उन्हें बदल दिय[ा] और उस खत्म न होने वाले लगात[ार] सफर ने उन्हें बदल दिया. और वै[र-] भाव ने उन्हें बदल दिया, एक सूत्र [में] पिरो दिया, एक दूसरे से जोड़ दिया—उन शहरों के लोगों के वैर-भाव [ने,] जो उन्हें देखकर इस प्रकार हथिया[रों] से लैस हो गये थे, जैसे उन्हें कि[सी] दुश्मन के हमले को रोकना हो, दुश्म[न] से अपने जान-माल की रक्षा कर[नी] हो.

जब बड़ी सड़कें उन भटकनेवा[ले] लोगों से भर गयीं, तो पश्चिम में खत[रा] पैदा हो गया. जायदादवालों को अपन[ी] जायदाद की फिक्र पड़ गयी. जो लो[ग] कभी भूखे नहीं रहे थे, उन्होंने भूखे लोग[ों] की आंखें देखी. जिन लोगों ने कभी किस[ी] चीज की बहुत ज्यादा लालसा नह[ीं] की थी, उन्होंने उन लोगों की आंख[ों] में अभाव की ज्वाला देखी. और शहर[ों] और कस्बों के लोग अपनी रक्षा के लि[ए] इकट्ठे हो गये, और उन्होंने खुद क[ो] यकीन दिलाया कि वे अच्छे लोग है[ं] और उन पर हमला करने वाले बु[रे] लोग हैं, जैसाकि लड़ने से पहले आदमी

[कि]या करता है. उन्होंने कहा, ये लोग [जा]हिल और गंदे हैं, ये लोग चोर हैं [औ]र कुछ भी चोरी कर लेंगे. इन्हें [जा]यदाद और उस पर मनुष्य के [अधि]कारों का कोई ज्ञान नहीं है.

और उनकी यह आखिरी बात सही [थी], क्योंकि जिस आदमी की कोई [जा]यदाद न हो, वह जायदाद पर से [मा]लिक का हक छिन जाने के दर्द को [कै]से समझ सकता है! और अपनी [जा]यदाद की रक्षा करने वाले लोगों [ने] कहा, ये लोग बीमारियां ला रहे हैं, [क्य]ोंकि ये बहुत गंदे हैं. इन्हें हम अपने [स्कू]लों में भर्ती नहीं होने देंगे. ये पराये [हैं.] भला कोई अपनी बहन को किसी [परा]ये मर्द के साथ कैसे जाने दे [सक]ता है!

सो उन स्थानीय लोगों ने अपने दल [बन]ाये, और उन्हें हथियारों से लैस [कि]या—लाठियों से लेकर बंदूकों तक. [यह] धरती हमारी है, बाहर से आये [हैं]! इन लोगों को हम यहां बसने नहीं [देंगे]. और जो हथियारों से लैस थे, [वे] धरती के मालिक नहीं थे. पर वे [खु]द अपने मुंह से धरती के मालिक [क]हलाने लगे थे. और जो क्लर्क रात के [सम]य काम करते थे, वे भी किसी जाय[दा]द के मालिक नहीं थे. और छोटे [दुक]ानदारों के सिर पर कर्ज की रकमें [थीं]. पर कर्ज का भी कुछ महत्त्व होता [है] और नौकरी का भी कुछ महत्त्व होता [है.] क्लर्क सोचता था, मैं हफ्ते के पंद्रह [डा]लर कमाता हूं, पर अगर कहीं इन [लो]गों में से कोई बारह डालर पर काम [कर]ने लग जाये तो? और छोटा [दुक]ानदार सोचता था, भला मैं किसी [ऐ]से व्यक्ति का मुकाबला कैसे कर [सक]ूंगा, जो कर्जदार नहीं है?

और भटकनेवाले लोगों की बाढ़ [आ]ती गयी और भूख उनकी [आं]खों में झलकती रही, और उनकी [ज]रूरतें उनकी आंखों में दिखाई देती [रह]ीं. जब किसी एक आदमी के लिए [को]ई काम निकलता, तो दस आदमी [उसे] पाने के लिए लड़ते, उसे कम [उज]रत में हासिल करना चाहते.

अगर वह आदमी तीस सेंट में काम [कर]ने को तैयार है, तो मैं पच्चीस में बड़ी खुशी से तैयार हूं.

अगर वह पच्चीस में तैयार है, तो मैं बीस में तैयार हूं.

नहीं, मैं करूंगा यह काम, मैं भूखा हूं. मैं पंद्रह सेंट में तैयार हूं.

मैं सिर्फ खाने के बदले में काम करने को तैयार हूं. बच्चे! आप इन बच्चों की हालत देखिए. इन्हें पेड़ों से गिरे हुए फल ही दे दीजिए.

और मैं. . .मैं मांस के एक टुकड़े के लिए काम करने को तैयार हूं.

और यह बहुत अच्छी बात थी. उजरतें नीचे आ रही थीं और कीमतें ऊपर उठ रही थीं. बड़े-बड़े जमींदार खुश थे और वे और ज्यादा इश्तहार बांट रहे थे, ताकि और ज्यादा लोग वहां आयें. और उजरतें और ज्यादा नीचे आने लगीं और कीमतें और ज्यादा ऊपर उठने लगीं. और अब कुछ ही समय समय में फिर से खेत-मजदूर पैदा होने लगेंगे.

और फिर, बड़े-बड़े जमींदारों और कंपनियों ने नये तरीके खोजे. एक बड़ा जमींदार कोई बाग खरीदता, और जब नाश्पातियां और आड़ू पक जाते हैं तो वह उनकी कीमत इतनी ज्यादा गिरा देता है, जो उन्हें पैदा करने की कीमत से कम होती. और उस बाग के मालिक के रूप में वह कीमत में दूसरे से फल खरीदता, और बंद डिब्बों में मिलने वाले फलों की कीमत बढ़ाता जाता, और इस प्रकार मुनाफा कमाता. और छोटे-छोटे किसान, जिनके पास बाग नहीं थे, अपने खेतों से हाथ धोने लगे, और वे खेत बड़े जमींदारों, कंपनियों और बैंकों द्वारा खरीदे जाने लगे, जो कि बागों के मालिक थे. ज्यों-ज्यों समय बीतता गया, खेतों की संख्या कम होती गयी. छोटे किसान अपने खेत बेचकर कुछ समय के लिए शहर चले गये और वहां अपने पैसों, दोस्तों और रिश्तेदारों से वंचित होकर बैठ गये.

और कंपनियां और बैंक अपने ही विनाश की ओर बढ़ रहे थे, जिसका उन्हें पता नहीं था. खेत फलों से भरे हुए थे, और भूखे लोग सड़कों पर चले जा रहे थे. गोदाम अनाज से भरे हुए थे, और गरीबों के बच्चे भूख के कारण बीमारियों के शिकार हो रहे थे. बड़ी-बड़ी कंपनियां यह नहीं जानती थीं कि भूख और क्रोध के बीच की रेखा बहुत बारीक होती है. और जो धन उजरत के रूप में खर्च होना था, वह बंदूकों, दलालों, जासूसों आदि पर खर्च हो रहा था. लोग सड़कों पर चींटियों की तरह आगे बढ़ रहे थे और काम और रोटी की तलाश में भटक रहे थे. □

• अनुवाद : सुखबीर

वे मूल्य फिर लौटेंगे

▣ बोरिस पास्तरनाक

जब मैं 'डा. जिवागो' लिख रहा था तो मेरे मन में एक बोझ था कि मैं अपने समकालीनों के प्रति देनदार हूं. जैसे-जैसे उपन्यास आगे बढ़ता रहा, यह देनदारी की अनुभूति मेरे ऊपर हावी होती चली गयी. इतने सालों तक गीत लिखने और अनुवाद करने के बाद मुझे लगा कि उस युग के बारे में अपना बयान देना भी मेरा कर्तव्य है जो काफी पहले बीत गया है, पर छाया रूप में आज भी हमारे ऊपर छाया हुआ है. समय अपना दबाव डाल रहा था. मैं 'डाक्टर जिवागो' में अब के उन वर्षों के सुंदर और संवेदनशील पहलू को लिपिबद्ध करके उसका सम्मान करना चाहता था. वे दिन तो लौटकर आयेंगे नहीं, और न हमारे दादा-परदादा ही लौटेंगे, पर भविष्य के ऐश्वर्य में मैं देखता हूं कि उन्हीं के मूल्य फिर लौटेंगे. मुझे उनका ही वर्णन करना है. मैं नहीं जानता कि 'डाक्टर जिवागो' एक उपन्यास के रूप में सफल रहा है, पर इसकी सारी कमजोरियों के बावजूद, मैं महसूस करता हूं कि यह मेरी प्रारंभिक कविताओं की अपेक्षा अधिक मूल्यवान है. यह मेरी युवावस्था की कृतियों की अपेक्षा अधिक समृद्ध और अधिक मानवीय है! □

▣ आशीष सिन्हा द्वारा प्रस्तुत एलयास कानेत्ती का व्यक्ति चित्र

आदमी एक-एक सताये गये दिन का हिसाब मांगता है!

दुनिया में अगर सारे शीशे तोड़ दिये जायें तो क्या होगा? . . .और अगर आदमी अपने मरने की तारीख ठीक-ठीक जान ले तो वह कैसा आचरण करेगा?—पढ़िए ऐसे-ऐसे सवाल पूछकर उनका जवाब देने वाले, सन् १९८१ के साहित्यिक नोबेल पुरस्कार विजेता की संघर्ष यात्रा—

पिछले कुछ वर्षों से, साहित्य में नोबेल पुरस्कार पाने वालों में अधिकतर कथाकार या तो अपनी मातृभूमि से विताड़ित यहूदी हैं अथवा विगत दो विश्वयुद्धों के कारण, केवल जिंदा रहने के लिए इन्हें भटकते रहना पड़ा है. **एलयास कानेत्ती** जिन्हें पिछले वर्ष (1981) साहित्य के लिए 17 लाख रुपयों का नोबेल पुरस्कार मिला है, इसी श्रेणी के कथाकारों में से एक हैं. कानेत्ती के पूर्वज तत्कालीन शासकों के अत्याचार से ऊबकर, स्पेन छोड़कर, बलगारिया आये थे. कानेत्ती के पिता बलगारिया में भी नहीं रह सके. वे सपरिवार इंगलैंड आ गये थे.

दानियूब नदी के किनारे, रूशों नामक एक छोटे से शहर में 25 जुलाई, 1905 में कानेत्ती का जन्म हुआ था. पिता जाक एक व्यापारी थे. प्रथम विश्वयुद्ध के कुछ पहले कानेत्ती जब केवल छह वर्ष के थे, पिता बलगारिया त्यागकर इंगलैंड आ गये. मैनचेस्टर में कुछ रिश्तेदार थे, जिनकी सहायता से कानेत्ती के पिता नये परिवेश में परिवार को स्थापित करने में जुट गये. पर हाय, परिवार अभी संभल भी न पाया था कि एक दिन सुबह, चाय की मेज पर अचानक, चुपचाप पिता गुजर गये. बिखरते परिवार की पतवार संभाली, माता-मातिलदा ने. मातिलदा एक व्यक्तित्वमयी महिला थी. इंग्लैंड उन्हें रास नहीं आया. कानेत्ती तथा उसके दो छोटे भाइयों को लेकर, वे वियेना आ गयीं. स्कूल में बच्चों के दाखिले के लिए, मातिलदा ने उन्हें जर्मन भाषा सिखाना शुरू किया. लेकिन परिवार का भटकाव यहीं समाप्त नहीं हुआ. कालक्रम में कानेत्ती ने इंग्लैंड, आस्ट्रेलिया, स्वीटजरलैंड तथा जर्मनी के स्कूलों में लिखाई-पढ़ाई की. अंतिम पढ़ाई उन्होंने वियेना विश्वविद्यालय में की. यद्यपि माता मातिलदा नहीं चाहती थी फिर भी कानेत्ती ने वियेना विश्वविद्यालय में पांच वर्षों तक रसायन शास्त्र का अध्ययन कर, विज्ञान की इसी शाखा में डॉक्टरेट की उपाधि ली. विश्वविद्यालय से निकलकर कानेत्ती सीधे किसी नौकरी से नहीं जुड़ पाये. छिटपुट पत्रकारिता और यहां-वहां व्याख्याता का कार्य किया. एक से अधिक भाषा की जानकारी जीविका के लिए सहायक साबित हुई. मातृभाषा स्पेनिश के अलावा वे अंग्रेजी, जर्मन, फ्रेंच और बलगारियन, मातृभाषा की ही तरह जानते हैं. हम कानेत्ती को अंग्रेजी भाषा के माध्यम से जान पाते हैं पर अंग्रेजी भाषा पर अधिकार के बावजूद, कानेत्ती जर्मन भाषा में ही साहित्य सृजन करते हैं. मातृभाषा स्पेनिश में तो वे लिखते ही नहीं.

इसमें शक की गुंजाइश नहीं कि लेखक के रूप में कानेत्ती उतने प्रख्यात नहीं हैं. कानेत्ती ने अधिक उपन्यास भी नहीं लिखे हैं. शायद तभी नोबेल पुरस्कार के लिए कानेत्ती के निर्वाचन (1981) ने सबको चौंकाया है. लेकिन कानेत्ती ने जो कुछ भी लिखा है, उसमें वैचित्र है. कानेत्ती न तो मार्क्सवाद से अनुप्राणित हैं और न ही हेगेलियन सिद्धांतों से. कानेत्ती रवींद्रनाथ टैगोर की तरह ही आदमी और आदमी के अंदर सोयी अनुभूतियों के 'शेड्स' के निपुण शिल्पी हैं. कानेत्ती ने अपनी रचनाओं में आदमी और जनता के फर्क को भी बड़ी खूबी से उजागर किया है. कानेत्ती कहते हैं, **"आदमी जब अकेला, निःसंग होता है, वह अपने छोटे-छोटे सुखों और छोटे-छोटे दुःखों को झेलता-सहता-भोगता हुआ जिंदा रहता है, पर जिस क्षण आदमी और आदमी मिलकर भीड़ बनते हैं और वह भीड़ 'जनता' बनती है, उसी क्षण इतिहास का निर्माण होता है. तब क्रांति आती है. नेता निर्वाचित होते हैं. गद्दियां छिनती हैं. आग लगायी जाती हैं. आदमी एक-एक सताये गये दिन का हिसाब मांगता है—क्रूर, निर्मम, निष्ठुर बनकर. आदमी में मानवोचित जितने अच्छे गुण होते हैं, उन्मत्त भीड़ उसके विपरीत उतनी ही क्रूर हुआ करती है!"**

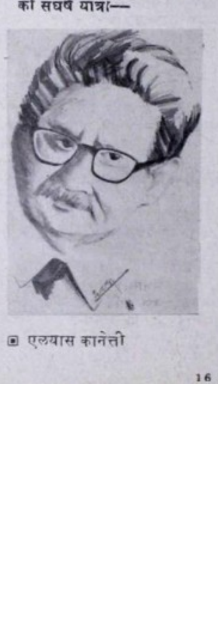

▣ एलयास कानेत्ती

कानेत्ती ने तीस वर्षों तक आदमी और जनता के इस फर्क का बहुत बारीकी के साथ अध्ययन किया है.

इस बीच दो विश्व महायुद्ध झेल चुका है और दुनिया तीसरे महायुद्ध की ओर अग्रसर हो रही है. 1960 में कानेत्ती ने अपनी रचना **'क्राउड एंड पॉवर'** में अपने इस अनुभव को बड़ी खूबी से प्रतिबिंबित किया है. कानेत्ती की श्रेष्ठ औपन्यासिक कृति **'डाई बेलेंडंग'** अथवा 'प्रताड़ना' में भी इसी कथ्य की छाया है.

कानेत्ती की अन्य रचनाओं की संक्षिप्त झांकी से पहले उनकी रचना प्रक्रिया को रेखांकित करना जरूरी है.

1938 तक कानेत्ती वियेना में रहे. पास ही जर्मनी में हिटलर का तांडव शुरू हो गया था. यहूदी-हत्या भी शुरू कर दी गयी थी. कानेत्ती वियेना छोड़कर पेरिस आये. फिर वहां से लंदन, जहां आजकल स्थायी रूप से रह रहे हैं.

पहली पत्नी की मृत्यु के पश्चात, कानेत्ती ने दूसरा विवाह किया और 67 वर्ष की आयु में, 1972 में एक पुत्री के पिता बने. एकमात्र संतान और पत्नी ज़ुरिख में रहती हैं. लगभग सभी भगोड़े यहूदी लेखकों की रचनाओं में किसी लक्ष्यभ्रष्ट नक्षत्र की तरह दिशाहीनता की वेदना देखी जा सकती है. कानेत्ती की रचनाओं में भी यही दर्द अंतर्निहित है.

1932 में कानेत्ती की प्रथम रचना एक नाटक, प्रकाशित हुआ था. उसके बाद कई और नाटकों का प्रकाशन तथा मंचन इंग्लैंड और जर्मनी में हुआ, पर कानेत्ती के नाटक मंच पर कभी सफल नहीं हो पाये. ऐसा संभवतः व्यंग्यात्मक नाट्य-रचना के कारण हुआ.

एक नाटक में कानेत्ती कहते हैं—**"दुनिया में अगर सारे शीशे तोड़ दिये जायें तो क्या होगा. रूपसी औरतों का दर्प समाप्त हो जायेगा और असुंदर महिलाएं कुंठा से मुक्त हो पायेंगी."** एक और नाटक में कानेत्ती का प्रश्न है—**"अगर आदमी अपने मरने की तारीख ठीक-ठीक जान ले तो वह कैसा आचरण करेगा?"**

कानेत्ती की श्रेष्ठ साहित्यिक कृति **"डाई बेलेंडंग** का प्रकाशन 1935 में हुआ. इसी रचना के लिये पेरिस में 1949 में अंतर्यूरोपीय साहित्य पुरस्कार से कानेत्ती सम्मानित हुए थे. यही रचना इंग्लैंड में 1946 में **'फैसले का दिन'** (आटो डा फे—जर्मन भाषा) के शीर्षक से तथा अमेरिका में 1947 में **'टावर ऑफ बेबल'** शीर्षक से प्रकाशित हुआ था.

विस्तार से इस असाधारण औपन्यासिक कृति का कथानक न कहकर इसकी पृष्ठभूमि का आभास दिया जा सकता है.

काल है, द्वितीय विश्वयुद्ध. अविश्वास, हिंसा, घृणा, क्रूरता और युद्ध की विभिषिका के सामने आदमी और पूरा समाज घुटने टेक रहा है. . . . दया, करुणा, प्रेम, त्याग जैसे मानवीय गुण बारुद की गंध और बम के धमाकों में खो गये हैं. इस युद्ध में हार या जीत का ब्यौरा इतिहास के पन्नों पर अंकित है, फतह की कहानी स्वर्णाक्षरों में स्वतः अंकित हो जाती है. लेकिन आदमी की यातना की कथा को क्या इतिहास समहित कर पायेगा? आदमी की अव्यक्त पीड़ा को क्या इतिहास में कभी स्थान मिला है? इस कालजयी रचना के माध्यम से कानेत्ती ने सवाल उठाया है — **हम जिसे इतिहास कहते हैं, क्या वास्तव में वह आदमी के अतीत को प्रतिबिंबित करता है? इतिहास में ऐसे अनेक नाम दर्प के साथ लिये जाते हैं जो अपने समय के कुख्यात पुरुष थे.**

> **जिस क्षण आदमी और आदमी मिलकर भीड़ बनते हैं, वह 'जनता' बन जाते हैं और उसी क्षण इतिहास का निर्माण होता है. तब क्रांति आती है. नेता निर्वाचित होते हैं, गद्दियां छिनती हैं. आग लगायी जाती हैं क्रूर, निष्ठुर, निर्मम बनकर और . . .**

कानेत्ती की अन्य रचनाओं में उल्लेखनीय हैं—निबंध संकलन **'द कनाशायेंस ऑफ वर्ड्स.'** ललित निबंधों का यह संकलन 1972-76 के बीच लिखा गया. 1942-46 के बीच दिनलिपि (डायरी का संकलन **'द ह्यूमन प्राविंस'** भी अद्वितीय बन पड़ा है. यह दिनलिपि छोटी-छोटी घटनाओं का अद्भुत संकलन बन पड़ी है, जो निःसंदेह रवींद्र नाथ टैगोर की दिनलिपि की याद दिलाता है.

कानेत्ती की अधुनातम रचना 'द टंग सेट फ्री" (1977) उनकी आत्मकथा का पहला खंड है. जन्म से 16 वर्ष की आयु तक का वृतांत इस रचना में है.

कुछ कानेत्ती-समीक्षकों के अनुसार यह रचना उनकी सर्वश्रेष्ठ रचना है.

साहित्य, शिल्प, संस्कृति की शिक्षा कानेत्ती को मातिलदा से ही मिली. कानेत्ती अपनी मां से प्रभावित तो थे ही, मां के प्रति मुग्ध भी थे. पर शैशव लांघकर, कैशोर्य में कदम रखने के बाद उन पर मां की बुद्धिमता का प्रभाव घटने लगा. जीवन को देखने का, अनुभव करने का उनका ढंग अपनी मां से पृथक होता गया. कानेत्ती तब जो कुछ लिखते माता मातिलदा पढ़ती. पर पढ़कर इन्हें घटिया रोमांटिसिज्म की आख्या देतीं. पुत्र और माता में शिल्प, साहित्य और संस्कृति को लेकर जहां से विरोध शुरू होता है, आत्मकथा का पहला खंड वहीं समाप्त होता है.

कानेत्ती वर्णित कुछ घटना या चरित्र मन को छू जाते हैं. उनमें भारतीय संस्कार भी परिलक्षित होते हैं. **मिसाल के तौर पर ज़ुरिख के स्कूल के उस पंडित जी को आज भी कानेत्ती याद करते हैं. उन्हें याद है उन पंडित जी की छड़ी, उनका स्नेह, उनका अनुशासन.**

कानेत्ती कहते हैं, "पंडीतजी अब नब्बे वर्ष के हो गये होंगे. उन्हें प्रणाम." □

* जर्मन अंग्रेजी, बंगला तथा बलगारियन भाषाओं में प्रकाशित सामग्री से संकलित

एलयास कानेत्ती की नजरों में काफ्का की दुनिया

तहखाना
जहां कोई न आ सके!

एक साहित्य प्रेमी पाठक के हाथ में अचानक कानेत्ती का उपन्यास आ गया. उसने प्रभावित होकर लेखक के बारे में जानना चाहा तो पता चला कि लेखक महोदय किसी खत का जवाब नहीं देते!—नोबेल पुरस्कार प्राप्त होने तक प्रायः उपेक्षित रहे एलयास कानेत्ती द्वारा पुरस्कार प्राप्त होने के बाद काफ्का के संदर्भ में उनके जीवन की पूरक स्थितियों का आकलन. . .

1981 में जब साहित्य का नोबेल पुरस्कार घोषित हुआ तो सारी दुनिया का परिचय लगभग एक नये नाम से हुआ. नोबेल पुरस्कार की घोषणा से पहले अक्सर कुछ चर्चित और अंतरराष्ट्रीय ख्याति प्राप्त लेखकों के नाम खबरों में रहते हैं. एलयास कानेत्ती का नाम इन खबरों में नहीं था. एक लेखक के रूप में बराबर उनकी उपेक्षा होती रही—पाठकों ने ही नहीं प्रकाशकों ने भी उनकी उपेक्षा की. नोबेल पुरस्कार की ख्याति प्राप्त करने के बाद जाहिर है कि कानेत्ती की किताबों को खोजा जा रहा है. प्रकाशक उन्हें छापना चाहते हैं. लेकिन पिछले दिनों कानेत्ती ने अपनी आत्मकथा को ब्रितानी प्रकाशकों (वे इंग्लैंड में रहते हैं) को इसलिए नहीं दिया कि उन्होंने हमेशा उनकी उपेक्षा की. कानेत्ती ने अमेरिकी प्रकाशकों की शरण लेना उचित समझा.

कानेत्ती (जन्म : 1905) नाम से ही स्पष्ट है, वह अंग्रेज लेखक नहीं हैं. उनका जन्म बल्गारिया में हुआ था. माता-पिता स्पानी-यहूदी मूल के थे. शुरू में कानेत्ती की पढ़ाई इंग्लैंड में हुई—बाद में अपनी शिक्षा को पूरा करने के लिए वे ज्यूरिख, फ्रेंकफर्ट और वीएना में भटकते रहे. वीएना में ही तीस के दशक में कानेत्ती ने एक लेखक की जिंदगी शुरू की. 1932 में एक नाटक छपवाया और 1935 में एक अनोखा उपन्यास 'आतो दा-फे'. 1938 में कानेत्ती ने वीएना छोड़कर लंदन को अपना शहर बनाया. नाटक लिखे—भीड़ के मनोविज्ञान पर एक अलग तरह का विस्तृत अध्ययन किया. 1960 में 'भीड़ और ताकत' नाम से यह अध्ययन जर्मन भाषा में छपा. कानेत्ती जर्मन भाषा में लिखते रहे हैं.

1970 में कानेत्ती ने विश्व प्रसिद्ध लेखक **फ्रांज काफ्का** पर एक लंबा और विचारोत्तेजक निबंध लिखा था जो बाद में 'द अदर ट्रायल' नाम से लोकप्रिय हुआ. इस लेख की स्थापनाओं पर पर्याप्त ध्यान दिया गया. लेकिन काफ्का पर लिखे एक निबंध के आधार पर एक लेखक आखिर मशहूर तो नहीं हो सकता है!

1970 तक अंग्रेजी दुनिया की हालत यह थी कि साहित्य के विद्वान कानेत्ती को नहीं जानते थे. आखिर इस नाम का लेखक जर्मन में क्यों लिखता है? एक साहित्य प्रेमी पाठक के हाथ में अचानक कानेत्ती का उपन्यास आ गया, तो वह लगभग सांस रोककर उसे पूरा पढ़ गया. उस उपन्यास के विस्तार और गहराई से चकित होना स्वाभाविक था. उस पाठक ने लेखक के बारे में जानना चाहा, तो पता चला कि लेखक महोदय किसी खत का जवाब नहीं देते.

1971 में बी. बी. सी. के एक साहित्यिक कार्यक्रम में कानेत्ती ने काफ्का संबंधी अपने अध्ययन की चर्चा करते हुए कहा था कि काफ्का उन लेखकों में से हैं जिन्हें मैं बहुत पसंद करता हूं. लेकिन मैंने फेलिस के नाम लिखे काफ्का के पत्रों के माध्यम से काफ्का के रचना संसार को जानना चाहा. बहुत कम जानकारी थी कि काफ्का की दुखद सगाई के पांच वर्षों में क्या हुआ था. यह तो पता था कि इस सगाई ने काफ्का की जिंदगी पर जबरदस्त असर डाला, पर 1967 में जब फेलिस के नाम लिखे काफ्का के खत प्रकाशित हुए तब कहीं जाकर चीजें साफ हुईं. 750 पृष्ठ लंबी इस पुस्तक को पढ़ना एक अद्भुत अनुभव है. मैंने जब इन खतों को पढ़ना शुरू किया, तो मुझे लगा कि अब और कुछ करना मुश्किल है. महीनों तक मैं इस किताब के जादू में

…ा रहा. इसलिए जरूरी हो गया कि …छ अपने इस अनुभव पर लिखा जाये.

काफ्का की फेलिस से पहली मुला…त अगस्त 1912 में हुई थी. फेलिस … काफ्का की दो बार सगाई हुई. …लिस बर्लिन में रहती थी और काफ्का …ग (चेकोस्लोवाकिया) में. 1912 … पहली मुलाकात के बाद सात महीनों …क काफ्का फेलिस से मिल न पाये. …किन उनका पत्र-व्यवहार चलता रहा. …फ्का रोजाना (कभी-कभी दिन में … बार भी) ही पत्र लिखा करते थे …र फेलिस को भी जवाब देने के लिए …बूर भी करते रहे. इस प्रारंभिक …रचय के दौरान ही 580 पृष्ठों का …-व्यवहार हुआ! फेलिस बर्लिन के …यवर्गीय यहूदी परिवार की लड़की …—एक दफ्तर में काम करती थी. …ानदार और सरल किस्म की लड़की …, जो जाहिर है कि ठीक-ठाक ढंग से …वाह करना चाहती थी. उसके …क्तित्व में कोई जटिलता नहीं थी. …किन फेलिस के साहित्यिक-सांस्कृतिक …ान भी थे. पहली मुलाकात के …रों में काफ्का की पहली पुस्तक की …डुलिपि तैयार थी. इन सब बातों … काफ्का और फेलिस के बीच एक …ाद कायम कर दिया. लेकिन काफ्का …बहुत कम आत्मविश्वास था. बोलते …त वे बहुत झिझकते थे—खास तौर … लड़कियों से बात करने में उन्हें बहुत …कत महसूस होती थी. शर्मीले और …चाप रहने वाले काफ्का ने फेलिस से …नी पहली मुलाकात में जो स्वतंत्रता …सूस की वह इतनी जबरदस्त थी कि …का संबंध बढ़ने लगा.

अगर हम जानना चाहते हैं कि वास्तव में ताकत क्या चीज है तो हमें केवल तूफानी चीजों, चमकती बिजली, तूफान और इतिहास में जगह पाने वाली चीजों की तरफ ही ध्यान नहीं देना चाहिए, बल्कि—

… काफ्का अपनी बीमारी को लेकर …यधिक चिंतित रहते थे. उन्हें नींद …ीं आती थी. दफ्तर का जो काम उन्हें …ना पड़ता था उससे वे नफरत करते … और अब उनके सामने एक ऐसी …की थी जिसे वे सब कुछ बता सकते … अपनी दिक्कतों, दुखों और लेखन …धी विचारों पर वे पृष्ठ के बाद पृष्ठ लिखते रहे. वे फेलिस से भी सैकड़ों सवाल करते थे—उसके जीवन के बारे में. इन सवालों में काफ्का के लेखन जैसी ही 'यथार्थता' थी—एक-एक चीज की तह तक जाने की कोशिश. लेकिन खास बात तो यह थी कि फेलिस काफ्का के सामने न होकर उनसे बहुत दूर कहीं बैठी इन सवालों और सूक्ष्म भावनाओं से परिचित हो रही थी. और यह काफ्का के लिए एक सहूलियत थी. काफ्का अपनी जिंदगी जीना चाहते थे. फेलिस से मुलाकात वे आगे खिसकाते रहे. आखिर उन्हें बर्लिन की यात्रा ही करनी पड़ी. फेलिस काफ्का से विवाह की उम्मीद कर रही थी, लेकिन काफ्का इस बात से डरे हुए थे. वे समझते थे कि कोई उनके साथ रह नहीं सकता है—इसके पीछे यह बात भी थी कि वे लेखन के लिए अपने को स्वतंत्र रखना चाहते थे. उन्हीं दिनों के एक पत्र में (मेरे विचार में जो किसी भी लेखक का लिखा बहुत सुंदर पत्र है) काफ्का ने अपने लिखने के सबसे खूबसूरत वातावरण की चर्चा की है. वे एक ऐसे तहखाने की चर्चा करते हैं, जहां कोई भी न आ सके. खूब खुले कमरे हों. बाहर ताला लगा हो. लोग वहां पर खाना रख जायें. यानी अपने पूर्ण एकांत में वे लेखन का काम करते रहें.

फेलिस काफ्का के लिए जरूरी थी पर उसके साथ वे रह नहीं सकते थे. एक साल के बाद उन दोनों में अर्द्ध सगाई-सी हुई पर बाद में काफ्का विवाह के विचार को संभाल न सके. काफ्का ने संबंध तोड़ दिया. . .पत्र लिखना भी बंद कर दिया. कुछ समय बाद फिर से पत्र-व्यवहार का सिलसिला शुरू हुआ. पांच साल के उनके संबंधों के कई पहलू हैं. अंत में उनका संबंध टूटा, तो काफ्का को क्षय रोग शुरू हो चुका था. काफ्का हर चीज को बीस, तीस, पचास तरह से देखते और करते थे. काफ्का अपने जीवन के तथ्यों पर इतना अधिक शक करते थे कि फेलिस

काफ्का की फेलिस से दो बार सगाई हुई और वह प्रायः उसे दिन में दो बार खत लिखकर उनके जवाब की प्रतीक्षा भी किया करते थे.

अपने बारे में जो बातें उन्हें बताती थी उनसे उन्हें बल मिलता था. जब काफ्का की पहली पुस्तक छपी ('मेडीटेशन') तो भले ही वह कोई महत्वपूर्ण पुस्तक नहीं थी पर उसे उन्होंने फेलिस के पास भेजा था. फेलिस ने बाद की चिट्ठियों में दूसरी किताबों की तो चर्चा की, लेकिन काफ्का की पुस्तक की कोई चर्चा नहीं की. शायद उसे पुस्तक पसंद नहीं आयी या समझ नहीं आयी. लेकिन इसका काफ्का पर बड़ा घातक असर पड़ा. जो प्रेरणा और ताकत काफ्का को फेलिस से मिल रही थी वह अचानक बंद हो गयी.

मुझे लगता है कि काफ्का के लेखन की 'मेटाफिजिकल' व्याख्या उचित नहीं है. मिसाल के लिए जो कुछ उनके जीवन में घटा वह 'द ट्रायल' का भावनात्मक मूलाधार है. मुझे लगता है कि काफ्का के जीवन के ठोस तथ्यों तक हमें जाना चाहिए और उन्हें जांचना चाहिए.

मेरे विचार में काफ्का ताकत के महानतम विशेषज्ञ हैं. उन्होंने अपने निजी अनुभव से अपने लेखन में ताकत के भय, अपमान, ताकत से दूर रहने की कोशिश का वर्णन किया है और इस तरह से अपनी ताकत को पूरी तरह से सामने उभारा है. अगर हम जानना चाहते हैं कि ताकत वास्तव में क्या चीज है तो हमें केवल महान तूफानी चीजों, चमकती बिजली, तूफान, और इतिहास में जगह पाने वाली चीजों की तरफ ही ध्यान नहीं देना चाहिए—रोजमर्रा की जिंदगी में सैकड़ों तरह की स्थितियों में हमें उसे खोजना होगा. काफ्का ने इन स्थितियों को खोजा और अनुभव किया. □

प्रस्तुति : वि. भा.

एक रहस्यमय नोबेल-पुरस्कार-विजेता : एलयास कानेत्ती

जीवन के रहस्य को जानने का अचूक नुस्खा

अज्ञात, अबूझ और सार्त्र समान चिंतक स्वरूप को उभारने वाले लेखक के कृतित्व की झांकी, जो यह मानता है कि तानाशाही, मानवता की सबसे बेरहम और घोर शत्रु है! . . . और उसने बताया है कि उससे कैसे निपटा जाये. . .

लंदन के जिस घर में 1981 के नोबेल-पुरस्कार-विजेता एलयास कानेत्ती रहते हैं, उसके दरवाजे की घंटी काम नहीं करती. वह 1960 में खराब हुई थी और उसे ठीक करवाने का खयाल आज तक उन्हें नहीं आया है. वजह?—"इस खराब घंटी की वजह से ही बहुत से लोग मुझसे मिले बिना लौट जाते हैं. . .और मेरी एकांतता इस प्रकार सुरक्षित रह जाती है."

आरंभ से ही अपनी एकांतता को उन्होंने इतनी सावधानी से सुरक्षित रखा है कि बहुत ही कम लोग यह जानते हैं कि वे लेखक भी हैं. उनके एक मित्र का कहना था, "मैं उन्हें वर्षों से जानता था, लेकिन चूंकि उन्होंने कभी मुझे यह नहीं बताया कि वह लेखक भी हैं, इसलिए मैं यही समझता आ रहा था कि वह या तो कोई अवकाश-प्राप्त सरकारी अफसर हैं, या कोई कर्ल्क."

अपनी साहित्यिक कृतियों के बारे में कुछ लिखना या कहना कानेत्ती को कतई पसंद नहीं है. अपनी खामोशी और एकांतता को वह अपनी 'फकीरी' मानते हैं. एक ही शौक है इस फकीर को—किताबें जमा करने का. उनके घर का सबसे बड़ा हिस्सा है, उसका हॉल जिसमें चारों तरफ, ऊपर-नीचे, दायें से बायें, बस किताबें ही किताबें नजर आती हैं. . . .और क्या इसे एक संयोग ही कहा जायेगा कि अपने जिस महान उपन्यास—'ऑतो दा-फे'—के लिए वह सबसे अधिक विख्यात थे, उसका नायक चीनी-विद्या-विशेषज्ञ पीटर कीन भी पुस्तकों का बड़ा शौकीन है. पीटर 2500 से अधिक पुस्तकों का मालिक है और सारा विश्व उसे एक महान पंडित के रूप में स्वीकार करता और पूजता है. लेकिन उसे जीवन की कोई जानकारी नहीं है, और वह किसी को देखते ही उससे मुंह फेर लेता है. जीवन से उसका अंतरंग परिचय तब होता है, जब वह अपनी नौकरानी से विवाह कर लेता है. तब वह निष्ठुर दुनिया की कटु यथार्थताओं से परिचित होकर उनसे जूझता है, और इस संघर्ष में असफल होकर अपने पुस्तकालय को नष्ट कर, स्वयं अपने प्राण भी ले लेता है.

उपन्यास के पहले भाग का शीर्षक है: 'दुनिया से खाली सिर.' उपन्यास के नायक को सिर्फ अपने पुस्तकालय से प्रेम है, और बाकी सबसे, चाहे वह जीवित प्राणी हों, या मृत पदार्थ, घृणा है. उसके बारे में कानेत्ती लिखते हैं, "उसका जीवन बड़ा अतिसंयमी है."

इस उपन्यास के प्रायः सभी पात्र अन्य पात्रों द्वारा गलत समझे जाते हैं. हर पात्र दूसरे पात्र को उस रूप में ही देखता है, जिसमें वह चाहता है कि वह वास्तव में हो. इस बारे में कानेत्ती कहते हैं, **"मेरे भीतर कई पात्रों का समावेश है. मैं अपने लेखन में सरलतम रहना चाहता हूं, क्योंकि मैं नहीं चाहता कि उन विभिन्न पात्रों में आपस में संघर्ष हो. जिस हिटलर की हम सब निंदा करते हैं, वह हमारे अंदर तो है ही, हमारे बाहर भी चक्कर लगा रहा है."**

तानाशाहों और तानाशाही से संबंधित अपनी कृति 'क्राउड एंड पॉवर' को कानेत्ती अपनी सर्वाधिक महत्वपूर्ण कृति मानते हैं. इसकी रचना उन्होंने 'ऑतो-दा-फे' के बाद की थी. इसे वे 'अपने जीवन का सार' मानते हैं.

यहूदियों ने जिस सहनशीलता के साथ हिटलर के जुल्मों को सहा, उसकी प्रतिछाया पुस्तक में सर्वत्र दिखायी देती है. इसके प्रकाशन के बाद, उनकी गणना सार्त्र जैसे चिंतकों में होने लगी.

इस पुस्तक को समीक्षकों ने 'मौत के खिलाफ विरोध' और 'सत्ता के खिलाफ दलील' कहा है. सत्ता और सत्ताधिकारियों के खिलाफ अभ्यारोपण करते हुए, कानेत्ती इस पुस्तक में एक स्थान पर कहते हैं, **"दूसरों पर शासन करने का इच्छुक तानाशाह सबसे पहले उन्हें अपमानित करता है. . .और फिर धोखा देकर उनके अधिकार छीन लेता है, और प्रतिरोध की उनकी शक्ति समाप्त कर देता है. अंत में, वे उसके सामने पशुओं के समान असहाय होकर रह जाते हैं."**

आज के तानाशाहों को 'हीरो' मानने वालों को चेतावनी देते हुए, इसी पुस्तक में कानेती एक अन्य स्थल पर कहते हैं—

"जो लोग यह समझते हैं, कि हिटलर और मुसोलिनी के जाने के बाद, तानाशाहों का अंत हो गया है, भारी भूल में हैं. तानाशाह आज भी विभिन्न रूपों में हमारे बीच मौजूद है, और उसकी धूर्तता के कारण हम उसे आसानी से चीन्ह नहीं पाते. मैंने उसे खोज-खोजकर उन जगहों से बाहर निकालकर आप पाठकों के सामने पेश किया है, बेनकाब करके ताकि आप सब उसके असली चेहरे को देख सकें, और जान सकें कि वह दूसरों को अपने वश में करने के लिए क्या-क्या हथकंडे अपनाता है. तानाशाही मानवता की सबसे बेरहम और घोर शत्रु है, और यदि हमने साहस करके उसे समाप्त नहीं किया, तो वह हम सबको, सारी मानवता को समाप्त कर देगी."

पिछले 15 वर्षों से उन्होंने एक शब्द भी नहीं लिखा है. और इस बात की संभावना भी नहीं है कि कुछ लिखेंगे. वे कहते हैं, **"मुझे जो लिखना था; लिख चुका. मैं अब मौन रहना चाहता हूं, क्योंकि जीवन के रहस्य को मौन और शांत रहकर ही जाना जा सकता है.** □

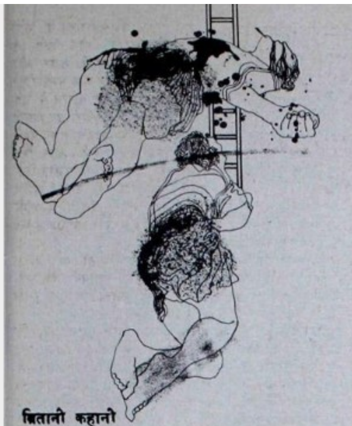

ब्रितानी कहानी

मौत

• एलयास कानेत्ती

खून के धब्बे साफ करना कितना मुश्किल होता है और इन्हें साफ करने के लिए किस चीज का इस्तेमाल करना चाहिए? . . . और तिस पर अजूबा यह कि अगर मरा हुआ आदमी ही जिंदा हो उठे तो . . . ?—एक ऐसे लेखक की कहानी जो पैदा बल्गारिया में हुआ, रहता ब्रितानिया में है और लिखता है जर्मन भाषा में—

खाने का बिल खुद थेरेस ने ही दिया. वह इतनी मूर्ख क्यों है? सब कुछ ठीक-ठाक चल रहा था. पर अब घर और बाहर दोनों ही जगह परेशानियां पैदा हो गयी हैं. उसके सवाल का जवाब अभी बकाया था. थेरेस समझ नहीं पा रही थी कि क्या जवाब दे. जब वे फर्नीचर की दूकान में घुसे तो उसने फिर पूछा, "हां या ना?"

"हां, अगर तुम बुरा न मानो तो ठीक सवा बारह बजे."

"मेरा मतलब पैसे से है!" उसने याद दिलाया.

बड़े ही भोलेपन से थेरेस ने एक बढ़िया-सा जवाब दिया, "यह तो समय ही बतायेगा."

फिर वे दोनों दूकान में चले गये. दूकान का मालिक आकर कहने लगा, "आशा है आपने खाना अच्छी तरह खाया होगा. सोने वाले कमरे के लिए सामान कल सुबह पहुंच जायेगा. क्या आप कोई खास निर्देश देना चाहेंगी?"

"नहीं," उसने कहा, "पैसे मैं अभी देना चाहती हूं."

पैसा लेकर उसने रसीद दे दी. तभी उसका प्रेमी बाहर निकल आया और सभी के सामने दूकान में ही जोर से थेरेस के मुंह पर बोला, "तो श्रीमती जी, आपको अपने लिए नया आशिक तलाश करना पड़ेगा. मेरे पास आपसे कम उम्र की महिलाओं के प्रस्ताव हैं और वे आपसे खूबसूरत भी हैं."

सुनते ही वह सीधी भागी, दरवाजे को धक्का देती हुई बाहर निकली और खुली सड़क पर सबके सामने रोने लगी.

थेरेस को उससे कुछ नहीं चाहिए था. उसने खाने के पैसे भी दिये. इस पर वह ऐसी बेहूदगी कर गया. वह एक विवाहिता है. उसे हर किसी के पीछे नहीं भागना चाहिए. वह कोई नौकरानी नहीं है कि जिस-तिस के पीछे मुंह मारती फिरेगी. वह तो अपनी एक-एक उंगली पर दस-दस को नचा सकती है. गली में हर आदमी उसे देख रहा था. इसमें कसूर किसका था? क्या सारा कसूर उसके पति का ही था? उसके लिए फर्नीचर खरीदने के लिए उसे इधर-उधर भाग-दौड़ करते रहना पड़ता है और बदले में क्या मिलता है? केवल अपमान! कम से कम अपना यह घटिया काम वह खुद भी तो कर सकता है. वह तो किसी काम का नहीं है. आखिरकार वह उसका अपना फ्लैट है. यह तो वही जानता होगा कि उसकी किताबों को रखने के लिए उसे किस तरह का फर्नीचर चाहिए. सहनशीलता भी तो उसमें संतों जैसी है. इस तरह का आदमी सोचता है कि वह तुम पर कभी भी चोट कर सकता है. पहले तो तुम उसके लिए दुनिया भर के काम करो और फिर वह तुम्हें लोगों के सामने अपमानित करने के लिए छोड़ देता है. मान लो, ऐसा उस खूबसूरत युवक (पूर्व वर्णित प्रेमी) की बीवी के साथ होने लगे तो? उसकी तो बीवी ही नहीं है. उसकी बीवी क्यों नहीं है? क्योंकि वह एक असली आदमी है. एक असली आदमी की बीवी नहीं होती. कोई असली आदमी तब तक शादी नहीं कर सकता जब तक उसके पास दिखाने के लिए कुछ नहीं है. क्या है उसके पास दिखाने के लिए? केवल अपनी चमड़ी और हड्डियां. लोग तो उसे मरा हुआ ही मान चुके हैं. इस तरह के लोग आखिर किस चीज के लिए जीते हैं? ऐसे लोग किसी काम के नहीं होते. केवल दूसरे लोगों की कमाई का पैसा लेते हैं.

थेरेस घर में घुसी. दरवाजे पर ही भवन का रखवाला मिल गया. उसने ही बताया, "आज वे कुछ कर रहे हैं."

"देखते हैं." उसने जवाब दिया और उसकी ओर पीठ कर ली.

> “पर घटनाएं तो ऐसे ही घटती हैं. पहले तो आप अपनी पत्नी के साथ हर तरह से खिलवाड़ करते हैं और उसके बाद आप मर जाते हैं. वह हमेशा सोचती है कि ऐसा होना उसके हित में नहीं होगा, पर. . .”

ऊपर की मंजिल पर जाकर उसने फ्लैट का दरवाजा खोला. हर चीज स्थिर थी. हॉल में फर्नीचर ढेर-सा पड़ा था. बिना कोई आवाज किये उसने खाने के कमरे का दरवाजा खोला. अचानक वह आतंक से पीछे हो गयी. दीवारें अचानक बदली हुई दिख रही थीं. वे भूरी होती थीं. आज सफेद थीं. अगले कमरे में भी वही परिवर्तन था. तीसरे कमरे में, जिसे वह सोने का कमरा बनाने वाली थी, वहां भी यही परिवर्तन दिख रहा था. उसने पति की सारी किताबें उलटकर रख दी थीं.

किताबें इस तरह से रखी जानी चाहिए कि सिलाई वाला भाग बाहर की ओर रहे ताकि आप उसे आसानी से बाहर निकाल सकें. ऐसे ही निकालकर उनकी धूल झाड़ी जाती है, वरना किताब बाहर कैसे निकलेगी. पर उसके अपने तरीके हैं. वह उनकी सफाई करते और धूल झाड़ते-झाड़ते परेशान हो गयी थी. धूल झाड़ने के लिए एक झाड़न रखा जाना चाहिए. उसके पास पैसा है और वह झाड़न के लिए खर्च कर भी सकता है. फर्नीचर खरीदने पर तो वह खूब पैसा खर्च करता है. बेहतर हो कि वह कुछ बचा ले. घर की औरत का भी तो एक दिल होता है.

थेरेस फिर उसे ढूंढने लगी ताकि इस दिल को उसके सिर पर दे मारे. वह बैठक में मिल गया. वह फर्श पर चारों खाने चित पड़ा था और उसके ऊपर एक सीढ़ी पड़ी हुई थी. उसके नीचे का खूबसूरत कालीन उसके खून से तर हो गया था.

खून के धब्बे साफ करना कितना मुश्किल होता है. इन्हें धोने के लिए किस चीज का इस्तेमाल करना होगा? यह तो जरा भी नहीं सोचता कि यह क्या किये जा रहा है. वह जरूर झटके से भागता हुआ सीढ़ी पर चढ़ा होगा, तभी तो सीधा नीचे आ गिरा. वह कहता भी तो है कि अब उसमें ताकत नहीं रही. काश, वह खूबसूरत युवक यह सब देख लेता. ऐसा नहीं है कि वह इस नजारे से अपनी आंखें सेक रही थी, वह ऐसी नहीं है. यह भी कोई मरने का तरीका है? यह जीव हमेशा ही उसके लिए खेद का विषय रहा है. उसे इस बात की चिंता नहीं थी कि वह सीढ़ी पर से गिरकर मरा. पर जो भी ऐसी बात सुनेगा, वह यह तो नहीं देखेगा कि आप उस समय क्या कर रहे थे. वह तो इसमें मजा लेगा. पिछले आठ सालों से वह भी सीढ़ी पर चढ़ती हुई किताबों की धूल झाड़ती रही है. पर ऐसा तो उसके साथ कभी नहीं हुआ. समझदार आदमी जमाकर पैर रखता है. वह इतना मूर्ख क्यों था? अब ये सब किताबें उसकी हैं. इस कमरे की किताबों में से आधी ही पलटी गयी होंगी. ये उसकी किस्मत है. वह कहा करता था. वही जानता होगा कि वह किस बारे में बात कर रहा है, उसी ने उन्हें खरीदा है. वह लाश पर तो उंगली भी नहीं रखेगी. इतनी भारी सीढ़ी से जूझकर वह खुद के चोट नहीं लगाना चाहती थी और दूसरे फिर पुलिस भी तंग करने लगती. बेहतर हो कि वह इस चीज को जैसा का तैसा रहने दे. खून की वजह से नहीं. खून से तो वह नहीं डरती. फिर यह असली खून भी तो नहीं होगा! . .ऐसे आदमी का खून भला असली कैसे हो सकता है? यह तो बस धब्बे छोड़ने लायक ही है. उसे कालीन पर दया आ रही थी.

अब ये सब चीजें उसकी हैं, यह खूबसूरत फ्लैट तो काफी काम का है. किताबों को तो वह एकदम बेच देगी. ऐसी बात कब किसने सोची होगी! पर घटनाएं तो ऐसे ही घटती हैं. पहले तो आप अपनी पत्नी के साथ हर तरह से खिलवाड़ करते हैं और उसके बाद आप मर जाते हैं. वह हमेशा सोचती है कि ऐसा होना उसके हित में नहीं होगा पर उसे ऐसा नहीं मानना चाहिए. इस जैसा आदमी सोचता है कि दुनिया में उसके अलावा और कोई है ही नहीं. आधी रात को बिस्तर पर पहुंच जाना और अपनी पत्नी को एक भी क्षण आराम न करने देना, किसी ने भला ऐसी बात सोची भी होगी? शरीफ आदमी तो नौ बजे बिस्तर पर आ जाता है और फिर अपनी पत्नी को आराम से सोने देता है.

कविता के जरिए

■ टी. एस. इलियट

मेरी पहली कविता पहले ‘स्मिथ अकादमी रेकार्ड’ में प्रकाशित हुई थी. और फिर वही कविता ‘द हारवर्ड एडवोकेट’ में भी छपी. यह मैंने अपने अंग्रेजी के अध्यापक द्वारा दिये गये एक अभ्यास के रूप में लिखी थी.

इस कविता पर बेन जॉनसन का काफी प्रभाव था. मेरे अध्यापक को लगा था कि पंद्रह-सोलह साल की उम्र के हिसाब से तो इस लड़के ने यह काफी अच्छी कविता लिख दी है.

फिर हारवर्ड में मैंने कुछ और कविताएं भी लिखीं. जिनके कारण मुझे ‘द हारवर्ड एडवोकेट’ का संपादक चुन लिया गया. फिर जूनियर और सीनियर कक्षाओं के दौरान तो मैंने खूब लिखा. पहले बॉदलियर और फिर ज्यूल्स लाफार्ज के प्रभाव में मैं लिखता ही चला गया. इन लोगों की रचनाओं को मैंने जूनियर कक्षाओं में ही पढ़ना शुरू कर दिया था. □

मैं तो मानता हूं कि

जब तक आज का साहित्यकार साहित्य को मानव का संबल नहीं बनायेगा, तब तक वह लिखता तो जरूर रहेगा, पर कैसा! जैसे कि अभी-अभी वह मनुष्य की अंत्येष्टि में हिस्सा लेकर लौट रहा हो, परंतु मैं तो मानता हूं कि मनुष्य अजेय है!

—विलियम फॉकनर (नोबेल पुरस्कार लेते समय)

लिखने की मेज पर फैली चीजों पर भी उसे दया आ रही थी. वह लपककर वहां पहुंची. टेबल लैंप का स्विच ऑन किया और मेज पर बिखरे कागजों में उसकी वसीयत तलाश करने लगी. वह समझ रही थी कि गिरने से पहले उसने वसीयत तैयार कर ली होगी. उसे पूरा विश्वास था कि उसकी उत्तराधिकारी वही हो सकती है क्योंकि अब तक उसने उसके किसी रिश्तेदार के बारे में सुना नहीं था, पर जितनी भी विद्वतापूर्ण टिप्पणियों को उसने पढ़ा, उनमें किसी में भी पैसे का जिक्र नहीं मिला. विचित्र से अक्षरों से लिखे पृष्ठों को उसने सावधानी से एक ओर रख लिया. वे जरूर कीमती होंगे और उन्हें बेचा जा सकता है. एक बार इसी मेज पर बैठे हुए उसने कहा था कि जो कुछ वह लिखता है, वह इतना कीमती है कि उसे सोने से तौला जा सकता है. पर उसने कभी सोने के लिए नहीं लिखा.

□

एक घंटे तक उस सब में सिर मारने के बाद वह इस निष्कर्ष पर पहुंची कि वहां कोई वसीयत नहीं है. इसकी उसने कोई तैयारियां भी नहीं की थीं. आखिरी क्षण तक वह वैसा ही आदमी बना रहा, जिसे अपने अलावा किसी दूसरे की चिंता कोई नहीं होती और अपनी पत्नी के लिए उसने कुछ नहीं सोचा. एक आह भरते हुए उसने तय किया कि मेज की भीतरी दराजों को भी तलाश कर लिया जाये. पर यहां भी निराशा ही हाथ लगी. दराजों पर ताला लगा था और उसकी चाबियां वह अपने पाजामे की जेब में रखता था. अपने आपको भी उसने अच्छी परेशानी में डाल दिया है. वह उसकी जेब में से कुछ नहीं निकाल सकती. अगर कहीं गलती से उसके कपड़ों पर खून का धब्बा भी लग गया तो पुलिस न जाने क्या सोचने लगे. वह उसके शरीर के निकट आयी, नीचे झुकी पर उसकी जेबों का भूगोल का पता न चल पाया. वह तो नीचे झुकने पर भी घबरा रही थी. ऐसी मुसीबत के समय उसकी आदत थी कि वह सबसे पहले अपनी स्कर्ट उतार देती थी. स्कर्ट उतारकर सावधानी से उसे तह किया और कालीन के एक कोने पर रख दिया, फिर वह लाश से एक कदम दूर हटकर नीचे झुक गयी. अपना सिर सीढ़ी पर टिका लिया और अपनी तर्जनी धीरे से दायीं जेब में डाल दी. पर उंगली ज्यादा दूर नहीं जा सकी. वह बड़ी असुविधाजनक स्थिति में पड़ा हुआ था. उसका खयाल था, जेब के भीतर गहरे में उसे काम की चीज मिल जायेगी. पर तभी एक आतंक ने उसे आ घेरा कि कहीं सीढ़ी पर ही तो खून नहीं लगा है. जल्दी से वह उठ खड़ी हुई और अपने हाथ से माथे को उस जगह छूकर देखा जहां वह सीढ़ी से टिका था, वहां खून नहीं लगा था. पर वसीयत और चाबी की नाकाम तलाश ने उसे निराश कर दिया था. ‘कुछ किया जाना चाहिए’, उसने खुद से कहा, ‘इसे इस तरह से पड़ा तो नहीं रहने दिया जा सकता.’

उसने अपनी स्कर्ट पहनी और भवन के रखवाले को बुलाने चली गयी.

■

भवन के रखवाले ने कमरे में आकर पहले तो पूरे नजारे का जायजा लिया और जब उसकी नजर सीढ़ी पर पड़ी तो आश्चर्य हुआ कि सीढ़ी हिल रही थी. वह पास गया और सीढ़ी उठाकर किनारे कर दी.

कियेन को होश आ रहा था. दर्द से कराहते हुए उसने ऊपर उठने की कोशिश की पर उठ नहीं पाया.

“ऐसे कोई मरता है?” रखवाला बुदबुदाया और कियेन को सहारा देकर खड़ा करने की कोशिश करने लगा.

वह अपनी आंखों पर विश्वास न कर सकी. पर जब उसने कियेन को अपने सहायक के सहारे से अपने पांवों पर खड़े, पतली आवाज में सीढ़ी को कोसते देखा तो उसे यकीन आ गया कि वह जिंदा है.

“यह तो हद हो गयी है.” वह तीखी आवाज में बोली, “किसी ने कभी सुना भी नहीं होगा कि ऐसा कहीं होता है. एक इज्जतदार आदमी. . .मैं पूछती हूं, लोग हमारे बारे में क्या सोचेंगे?”

“आप चुप भी कीजिए”, भवन के रखवाले ने उसके पागल प्रलाप को टोका और बोला, “जाकर किसी डाक्टर को ले आइए. मैं इन्हें बिस्तर पर लिटाता हूं.”

वह प्रोफेसर को कंधे पर लादे हुए बाहर के हॉल तक लाया जहां तमाम फर्नीचर के बीच में एक पलंग भी पड़ा था. . . कपड़े उतारे जाते समय कीयेन लगातार बुदबुदा रहा था, “मैं बेहोश नहीं था, मैं बेहोश नहीं था” वह यह मानने के लिए तैयार ही नहीं था कि कुछ देर के लिए वह बेहोश हो गया था.

थेरेस डाक्टर को बुलाने के लिए बाहर निकल आयी थी. सड़क पर आकर वह धीरे-धीरे शांत होने लगी थी. तीन कमरे तो उसी के हैं. इसके तो कागजात भी उसी के नाम हैं. अब तक एक ही सवाल उसके मन में उठ रहा था, “अब क्या होगा? जब मरा हुआ आदमी ही जीवित हो गया तो आगे कुछ भी हो सकता है!” □

चलते-चलते

जार्ज बर्नार्ड शॉ को 1925 में जब उनकी अन्यतम कृति ‘सेंट जोन’ पर नोबेल पुरस्कार मिला तो उसे ठुकराते हुए उन्होंने कहा, “उस तैरने वाले के लिए उस समय ‘रक्षा बेल्ट’ फेंकी गयी है, जो किसी तरह से तैरते-तैरते किनारे पर पहुंच गया है.”

वह असफलताओं से खेलता रहा

•जॉन गाल्सवर्दी

जिंदगी में तकलीफें अक्सर आती हैं और चली जाती हैं. कुछ उसे भूल जाते हैं और कुछ उसे गम बनाकर जीते हैं. मगर कभी ऐसे क्षण भी आते हैं जब तकलीफें ही जीने का सहारा बन जाती हैं!—मानव मन की इसी जीजिविषा को रेखांकित करती एक अपंग की गाथा

अंग्रेजी कहानी

ऋतु गर्म हो या ठंडी, अच्छी हो या बुरी, इससे अधिक निश्चित बात और कोई न थी कि वह लंगड़ा आदमी शहतूत की टेढ़ी-मेढ़ी छड़ी के सहारे चलता हुआ यहां से अवश्य गुजरेगा. उसके कंधे पर लटकती हुई खपच्चियों की बनी हुई टोकरी में एक फटी-पुरानी बोरी से ढके हुए ग्रोंडसील के बीज पड़े हुए थे. ग्रोंडसील घास की तरह एक छोटा-सा पौधा है, जिसमें पीले रंग के फूल लगते हैं. पालतू पक्षी इसके बीज शौक से खाते हैं. खुंबियों के मौसम में वह खुंबियां भी अखबार में लपेटकर टोकरी के अंदर रख लेता था. उसका चेहरा सपाट, मजबूत था. उसके लाल दाढ़ी की रंगत भूरी होती जा रही थी और झुर्रियों भरे चेहरे से उदासी टपकती थी, क्योंकि उसकी टांग में हर समय टीसें उठती थीं. एक दुर्घटना में उसकी यह टांग कट गयी थी और अब सही-सलामत टांग से कोई दो इंच छोटी थी. टांग की पीड़ा और काम से असमर्थता उसे हर समय इनसान के नश्वर होने का अहसास दिलाती थी. शक्ल से वह संपन्न न सही, सम्मानित अवश्य दिखाई देता था. क्योंकि उसका नीला ओवरकोट बहुत पुराना था. जुराबें, सदरी, और टोपी निरंतर उपयोग से घिस-पिट गयी थीं और बदलती हुई ऋतुओं ने उन पर स्पष्ट निशान छोड़े थे. दुर्घटना से पूर्व वह गहरे पानी में मछलियां पकड़ा करता, लेकिन अब बेस-वाटर के कस्बे में एक स्थान पर फुटपाथ के किनारे सुबह दस बजे से शाम सात बजे तक पालतू पक्षियों का खाजा बेचकर जीवन के बुरे-भले दिन काट रहा था. राह चलती हुई सम्मानित महिलाओं में से किसी के मन में अपने पालतू पक्षी की सेवा का खयाल आता तो वे उससे एकाध पिनी के बीज खरीद लेतीं.

जैसाकि वह बताता था, कई बार उसे बीज प्राप्त करने में बहुत कठिनाई होती थी. वह सुबह पांच बजे बिस्तर से उठता. भाग-दौड़ में लंदन से देहात की ओर जानेवाली गाड़ी पकड़ता और उन खुले मैदानों में पहुंच जाता जहां केनरी और अन्य पालतू पक्षियों की खूराक मिलने की संभावना होती थी. वह बड़ी कठिनाइयों से अपनी असमर्थ टांगें धरती पर घसीटता था. प्रकृति का अत्याचार देखिए कि धरती जिस पर वह घास के बीज ढूंढ़ता था, बहुत कम शुष्क होती थी. प्रायः उसे सिर झुकाकर कीचड़ और कुहरे में पीली छतरियोंवाले छोटे-छोटे पौधे इकट्ठे करने होते. वह स्वयं कहा करता कि कम पौधों के बीज सही-सलामत मिलते थे. अधिकांश हिमपात के कारण नष्ट हो जाते थे. बहरहाल, जो भाग्य में होता, मिल जाता. वह उसे लेकर गाड़ी के द्वारा लंदन वापस आता और फिर दिनभर के अभियान पर निकल खड़ा होता. सुबह से शाम

तक परिश्रम के बाद रात के नौ-दस बजे तक वह लड़खड़ाता घर की ओर चल देता. ऐसे अवसरों पर, विशेषतः अनुपयुक्त परिस्थितियों में, उसकी आंखें जो अभी तक समुद्र की अज्ञात विशालताएं देखने के विशेषता से वंचित न हुई थीं, आत्मा की गहराइयों में छुपे हुए स्थायी दुख का पता देतीं. उसकी यह स्थिति ऐसे पक्षी से मिलती-जुलती थी जो पंख कटने के बावजूद बार-बार उड़ने का प्रयत्न कर रहा है.

कभी-कभार जब ग्रोंडसील के बीज न मिलते, असमर्थ टांग में शिद्दत की पीड़ा उठती, या कोई ग्राहक नजर न आता तो बरबस उसके मुख से निकलता, 'कितना कठिन है यह जीवन.'

टांग की पीड़ा तो उसे सदा रहती थी, फिर भी वह अपने दुख , ग्रोंडसील बीज की कमी या ग्राहकों की लापरवाही की शिकायत बहुत कम करता था. शायद इसलिए कि वह जानता था, उसकी शिकायत पर कान धरने वाले बहुत कम होंगे. वह फुटपाथ पर चुपचाप बैठा या खड़ा रहकर गुजरनेवालों को देखता रहता था. बिलकुल उसी प्रकार जैसे कभी वह इन लहरों को देखा करता था, जो इसकी नाव से आकर टकराती थीं. उसकी कभी न थकने वाली तहदार नीली आंखों से आसाधारण धैर्य व सहनशीलता की भावनाएं प्रकट होती थीं. अवचेतन रूप में यह भावनाएं एक ऐसे व्यक्ति के धर्म को प्रकट करती थीं जो हर बड़ी से बड़ी कठिनाई में कहता हो, 'मैं आखिरी दम तक लड़ूंगा.'

यह बताना बहुत कठिन है कि दिनभर फुटपाथ पर खड़े-खड़े वह क्या सोचता था! मगर उसकी सोच पुराने युग से संबंधित हो सकती थी. हो सकता है, वह गडोन के रेतीले किनारों के बारे में विचार करता हो या ग्रोंडसील की कलियों के बारे में चिंतातुर हो जो अच्छी तरह खिलती न थीं. कभी टांग उसकी चिंता का विषय बन जाती, तो कभी वह कुत्ते जो उसकी टोकरी देखने ही सूंघते हुए आगे बढ़ते और बहुत बदतमीजी का प्रदर्शन करते थे. संभवतः उसे अपनी पत्नी की चिंता भी थी जो गठिये के पीड़ाजनक रोग से ग्रस्त थी. कभी वह भी मछेरा था. इसलिए अभी तक चाय के साथ हेरिंग मछली खाने की इच्छा होती थी. संभव है, वह यही सोचता हो कि मछली कैसे प्राप्त करे! मकान का किराया भी देना था, इसकी चिंता भी उसे पागल करती होगी. या ग्राहकों की संख्या भी तो दिन ब दिन कम होती जा रही थी और एक बार फिर टांग की पीड़ा की तीव्रता का अहसास! उफ्!

राह चलने वालों में से किसी के पास इतना समय न था कि एक क्षण रुककर उसकी ओर देखें. कभी-कभार कोई महिला अपने चहेते मियां-मिट्ठू के लिए एकाध पिनी के बीज खरीदती और लपक-झपक आगे बढ़ जाती. सच बात तो यह है कि लोग उसकी ओर देखते भी क्यों! उसमें कोई खास बात तो थी नहीं. बेचारा सीधा-सादा भूरी दाढ़ीवाला आदमी था, जिसके चेहरे की झुर्रियां बहुत गहरी और स्पष्ट थीं और जिसकी एक टांग में नुक्स था. उसके बीज भी इतने खराब होते थे कि लोग अपने पक्षियों को खिलाना पसंद न करते और साफ कह देते कि आजकल तुम्हारे ग्रोंडसील बीज अच्छे नहीं होते और फिर साथ ही क्षमापूर्वक कहते 'ऋतु भी तो खराब है.'

▣ जॉन गाल्सवर्दी
जन्म : 14 अगस्त, 1867 (किंग्स्टन)
सन् 1932 में नोबेल पुरस्कार से सम्मानित. 'द आइलैंड फैरिसीज' 'द मैन ऑफ प्रॉपर्टी', 'द डार्क फ्लॉवर', 'इन चांसरी', 'टु लेट' आदि कृतियां इनकी चर्चित कृतियां मानी जाती हैं.
मृत्यु : सन् 1933

ऐसे अवसरों पर वह कुछ इस प्रकार उत्तर दिया करता था "जी. . .जी हां मादाम! मौसम बड़ा खराब है. आप शायद नहीं जानती. यहां इस जगह मेरी टांग की पीड़ा बढ़ गयी है."

उसकी यह बात शत-प्रतिशत सच थी, लेकिन लोग उस पर अधिक ध्यान न देते और अपने काम से आगे बढ़ जाते. शायद वे समझते हों कि लंगड़े का हर बात में अपनी टांग का जिक्र करना शोभा नहीं देता. प्रकटतः यही नजर आता था कि वह अपनी जख्मी टांग का हवाला देकर दूसरों की हमदर्दियां प्राप्त करना चाहता है, पर असल बात यह है कि उस व्यक्ति में वह शर्म-लिहाज और शराफत मौजूद थी जो गहरे पानी के मछेरों की विशेषता है किंतु टांग का जख्म इतना पुराना हो चुका है कि हर समय उसको चिंता लगी रहती थी. यह दुख और पीड़ाएं उसके जीवन का अभिन्न अंग बन गयी थीं और वह चाहता तो भी उसके जिक्र से बाज नहीं आता. कई बार जब मौसम अच्छा होता और उसके ग्रोंडसील खूब फलदार होते तो उसे ग्राहकों की ओर से ऐसी सांत्वनाओं की जरूरत न पड़ती थी. ग्राहक भी खुश हो उसे आधी पिनी के बजाय एक पिनी दे डालते. हो सकता है इस 'टिप' के कारण उसे अवचेतन रूप में अपनी टांग का जिक्र करने की आदत हो गयी हो.'

वह कभी छुट्टी न करता था, पर कभी-कभार अपनी जगह से गायब हो जाता. ऐसा उस समय होता था जब उसकी टांग की पीड़ा बहुत बढ़ जाती. वह इस स्थिति को कुछ इस प्रकार बयान करता—'आज तो तकलीफों का पहाड़ आ पड़ा है.'

बीमार पड़ता तो उसके जिम्मे खर्च बढ़ जाते. फिर जो काम पर लौटता तो पहले से अधिक परिश्रम करता. अच्छे बीजों की खोज में दूर-दूर निकल जाता और रात गये तक फुटपाथ पर खड़ा रहता ताकि बिक्री अधिक हो और छुट्टियों की क्षतिपूर्ति हो सके.

उसके लिए खुशी का अवसर केवल एक था, और वह था क्रिसमस का त्योहार. कारण यह था कि क्रिसमस पर लोग अपने पालतू पक्षियों पर कुछ अधिक ही कृपालु हो जाते थे और उसकी खूब बिक्री होती थी. बड़े दिन को कोई विशेष ग्राहक उसे छह पेंस की रकम भी दे डालते. फिर भी यह बात अधिक सुखद न थी, क्योंकि आर्थिक परिस्थितियां अच्छी हों या बुरी, इन्हीं दिनों हर साल उसे दमे का रोग दबोच लेता था. रोग के दौरे के बाद उसका चेहरा और पीला पड़ जाता

और नीली आंखों में अनिद्रा की धुंध दिखाई देती. यों लगता जैसे वह किसी ऐसे मछेरे का भूत हो जो समुद्र में डूब गया हो. ऐसे समय में प्रातःकाल के धुंधले प्रकाश में वह अधपके ग्रोंडसील के बीज टटोलता, जिन्हें पक्षी शौक से खा सकें, तो उसके पीले खुरदरे हाथ कांप-कांप जाते थे.

वह प्रायः कहा करता था, 'आप कल्पना भी नहीं कर सकते कि शुरू में इस मामूली से काम के लिए अपने आप को तैयार करने में कितनी कठिनाई पेश आयी. उन दिनों टांग का जख्म नया था और कई बार चलते हुए यों महसूस होता था जैसे मेरी टांग पीछे रह जायेगी. मैं इतना दुर्बल था कि कीचड़ में उसे घसीटना संसार का सबसे कठिन काम नजर आता. ऊपर से पत्नी की बीमारी ने परेशान कर रखा था. उसे गठिया है. देखा आपने मेरा जीवन सिर से पांव तक दुखों से भरा है.

यहां वह एक अविश्वसनीय अंदाज में मुसकराता और फिर अपनी इस टांग की ओर देखते हुए जो पीछे घिसट रही होती थी, गर्वीले ढंग से कहता, "आप देखते हैं न. अब इसमें कोई जान नहीं रही. इसका मांस तो मर चुका है."

उसे देखने वाले किसी भी व्यक्ति के लिए यह जानना बहुत कठिन था कि आखिर इस गरीब अपंग को जीवन से क्या दिलचस्पी थी. स्थायी असहायता, दुख और पीड़ा के स्याह परदों के नीचे इस थके-हारे असहाय पक्षी के लिए जो इसकी आत्मा में छुपा हुआ धीरे-धीरे अपने जर्जर पंख हिलाता रहता था, जीवन के प्रकाश को देखना बहुत कठिन था. इस व्यक्ति का जीवन से चिपटे रहना बिल्कुल अस्वाभाविक दिखाई देता था. भविष्य में उसके लिए आशा की कोई किरण न थी और यह बात तय थी कि भविष्य उसके वर्तमान से कहीं अधिक खराब और खस्ता होगा. रही अगली दुनिया, तो वह उसके बारे में बड़े रहस्यपूर्ण ढंग से कहता, "मेरी पत्नी का विचार है कि दूसरी दुनिया इस दुनिया से बहरहाल बुरी नहीं हो सकती और यदि वस्तुतः इस जीवन के बाद दूसरा जीवन है तो मैं समझता हूं कि उसकी बात सही है."

फिर भी एक बात विश्वास से कही जा सकती है कि उसके मस्तिष्क में कभी यह विचार न आया था कि वह ऐसा जीवन क्यों व्यतीत कर रहा है. क्यों कष्ट उठा रहा है. यों अनुभव होता था, जैसे अपने कष्टों के बारे में सोचकर और अपनी सहनशीलता का इन कष्टों से तुलना करके उसे कोई आंतरिक प्रसन्नता प्राप्त होती है. यह बात सुखदायक बहुत थी. वह मानवता के भविष्य का द्योतक था. दर्पण था, और ऐसी आशा थी जो और कहीं दिखाई नहीं देती.

इस भरी-पूरी दुनिया में कोलाहल से आबाद सड़क के किनारे टोकरी के पास छड़ी के सहारे वह अपना निढाल, किंतु संकल्पपूर्ण चेहरा लिये इस महान और असाधारण मानवीय गुण के एक जर्जर प्रतिमा की तरह खड़ा है जिससे अधिक आशापूर्ण और उत्साहजनक भावना दुनिया में कोई नहीं. वह आशा के बिना प्रयत्न का एक जीवंत उदाहरण है, जीता-जागता प्रतिबिंब है. □

● अनुवाद : सुरजीत

स्टालिन की आंखों का कांटा पास्तरनाक

▣ ओल्गा ईविंस्काया

बोरिस लियोनदोविच पास्तरनाक की प्रेमिका ओल्गा ईविंस्काया के अनुसार पास्तरनाक स्टालिन की आंख में खटकनेवाला दूसरे नंबर का कांटा थे. पहले नंबर का कांटा पास्तरनाक के अनन्य मित्र और सुप्रसिद्ध कवि मेंदलस्ताम थे, जिनकी रक्षा न कर पाने का गम पास्तरनाक को ताउम्र रहा. ईविंस्काया ने अपने संस्मरणों में लिखा है :

'एक दिन फोन की घंटी बजी और क्रेमलिन से किसी ने कहा, "कामरेड स्टालिन आपसे बात करना चाहते हैं." बोरिस स्तब्ध रह गये. वह ऐसी बातचीत के लिए प्रस्तुत नहीं थे. फिर भी उन्होंने दूसरी तरफ की आवाज सुनी—स्टालिन की आवाज! स्टालिन ने काफी भद्दे ढंग से पूछा, "तुम्हारी साहित्यिक गोष्ठियों में मेंदलस्ताम की गिरफ्तारी से संबंधित क्या चर्चा हुई है?" सीधे-सीधे जवाब देने के बजाय बोरिस ने लड़खड़ाना शुरू किया. (जैसाकि उनके साथ अक्सर होता था) "आप जानते हैं वे कुछ नहीं कह रहे हैं, क्योंकि अब हमारा साहित्यिक क्षेत्र रह ही क्या गया है! न कोई साहित्यिक क्षेत्र है, न कोई कुछ कहता है, क्योंकि उन्हें नहीं पता कि उन्हें क्या कहना चाहिए, वे डरते हैं." एक लंबी चुप्पी के बाद स्टालिन ने फिर पूछा, "अच्छा ठीक है. अब यह बताओ कि मेंदलस्ताम के विषय में तुम्हारी क्या राय है?" इस पर बोरिस ने फिर लड़खड़ा-लड़खड़ाकर कहना शुरू किया, "इसमें कोई संदेह नहीं कि वह एक महान कवि है—लेकिन हमारे और उसके बीच कोई मिलन-बिंदु नहीं. हम कविता के पुराने रूपविन्यास को भंग कर रहे हैं, जबकि मेंदलस्ताम पुरानी पद्धति का कवि है. . . ." और बोरिस इसी रौ में देर तक बोलते रहे. स्टालिन चुप सुनते रहे. अंततः पास्तरनाक रुके. तब उनका मजाक उड़ाते हुए स्टालिन ने कहा, "मैं समझ गया. तुम अपने मित्र का साथ नहीं दे पा रहे हो." यह कहकर स्टालिन ने रिसीवर रख दिया. पास्तरनाक को लग रहा था कि मैं एक कमजोर साथी साबित हुआ. वास्तविकता यह थी कि स्टालिन के आकस्मिक और अप्रत्याशित फोन से हतप्रभ व आक्रांत पास्तरनाक कहना कुछ चाहते थे और कह कुछ गये. अपने शब्दों की फिसलन पर उन्हें बहुत वर्षों तक अफसोस रहा. इस बातचीत के तुरंत बाद उन्होंने स्टालिन को विरोध-पत्र लिखा. □

● प्रस्तुति : धीरेंद्र अस्थाना

जीवन की त्रासदी लगातार और लगभग एक सी स्थितियों में हर किसी के साथ जुड़ी हैं और इन त्रासदियों के साथ ही जुड़े हैं वे जाने-अनजाने, भूले-बिसरे प्रेम-प्रसंग जो नोबेल पुरस्कार विजेताओं की निहायत व्यक्तिगत जिंदगी के एकदम जरूरी मसले को सामने रखते हैं और ऐसा प्रश्न चेतना पर छोड़ते हैं जो पाठक को देर तक प्रभावित किये रहता है.

प्रेम-प्रसंग की शुरुआत आखिर कैसे और किन हालात में एक रचनाकार की जिंदगी में होती है, यह एक अलग मुद्दा है, पर यहां हमें देखना यह है कि यह रचनाकार की रचना-शीलता पर कहां तक असर छोड़ते हैं और इनके दूरगामी नतीजे क्या होते हैं!

प्रेम जीवन की अनिवार्य आवश्यकता मान भी ली जाये तो सवाल यह भी है कि उसकी उपयोगिता रचनाकार के रचनासंसार से कहां तक जुड़ी है.

आइए जानें, कुछ उन रचनाकारों के व्यक्तिगत पहलू जिनके जीवन में प्रेम-प्रसंगों ने काफी महत्वपूर्ण भूमिका निभायी—

टूटे हैं बार-बार हम इस मुकाम पर . . .

▣ हरीश पाठक

हेमिंग्वे : दर्दीले एहसास

द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान जबकि हेमिंग्वे की आयु मात्र 19 वर्ष थी, 8 जुलाई, सन् 1918 को वे युद्ध स्थल पर घायल हो गये और उपचार के लिए उन्हें रेडक्रॉस के चिकित्सालय में भरती कराया गया. हेमिंग्वे को जिस वार्ड में भरती किया गया था वहां उनकी देख-रेख के लिए तमाम नर्सें मुस्तैद थीं यहां हेमिंग्वे रेडक्रॉस की एक नर्स एजेंस वान कुरोवस्की को दिली तौर पर चाहने लगे. हेमिंग्वे एजेंस के मामले में इतने भावुक हो गये कि एक दिन उन्होंने एजेंस के समक्ष अपना विवाह प्रस्ताव भी प्रस्तुत कर दिया.

हेमिंग्वे के इस प्रस्ताव का एजेंस पर कोई असर नहीं पड़ा. उसने हेमिंग्वे के समक्ष अपने विचार रखते हुए उनके इस प्रस्ताव को पूरी तरह रद्द कर दिया. एजेंस द्वारा विवाह के रद्द किये जाने पर हेमिंग्वे बेहद परेशान हो गये और यह कटु अनुभव. . .पहले प्यार की असफलता उन्हें उम्र भर सालती रही.

एजेंस से मुक्त होकर हेमिंग्वे पूरी सक्रियता के साथ लेखन कार्य में जुट गये और शिकागो आ पहुंचे. हेमिंग्वे यहां एक साधारण-सी नौकरी करने लगे और कुछ समय बाद उन्होंने हेडली रिचर्डसन नामक लड़की से विवाह कर लिया.

हेडली से विवाह करने के बाद हेमिंग्वे 'टोरेंटो स्टार' नामक समाचार-पत्र के विदेशी संवाददाता नियुक्त होकर फ्रांस चले गये. इसी बीच उनके हेडली से जान नामक पुत्र हुआ. पर अचानक ही हेडली और हेमिंग्वे के संबंधों के बीच कटुता आ गयी और यह विवाह एकदम असफल साबित हुआ. अब हेमिंग्वे फिर निराशा के भंवर में विचरने लगे.

खुद को अकेले रखना शायद हेमिंग्वे के स्वभाव में नहीं था. हेडली के बाद उन्होंने पाउलिने पेफेफिर से विवाह रचा लिया और काफी समय तक वे उसके साथ रहे. पाउलिने हेमिंग्वे को बेहद प्यार करती थी और उनके साहित्य की वह एक जागरूक पाठिका थी. पाउलिने से हेमिंग्वे की पेट्रिक और ग्रेगरी नाम की संतानें हुईं.

उसके बाद हेमिंग्वे क्यूबा आ गये. और इस दौरान वे लंबे समय तक गंभीर लेखन करते रहे. क्यूबा आने के बाद पाउलिने से उनके संबंधों का ब्यौरा सिलसिलेवार पता नहीं लगा. इतना जरूर मिलता है कि क्यूबा में आकर हेमिंग्वे ने अपना तीसरा विवाह किया. अपने अतीत से क्षुब्ध और खुद में पूरी तरह खोये रहनेवाला यह रचनाकार प्रेम के मामले में हर बार मात खाता रहा. न जाने ऐसी क्या विवशता थी कि वह अपने दांपत्य संबंधों से पूरी तरह खुश नजर नहीं आता.

अपनी जिंदगी के काफी बरस हेमिंग्वे ने यायावरी में बिताये. लंदन में जिन दिनों हेमिंग्वे रहे उन दिनों उनकी मुलाकात मेरी वेल्श नाम की युवती से हुई. मेरी एक संवाददाता थी और हेमिंग्वे मेरी के व्यवहार से इतने ज्यादा प्रभावित हुए कि उससे उन्होंने विवाह रचा लिया. मेरी हेमिंग्वे की चौथी पत्नी थी. मेरी और हेमिंग्वे अंत तक साथ रहे. यहां तक कि मेरी उम्र के अंतिम पड़ाव पर हेमिंग्वे की पूरी तरह सेवा करने लगी थी. वैचारिक स्तर पर भी मेरी हेमिंग्वे की मददगार साबित हुई.

हेमिंग्वे के इस समूचे जीवन वृत्त में यह बात साफ जाहिर होती है कि जब-जब प्रेम की त्रासदी ने उन्हें एकदम अकेला छोड़ा तब-तब हेमिंग्वे का रचना-

नेरूदा : उलझी जिंदगी का साया

कार न केवल सक्रियता से लेखन कर्म से जुड़ा बल्कि इस बीच उसने कई महत्त्वपूर्ण कृतियों की रचना भी की.

नेरूदा : मेटिल्ड के साथ अंत तक

बचपन से ही रोमांटिक मिजाज के नेरूदा ने दस वर्ष की उम्र से ही कविताएं लिखना प्रारंभ कर दिया था और 19 वर्ष की उम्र में उनकी कविताओं की पहली किताब, जिसके प्रकाशक वे खुद थे, बाजार में आ चुकी थी.

जावा में नेरूदा मारिया हेजनर नामक एक डच लड़की के प्रेम में उलझ गये. मारिया नेरूदा से मोहब्बत करने लगी. वहीं नेरूदा ने मारिया से विवाह रचा लिया. मारिया और नेरूदा एक-दूसरे को दिली तौर से चाहते थे पर नेरूदा का यह संबंध ज्यादा दिनों तक न ठहर सका.

अपनी बर्मा यात्रा के दौरान नेरूदा जोसी ब्लिस नामकी लड़की के प्रेम जाल में उलझ गये. जोसी नेरूदा से ज्यादा उनके पेशे से इश्क करती थी. नेरूदा बर्मा में जोसी के साथ रहे.

1933 में नेरूदा को प्रतिनिधि बनाकर ब्यूनस आयर्स भेज दिया गया. ब्यूनस आयर्स नेरूदा ज्यादा दिनों तक न रह सके फिर वे मेड्रिड चले गये जहां उन्होंने डेलिया डेल केरिल नाम की लड़की से विवाह कर लिया. डेलिया, नेरूदा की दूसरी पत्नी थी. नेरूदा चाहते थे कि वे हर पल खुले-खुले और बेफिक्र रहें पर लेखन के साथ साथ जुड़े उनके राजनीतिक और सामाजिक दायित्व उन्हें हर वक्त उलझाये ही रखते.

हारकर 1938 में नेरूदा स्वदेश वापस आ गये. लंबे समय की दौड़भाग के बाद नेरूदा सक्रिय तौर पर लेखन कर्म में जुट गये इसके साथ ही वे राजनीतिक और सामाजिक कार्यों में भी पूरी गंभीरता के साथ उतर आये. पर इस बीच सरकार ने वामपंथी लेखकों, राजनीतिज्ञों की गिरफ्तारी के आदेश दिये. चूंकि नेरूदा वामपंथ के रंग में सराबोर थे, लिहाजा 1948 में उन्होंने स्वदेश छोड़ दिया और 1952 में जब सरकार ने अपना यह आदेश वापस ले लिया नेरूदा चिली वापस आ गये.

चिली में वापसी के साथ ही नेरूदा मेटिल्ड उरुटिया से मोहब्बत करने लगे. मेटिल्ड से नेरूदा हर कीमत पर विवाह रचाना चाहते थे. नेरूदा की आंतरिक इच्छा थी कि मेटिल्ड उनकी पत्नी बने. और नेरूदा ने मेटिल्ड के समक्ष अपना प्रणय निवेदन भी रख दिया. मेटिल्ड नेरूदा की पत्नी बनी. यह नेरूदा का तीसरा विवाह था. मेटिल्ड के साथ नेरूदा अंत तक रहे.

हेमिंग्वे और नेरूदा के प्रेम प्रसंगों से जहां एक ओर सक्रिय रचनाकार की व्यक्तिगत बेचैनी और उस बेचैनी से

अधूरे नाटक का हश्र

एक बार ओ नील ने अपनी पत्नी को अपना एक नाटक लाने के लिए कहा, जिसे वे पूरा नहीं कर पाये थे और भविष्य में पूरा कर पाने की संभावना भी नहीं थी.

नाटक की पांडुलिपि आ जाने पर उन्होंने पत्नी से कहा, "यह बात नहीं है कि मैं तुम पर भरोसा नहीं करता. लेकिन हो सकता है कि किसी दुर्घटना में तुम्हारी जान चली जाये, या वैसे ही तुम्हारा देहांत हो जाये. मैं नहीं चाहता कि तब कोई और व्यक्ति मेरे इस नाटक को पूरा करे. सो, अच्छा है कि इसे फाड़ डाला जाये."

और ओ नील ने उस पांडुलिपि के टुकड़े-टुकड़े कर डाले. ▣

● प्रस्तुति : सुखबीर

यीट्स : निराशा ही निराशा

उबरने की प्रक्रिया नजर आती है, वहीं स्पष्ट होता है कि प्यार ने जो ऊर्जा रचनाकार को दी, पाठक वर्ग ने उसे अपने लेखक से वसूल कर लिया.

यीट्स : माड गानी की प्रेरणा

हेमिंग्वे और नेरूदा से एकदम अलग और निराली कहानी है विलियम बटलर यीट्स की. यीट्स के प्रणय संबंधों की कहानी से एक बात साफ जाहिर होती है कि रचनाकार कई स्थितियों में अपने विचारों और जिद का पक्का होता है.

कोमल भावनाओं के कवि यीट्स व्यक्तिगत जीवन में बेहद गंभीर और दंभी थे. अपने व्यापार के सिलसिले में यीट्स के पिता लंदन रहे और जब वे पंद्रह वर्ष के थे तब परिवार वापस डबलिन आ गया.

यीट्स की अभिव्यक्ति निराली थी. अपनी अभिव्यक्ति और प्रस्तुति के कारण उन्हें एकदम अलग पहचान मिली 1889 में यीट्स की मुलाकात माड गानी नामक आयरिश लड़की से हुई. माड गानी न केवल खूबसूरत थी वह बहुत बुद्धिमान और यीट्स की कविताओं की अंधी प्रशंसिका भी थी. पहली मुलाकात के साथ ही यीट्स माड गानी को चाहने लगे. पर इस इकतरफा प्यार में उन्हें निराशा ही हाथ लगी.

माड गानी यीट्स को पसंद तो करती थी पर उसे यीट्स से प्यार नहीं था. मजेदार बात तो यह है कि इस बीच यीट्स ने जो भी लिखा, वह माड गानी से प्रेरित होकर ही लिखा.

गानी के प्रति यीट्स का यह आकर्षण लंबे समय तक जारी रहा. 1896 में लेडी ग्रेगोरी से यीट्स की मुलाकात हुई और धीरे-धीरे उनका रोमांस बढ़ता रहा. 1897 में यीट्स ने अपनी

सारी गरमी की छुट्टियां लेडी ग्रेगोरी के घर में बितायी.

यह सब होते हुए भी माड गानी यीट्स के दिलो दिमाग से नहीं हट सकी और 1899 में यीट्स ने खुलासा तौर पर माड के समक्ष अपने प्रणय निवेदन का इजहार किया पर माड ने यीट्स के इस निवेदन को पूरी शालीनता के साथ ठुकरा दिया. कुछ साल बाद माड का विवाह आयरलैंड के एक सैनिक से हो गया.

माड ने यीट्स को व्यक्तिगत तौर पर काफी निराश किया. माड से मिली उपेक्षा और उसके सूखे व्यवहार ने उन्हें कुछ दिनों के लिए निष्क्रिय बना दिया पर इस बीच यीट्स ने अपना सारा ध्यान साहित्य की ओर लगा दिया. यूरोप में उन दिनों पुनर्जागरण का प्रभाव था जिसमें यीट्स ने पूरे जोर-शोर के साथ हिस्सा लिया और उनके कई नाटकों का जगह-जगह प्रदर्शन किया गया. इससे लोगों को आंदोलन के लिए खासी प्रेरणा मिली.

माड के प्रति यीट्स की अंधी आस्था इतनी बढ़ गयी कि 1918 के आसपास इस प्रौढ़ कवि ने माड गानी (अपनी पूर्व

पर्ल एस. बक: प्रेम की तलाश

प्रेमिका) की पुत्री इजल्ट गानी से विवाह का प्रस्ताव रख दिया और इजल्ट ने भी यीट्स के इस प्रस्ताव को अपनी मां की ही तरह नकार दिया. इजल्ट द्वारा विवाह प्रस्ताव नामंजूर किए जाने के कुछ सप्ताह बाद ही निराश यीट्स जार्ज हाइडलीस के आकर्षण में बंध गये. अब वे जल्द ही उससे विवाह रचाना चाहते थे. हाइडलीस ने यीट्स से विवाह रचा भी लिया.

ताउम्र माड गानी के आकर्षण में बंधे यीट्स ने एक दर्जन से अधिक कालजयी कृतियों की रचना की.

पर्ल एस. बक : दो विवाह

ऐसा नहीं कि पुरुष रचनाकार ही प्यार के समीकरणों में उलझा रहा हो. प्यार की इस भीतरी बेचैनी ने महिला रचनाकारों को भी जब-तब छेड़ा. कभी-कभी ऐसा भी हुआ है कि जब महिला रचनाकारों ने अपने दांपत्य जीवन में नीरसता पायी, वे एक झटके से उससे अलग भी हो गयीं.

अपने जीवन के कई वर्ष पर्ल एस. बक ने चीन और अमरीका में बिताये. अमरीका से जब वे चीन वापस आयीं तब चीन में आकर वे एक अमरीकी मिशनरी युवक जान एल. बक को चाहने लगीं. जान भी उन्हें दिली तौर पर प्यार करता था. और दोनों ने विवाह कर लिया. इसके बाद बक दंपति सामाजिक कार्यों में व्यस्त हो गया.

पर्ल एस. बक ने एक खासा समय जान के साथ बिताया पर 1935 के आते-आते उन्होंने जान से नाता तोड़ लिया और 'एशिया मैगजीन' के प्रधान संपादक व जान डे कंपनी के अध्यक्ष रिचर्ड जे. वाल्श से विवाह कर लिया और पेनसिल्वेनिया में चार सौ एकड़ जमीन लेकर नागरिक बस्ती से दूर एक गांव में रहने लगीं.

आंद्रे : कब्र तक साथ-साथ

एकदम अलग किस्म का किस्सा है आंद्रे जीद का जो ताउम्र विवादास्पद रहे. 1869 में जन्मे पेरिस वासी आंद्रे जीद अपनी माता-पिता की इकलौती संतान थे. बचपन से ही आंद्रे का स्वास्थ्य खराब रहता और वे अपनी छुट्टियां अपनी मां के साथ ला राक में बिताया करते थे. वहां आंद्रे की अभिन्न साथी बनती थी जेनी, वेलेनटाइन और मेडलीन. ये सब आंद्रे के इट के रिश्ते में आती थीं. आंद्रे काफी समय तक इनके साथ रहे.

मेडेलीन इन सबमें खूबसूरत थी और होशियार भी. साथ-साथ के रहन सहन ने उन्हें और नजदीक ला दिया और आंद्रे मेडलीन को जी-जान से चाहने लगे.

आंद्रे ने इस प्यार को अपनी बहुत बड़ी उपलब्धि माना और उन्होंने एक दिन मेडलीन के समक्ष विवाह प्रस्ताव रखा जो उसने ठुकरा दिया. दुखी, परेशान आंद्रे ने अपना सारा ध्यान मेडलीन से खींचकर रचनाशीलता में लगा दिया.

पर, 1896 में आंद्रे का विवाह मेडलीन के साथ ही संपन्न हुआ और वे उम्र के अंतिम छोर तक साथ-साथ रहे. मेडलीन का देहांत आंद्रे से कुछ वर्ष पूर्व हो गया पर आंद्रे की अंतिम इच्छा के मुताबिक उन की कब्र कार्नेवेल में मेडलीन की कब्र के नजदीक ही बनायी गयी.

शा: एलीनर का दुख

शा के प्रेम-प्रसंगों का साक्षी है लंदन का वह ब्रिटिश म्यूजियम जहां शा घंटों अपनी प्रेमिका की प्रतीक्षा में काटते थे और म्यूजियम के एक एकांत कोने में उसके साथ भविष्य की कोमल, भुरभुरी और ईमानदार तसवीरें बनाया करते थे. पर शा की इन तसवीरों ने

आंद्रे : मेडलीन का साथ

उनके लाख बार चाहने के बाद भी निश्चित आकार नहीं लिया.

उन दिनों शा के प्रेम प्रसंगों का मूक गवाह ब्रिटिश म्यूजियम एक खूबसूरत नाक नक्श और चुंबकीय आकर्षण वाली युवती की खुशबू से महका करता था. एलीनर मार्क्स नामक यह युवती जार्ज बर्नार्ड शा की प्रेमिका थी. शा एलीनर के साथ म्यूजियम आया करते थे और घंटों एलीनर के साथ न केवल बौद्धिक चर्चाएं करते थे बल्कि भविष्य के सुखद सपने भी बुनते थे. कार्ल मार्क्स की सबसे छोटी पुत्री एलीनर जी जान से शा को चाहती थी और वह शा की गहरी पाठिका व प्रशंसिका

शा :
प्रेयसी के आत्मघात का एहसास!

भी थी. पर दुर्भाग्य की काली रेखा ने शा को गहरी मात दी. न तो एलीनर के सपनों ने आकार लिया और न ही शा ही उसे अपना सके. शा से जेहनी तौर पर मोहब्बत करने वाली एलीनर अचानक एक जोड़ा नीली आंखों से उलझ गयी और एम्बेली एडवर्ड नाम के एक युवक के आकर्षण में खो गयी.

एडवर्ड और एलीनर की ये मुलाकातें विवाह की शक्ल में सामने आयीं, एडवर्ड, एलीनर की चाहत के कारण अपनी पूर्व पत्नी सिथिया से अलग हो गया. पर एलीनर के सपनों के टूटने का क्रम विवाह के कुछ समय बाद ही प्रारंभ हो गया था और एक दिन ऐसा आया जब एडवर्ड की आदतों से तंग आकर बौद्धिक क्षमता वाली इस युवती ने आत्मघात कर अपना अंत कर लिया. एलीनर के आत्मघात ने शा के संवेदनशील मन को क्षतिग्रस्त किया.

एलीनर की मौत से जब शा उबरे तब उनकी जिंदगी में नया मोड़ आया.

'फेबियन सोसायटी' द्वारा 'पूंजीवाद और साम्राज्यवाद' के संदर्भ में एक सेमीनार का आयोजन किया गया. इस सेमीनार में प्रमुख साहित्यकारों, बुद्धिजीवियों ने हिस्सा लिया. मंच से पूंजीवाद के खिलाफ आग उगलने वाले एक तेजस्वी वक्ता का भाषण सुनकर श्रोताओं में बैठी एक भावुक मन वाली युवती इस कदर प्रभावित हो गयी कि उसे लगने लगा यही व्यक्ति उसके विचारों को मान्यता दे सकता है.

सेमीनार के मंच से पूंजीवाद के खिलाफ आग उगलने वाला वह वक्ता था—जार्ज बर्नार्ड शा और श्रोताओं में उस वक्ता के विचारों से पिघलने वाली युवती थी—एनी बेसेंट.

एनी के दिल में शा के प्रति न केवल बेतहाशा मोहब्बत थी बल्कि उसकी दिली इच्छा थी कि वे शा से जीवनपर्यंत जुड़ी रहें. पर दुर्भाग्य कि वे दोनों मिल-मिलकर बिछुड़ते रहे... और एनी एडोल्फ के साथ ब्याह दी गयी.

अपने पहले प्यार में मात खाये शा के दिल में एनी ने फिर किरचें भर दीं, जिसकी चुभन ने शा को बेहद तड़पाया.

उधर एनी भी अपने विवाह से प्रसन्न नहीं थी. शा और एनी का प्यार कई दिनों तक परवान चढ़ा. वे सुखद भविष्य की शानदार योजनाएं बनाते नहीं थकते थे.

पर शा और एनी के संबंधों के बीच अचानक कटुता आ गयी. दरअसल, इस हादसे की शुरुआत एक मोहभंग से हुई. इंग्लैंड के एक मजदूर आंदोलन के दौरान एनी ने पाया कि अपने विचारों और रचनात्मकता से शा भले ही क्रांतिकारी हों पर व्यक्तिगत तौर पर वह एक कायर और भगोड़ा इंसान है.

इस घटना ने एनी के दिल में शा के प्रति नफरत और अविश्वास के बीज बो दिये और तब जब शा ने एनी के समक्ष अपना विवाह प्रस्ताव रखा तो एनी ने इतनी कड़ी शर्तें रखीं कि शा भौंचक्के रह गये. और इस तरह इस प्रेमकथा का हिंदी फिल्मों की मानिंद तयशुदा अंत हो गया. □

महान कला : हंसी-मजाक में

■ टामस मान

सन् 1929 में स्टाकहोम में दी गयी एक पार्टी में मैं विश्वप्रसिद्ध उपन्यासकार, सल्मा लागरलाव की बगल में बैठा हुआ था. मैं उनके सर्वाधिक लोकप्रिय और नोबेल पुरस्कार विजेता उपन्यास 'गूस्टा बर्लिंग की कहानी' के बारे में बातें कर रहा था कि किस प्रकार वह कई भाषाओं में अनूदित होकर देश-काल की सीमाएं पार कर चुका है.

"हां, सचमुच वह बहुत लोकप्रिय हुआ है," सल्मा लागरलाव ने कहा, "पर सच मानिए, उसे लिखते समय मैंने ऐसा कभी नहीं सोचा था, मैंने यह अपने छोटे-छोटे भतीजे-भतीजियों के लिए लिखा था... उनका मन बहलाने के लिए."

यह सुनकर मुझे खास खुशी हुई, क्योंकि यही बात मेरे साथ भी हुई थी.

तब मैंने उन्हें अपने उपन्यास 'बडेनब्रुक्स' के बारे में बताया, जिस पर मुझे नोबेल-पुरस्कार मिला था. वह मैंने अपने परिवार के मनोरंजन के लिए लिखा था... और उसे पढ़कर हम इतने हंसे थे कि हंसते-हंसते हमारे पेट में बल पड़ गये थे. तब क्या हममें से किसी को पता था कि इस उपन्यास या जो कुछ भी वह है, की बदौलत एक दिन मैं स्टाकहोम में 'गूस्टा बर्लिंग' कहानी की लेखिका के संग बैठूंगा.

इन दो उपन्यासों का जिक्र मैं यहां यह बताने के लिए कर रहा हूं कि विश्वभर में प्रसिद्धि प्राप्त करने वाली कला सृजन के समय अपनी असलियत से परिचित नहीं होती, बल्कि व्यक्तिगत और सनकी किस्म का हंसी-मजाक समझी जाती है. और ऐसे हंसी-मजाक को जन्म देने वाले व्यक्ति को बिलकुल ही यह अहसास नहीं होता कि उसका वह हंसी-मजाक सम्मान पाने के योग्य भी है. □

● प्रस्तुति : सुखबीर

फिनिश कहानी

बूढ़ी हवेली

● फ्रांस एमिल सिल्लापा

इस बूढ़ी हवेली की दीवारों पर कई सपने अपनी अदृश्य मुहरें लगाकर विलीन हो चुके थे. ऐसे ही एक सपने की मूक गवाह, उस शाम ने ऐसा क्या देखा कि उसकी आह से बूढ़ी हवेली की दीवारें भी सिसक उठीं?

सेल्मा कोल्जास को उसके साथी अच्छी तरह से समझते नहीं थे. विशेष रूप से वे लोग जो युवा थे और रोमांच पसंद करते थे. उसने कुछ ऐसा प्रभाव बना लिया था जैसे वह दुनिया की सबसे निपुण लड़की है. अपनी सम्मोहक आंखों से वह ऐसा जादू फेंकती कि कोई कवि भी सॉनेट लिखने लगता.

लोगों को आश्चर्य था कि उसने विवाह क्यों नहीं किया, उसके बारे में गांव में किसी भी तरह के किस्से नहीं फैले. हर दृष्टि से वह बहुत आकर्षक थी. वह बड़ी सादगी से नृत्य करती और सुरुचिपूर्ण वस्त्र पहनती. इन सारे गुणों के अतिरिक्त उसकी निश्छल आंखें कुछ ऐसी मोहक थीं कि किसी का भी दिल जीत सकती थीं.

एक शाम, एक नृत्य में एक बड़ी आश्चर्यजनक घटना घटी. सेल्मा भी वहां उपस्थित थी. ऐसे कार्यक्रमों में युवतियां अपनी माओं या पारिवारिक मित्रों के संरक्षण में आती थीं. ऐसी ही एक संरक्षिका मादाम लितुका, जो एक अमीर व्यापारी की पत्नी थी, अपनी बेटी एल्मा और संभावित दामाद के साथ वहां आती थी. वह लड़का एक निर्धन छात्र था, जो समय-समय पर उस व्यापारी की मदद से गुजारा करता था और समाज उसे नीची नजरों से देखता था.

जब एल्मा अपने भावी पति के साथ नाचती तो कई परिचित निगाहें और फुसफुसाहटें उसकी मां से टकरातीं, पर आज लग रहा था कि एल्मा की वह पूरी शाम अकेले में ही कटेगी, क्योंकि उसके भावी पति का कहीं नामोनिशान नहीं था. व्याकुलता भरे एक अंतराल के बाद अचानक वह प्रकट हुआ. सेल्मा उसके साथ थी और वह उसी के साथ नाचने लगा.

गुस्से से लाल-पीली हुई व्यापारी की पत्नी झटके से उठी और सारे शिष्टाचार भूलकर दरवाजे से बाहर निकल गयी. उसकी बेटी एल्मा, जो प्यार के बारे में सिर्फ उतना ही जानती थी, जितना उसकी मां ने उसे बताया था, अपनी मां को उठते देख उठी और हिचकती हुई-सी पीछे-पीछे

■ फ्रांस एमिल सिल्लापा

जन्म : 16 सितंबर, 1888, फिनलैंड में.
नोबेल पुरस्कार : 1939 में.
निर्धन किसान परिवार में पैदा हुए सिल्लापा ने फिनलैंड के किसानों को ही अपने लेखन का विषय बनाया. 1916 में पहली पुस्तक 'वाइफ एंड सन' प्रकाशित हुई. 1931 में 'मेड सिल्जा' प्रकाशित होते ही पूरे यूरोप में प्रसिद्ध हो गये. उन्होंने केवल कहानियां और उपन्यास ही लिखे.

चल पड़ी. उस अपमानजनक स्थिति को लेकर अपनी मां के तीखे शब्द उसके कानों में पड़ रहे थे.

इसी बीच एक दयालु मित्र ने छात्र के कानों में फुस-फुसाकर मादाम लितुका की नाराजगी के बारे में बताया.

उस अभागे युवक ने कई तरह से अपनी सफाई देने की कोशिश की पर उसकी क्षमा याचना पर मादाम लितुका ने कोई ध्यान न दिया.

दूसरी ओर सेल्मा ने इल्मारी सेलोने के साथ नाचना शुरू करने के बाद से अपने इस नये संबंध को लेकर पुनर्विचार नहीं किया. इस तरह के संबंधों को लेकर वह ज्यादा सोच-विचार नहीं करती थी. वह सुबह होने तक नाचती रही और उसके बाद अपने भाई और छोटी बहन के साथ, उस शाम के आनंद से संतुष्ट घर चली गयी.

■

कोल्जास परिवार का घर बड़ी रमणीक जगह पर बना हुआ था. पास से गुजरते लोग कई दृष्टियों से उसकी प्रशंसा करते थे. अपने उपभवनों के साथ यह एक बड़ा ही मोहक आकार बनाता था. बारिश के बाद तो यह और भी मोहक लगता था. सफेद दीवारों के ऊपर लाल रंग की ढलवां छत, आसपास सब जगह हरियाली और ऊपर नीला आसमान, इस पर आते-जाते काले बादल उसकी रूप छटा को द्विगुणित कर देते थे.

कोई भी छात्र (ऊपर वर्णित छात्र नहीं) जब पास से गुजरता तो वह दरवाजे के बिल्कुल पास से गुजरने के मोह से थोड़ा लंबा रास्ता लेने में संकोच न करता. वह स्कूल जाने-वाली सेल्मा कोल्जास और उसकी छोटी बहन को शक्ल से पहचानता था और गेट से भीतर झांकते हुए वह यह अनुमान लगा लेता कि वे इस पुरानी हवेली के भीतर किसी न किसी कमरे में चहलकदमी कर रही होंगी. वह उनके भाई उर्तो कोल्जास को थोड़ा-सा जानता था. वह डॉक्टरी पढ़ रहा था.

उस विशेष दिन वहां कोई नहीं दिखाई दिया. यहां तक कि गुलाब तथा अंगूर की बेलें, जो बालकनी तक चली गयी थीं, भी बड़ी बेरुखी दिखा रही थीं.

दूर घर के पिछवाड़े से चिराबेल के विशाल झुरमुट झील तक चले गये दिखते थे. एक छोटी-सी घटना ने घटनाओं की एक कड़ी को जन्म दे दिया था. जैसे एक कली खिलकर फूल बनती है तो पूरी फिजां में ही अपनी सुगंध बिखेर देती है.

ऊपर की एक खिड़की पर सेल्मा एक क्षण के लिए दिखाई दी. पर वह एक क्षण ही खिड़की पर पड़ी उसकी लंबे बालोंवाली छायाकृति को पहचानने के लिए काफी था. हवा से उड़ रहे नीले और सफेद पर्दे को उसने ठीक किया और एक क्षण के लिए विचारपूर्ण दृष्टि से बाहर बिखरी शांति और सौंदर्य को देखा.

इसी एक घटना की उम्मीद से ही तो छात्र कोल्जास निवास के बाहर आकर ठहरता था.

वायनो कोल्जास के सोलहवें जन्मदिन के बाद तो दो दिन और बीत गये हैं, पर इस अवसर पर दी गयी पार्टी के निशान अभी तक दिख रहे थे.

हालांकि घर में फिर से रोजवाले काम शुरू हो गये थे फिर भी सेल्मा पर वे प्रभाव अभी बाकी थे जो उत्सव ने उस पर छोड़े थे.

उसके भाई समेत सारे मेहमान जा चुके थे. बाहर से बुलाया गया हलवाई अपने सारे कारीगरों के साथ लौट गया था. रसोई में चिरपरिचित गंध उठने लगी थी और रसोइये ने अपना काम संभाल लिया था.

वायनो पहले की तरह दूर पार्क में बने गुड़ियाघर में घंटों बैठे रहने की अपनी आदत पर चलने लगी थी.

■

जुलाई की उस गर्म दोपहर को उस पुरानी हवेली में हर चीज सो रही प्रतीत हो रही थी.

समय एक भार-सा लटका हुआ था और बेआवाज आगे खिसक रहा था. सेल्मा कुर्सी के हत्थे पर बैठ गयी और सोचने लगी, "वायनो सोलह साल की हो गयी है—काफी बड़ी हो गयी वह. और मैं अट्ठाइस की हूं इसका क्या मतलब है? याने इतने वसंत मैंने देख लिये हैं और दो साल बाद मैं तीस की हो जाऊंगी. मैं कितनी खुश हूं. क्या यहीं पर बूढ़ा हो जाना संभव है? नहीं. मैं नहीं समझती कि ऐसा होगा." उसने खुद से कहा.

जब भी वह अपने बारे में सोचने बैठती, ऐसे विचार उसके दिमाग में भर जाते. उसके विचार अधिकाधिक अस्पष्ट हो जाते, जैसे उसका दिमाग चीजों को अपने कोटरों में छिपाता जा रहा हो. वह अपने जीवन की खुशियों का महत्व समझती थी. वह जो कुछ चाहती, उसे मिल जाता. वह सुंदर थी, लोकप्रिय थी, पर एक छोटी-सी चीज कहीं ऐसी थी जो नहीं थी. . . वह क्या है, वह नहीं जानती थी.

वायनो का जन्मदिन बीत गया था पर बड़ी बहन अभी कुछ आस लगाये बैठी थी. किसी असामान्य-सी घटना की एक अस्पष्ट-सी प्रतीक्षा उसे थी.

घर की मालकिन होने के नाते उसे पार्टी की सफलता से खुश होना चाहिए था. पर इसके विपरीत वह निरुद्देश्य घर के एक कमरें से दूसरे कमरे में भटक रही थी और घर के रोजाना के काम को वह जैसे टाल रही थी. वह पार्टी में

बाधा पड़ने और किसी चीज के अभाव से रोमांचित थी.

वहां बैठी-बैठी सेल्मा एक पुरानी वाल्ज धुन गुनगुनाने लगी. हालांकि पार्टी में वह धुन नहीं बजी थी.

फिर उसे एक सपने ने आ घेरा जो इतना सजीव था कि वास्तविकता जैसा ही लग रहा था. उसे लगा जैसे वह जुलाई के आखिरी दिनों में दोपहर को एक पार्क में है.

हर चीज उसे वास्तविकता लग रही थी. संगीत की तरह की सनसनी उस पर ऊपर से नीचे तक छा रही थी. उसका मस्तिष्क उससे सराबोर था और लगता था कि प्रकृति की हर चीज इसे प्रतिध्वनित कर रही हो.

■

अपने सारे प्राकृतिक उपहारों के साथ जुलाई का महीना बहुत खूबसूरत होता है. मध्य ग्रीष्म का यह समय वर्ष का सबसे अधिक समृद्ध महीना होता है. फूलों, फलों और फसलों की बहार छायी रहती है. सूरज अपनी पूरी गर्मी से तपता है और दिन सबसे लंबा होता है (सूरज का तपना भारत जैसे गर्म देश में कष्टकर होता है पर फिनलैंड जैसे ठंडे देश में यह वरदान है.) फिर भी दिन ऐसे बीत जाता है जैसे हमारा जीवन बीत जाता है और साल खिसकते चले जाते हैं.

जुलाई के उस दिन एक अजनबी कोल्जास निवास पर आया, आसपास कोई नहीं था. विशालकाय प्रवेशकक्ष खाली था और उसके स्वागत के लिए वहां कोई नहीं था. फिर भी उस बूढ़ी हवेली की स्वागत की भावना ही उसके लिए पर्याप्त थी. वह हवेली को अच्छी तरह से पहचानता था और इसके भीतर की खुशनुमा यादें उसके दिमाग में घूम रही थीं.

वह एक कमरे से दूसरे कमरे में भटकता हुआ बैठक के कमरे में आ गया. वह खड़ा होकर अपने सामने के दृश्य को प्रशंसा भरी नजरों से देखने लगा. घड़ी की टिक-टिक के साथ बहुत पुराने दिनों की यादें ताजा हो आयीं. उसने मेज पर बिछे कढ़े हुए मेजपोश और पियानो के संगीत को छुआ. हर चीज शांत थी. आगंतुक को लगा जैसे उसके हृदय की धड़कन इस शांत जीवन के साथ एकस्वर हो गयी है. हर चीज वैसी ही है जिसकी उसने कल्पना की थी.

अचानक दरवाजा खुला और वह युवक तथा उसकी चाहत में बसी युवती आमने-सामने थे.

एक छोटे से क्षण के लिए प्यार बीच में लटका रह गया. वे अकेले साथ-साथ थे. इस युवती के अलावा सभी लोग खेतों पर गये हुए थे.

अधखुले दरवाजे की देहरी पर खड़ी सेल्मा इल्मारी सेलोने का हाथ थामे अवचेतन में उसके चुंबन की प्रतीक्षा करने लगी. धीरे-से उसने उसे अपनी बांहों में लिया और पुरानी हवेली के इस शांत कोने में उसे चूम लिया. उस क्षण से वे एक-दूसरे के हो गये. सेल्मा के जीवन की खुशियां गर्मियों के किसी फूल या फसल की तरह सचमुच खिलने लगी थीं.

यह क्षण उसके सपने का वास्तवीकृत रूप था.

प्यार ने सेल्मा के दिल पर काबू कर लिया था, वह इसके पूरे अस्तित्व पर छा गया था. उसके जीवन की सबसे बड़ी इच्छा पूरी हो गयी थी.

यह सेल्मा के जीवन का सबसे महान क्षण था. जब वह रोजाना के काम करने लगी, तब भी लगा, जैसे वह सपने में चल रही हो.

देहरी पर इल्मारी से मुलाकात होने से पहले उसे लग रहा था जैसे वह घर में अकेली है और पिता की बनायी हुई इस छत के नीचे वह पूरी तरह से सुरक्षित है. पर अब वह अकेली नहीं थी और उसे किसी भी तरह की असुविधा नहीं हो रही थी.

जब वह मेज पर चाय रख रही थी तो उसे एक नयी

सबक

■ आंद्रे जीद

सन् 1895 में अल्जीरिया से लौटते समय होटल में नामावली के बोर्ड पर नजर पड़ी तो अपने नाम के पास ही ऑस्कर वाइल्ड का नाम देखकर मैं चौंका. वाइल्ड तब तक घोर अपमान और जेल की कैद भुगत चुके थे. उनसे मिलने की आशा में मैं एक दिन के लिए रुक गया. और जब उनसे मिला, तो कई दिन तक रोज मुलाकातें और साहित्य चर्चा होती रही.

एक दिन बातों के दौरान उन्होंने कहा, "रूसी लेखकों का जवाब नहीं. उनकी रचनाएं महान हैं, जिनमें करुणा भरी पड़ी है. शायद तुम जानते होगे कि फ्लॉबेयर का उपन्यास 'मादाम बावेरी' मुझे बहुत पसंद था. लेकिन उसमें करुणा का अभाव है. इसीलिए यह पुस्तक पठनीय नहीं है. किसी पुस्तक को पठनीय और अमर बनानेवाली चीज है—करुणा. जेल में शुरू के छह महीने में इतना दुःखी रहा कि आत्महत्या कर लेना चाहता था. लेकिन जब मैंने दूसरे कैदियों को गहरी नजर से देखा, तो उन्हें अपने जैसा ही दुःखी पाया. तब उनके प्रति मेरी करुणा उमड़ पड़ी और उसी करुणा की बदौलत मैं आत्महत्या करने से बच गया."

आखिर एक दिन मैं वहां से जाने के लिए तैयार हुआ. वाइल्ड मुझे छोड़ने के लिए घोड़ा-गाड़ी में मेरे साथ कुछ दूर आये. रास्ते में उन्होंने मेरी एक पुस्तक 'फ्रूट्स ऑव दि अर्थ' की चर्चा करते हुए उसकी प्रशंसा की. फिर, ऐसे लगा, जैसे वे कुछ कहने से झिझक रहे हों. आखिर घोड़ा-गाड़ी से उतरकर मुझे विदा करते समय उन्होंने कहा, "बेशक तुम्हारी यह पुस्तक सुंदर है—बहुत सुंदर है, लेकिन वादा करो कि भविष्य में फिर कोई पुस्तक 'मैं' में नहीं लिखोगे . . . कला में 'मैं' यानी अहं के लिए कोई स्थान नहीं है." □

● प्रस्तुति : सु.

सार संक्षेप

पागल या संत

■ खोसे एचेगाराई

अलमांते के शाही घराने के लड़के के साथ अपनी बेटी के विवाह की बात पक्की कर देने के बाद दोन लोरेंसो जितना खुश था, अपनी आया खुआना की मरणांत्तक बीमारी के बारे में पता चलने पर वह उतना ही दुखी हो गया. खुआना ने उसे मां का प्यार और दुलार दिया था. इसलिए तुरंत ही वह खुआना को देखने पहुंचा. मरती हुई खुआना के मुंह से ही उसे पता चला कि वह (लोरेंसो) खुआना का ही बेटा है, और खुआना उसकी असली मां है, आया नहीं. लोरेंसो स्तब्ध रह गया. इस रहस्य को जानते ही अपनी संपन्नता, गरिमा और नाम के प्रति एक गहरी विरक्ति ने उसे जकड़ लिया. उसने इस सच्चाई को अपनी बेटी की ससुराल तक पहुंचाने का निश्चय किया और साथ ही अपनी संपत्ति त्याग देने का निर्णय लेकर उसने अपने वकील को भी बुला भेजा. दोन लोरेंसो के घर के लोग हतप्रभ-से उसके निर्णयों पर विचार करते रहे और अंततः पूरा परिवार इस बात पर एकमत हो गया कि लोरेंसो पागल हो गया है. उसके मानसिक इलाज के लिए पागलों के डाक्टरों को बुला लेना चाहिए.

अपने मानसिक इलाज के लिए आये डाक्टरों को देख लोरेंसो आश्चर्य में पड़ गया.

वह पागल है? उसने सोचा. अगर कोई ईमानदार है और ईमानदारी को बनाये रखने के लिए निजी स्वार्थ को तजकर सच्चाई का कार्य करता है तो उसे पागल सिद्ध कर देना चाहिए? नहीं, नहीं... वह गहरे संताप में डूबा हुआ बोला, "आदमी इतना अंधा नहीं होता और इतना पतित भी नहीं होता कि सच्चाई को एकदम नकार दे!" □

● प्रस्तुति : धीरेंद्र अस्थाना

तरह की सनसनी महसूस हुई. यह क्या भावना थी—क्या नवागंतुक उसके लिए स्वीकृतियोग्य नहीं रह गया था? सेल्मा उस परिवर्तन को अनुभव न कर सकी जो उसके भीतर आ गया था. उसका यह सपना दूसरे सपनों में विलीन होता जा रहा था. बिना अपने संबंधों की पूर्णता पाये, वे अतीत में विचरण करने लगे थे. वह इल्मारी सेलोने को पसंद करती थी पर वह अभी उसे अजनबी लग रहा था. जल्दी ही वह कमरे में वापस आ गया. बैठक के कमरे में बैठकर दोनों कॉफी पीते हुए तब तक प्यार भरी बातें करते रहे, जब तक सेल्मा के पिता खेतों से लौट नहीं आये. शाम तक उनकी बातचीत ने मोस्यों कोल्जास और इल्मारी के बीच संवाद का रूप ले लिया था. इल्मारी अपने मेजबान को अपने भविष्य की योजनाओं और सफलताओं के बारे में बताता रहा. उसका खयाल था कि सभी लोग उसकी बात को सहानुभूति पूर्वक सुन रहे हैं और उसके उत्साह के भागीदार हैं.

जो कुछ वह कह रहा था, सबसे ज्यादा सेल्मा ही सुन रही थी. हालांकि साथ ही साथ वह घर का कामकाज भी कर रही थी. वह महसूस कर रही थी कि यह व्यक्ति, जो कुछ ही घंटों पहले उसे इतना प्रिय हो गया था, कितने काम का आदमी था और कितना प्रेमी था...

दिन गुजरने के साथ ही उस पुराने भोजनकक्ष में भी शाम का झुटपुटा सीधे-सादे ढंग से प्रवेश कर गया था. खाना खत्म होने के बाद नौकरानियों को छुट्टी दे दी गयी और थोड़ी देर बाद ही मेहमान ने भी अपने मेजबान से शुभ रात्रि कहकर विदा ली.

■

उस शाम सेल्मा अपना दरवाजा अधखुला छोड़कर बाहर ढल रही शाम का आनंद ले रही थी. इल्मारी पास से गुजर रहा था. दरवाजे को खुला देख वह भीतर आ गया.

"वह आ रहा है" वह अपने से फुसफुसायी. "अब वह मुझे अपनी बाहों में ले लेगा. तब मैं क्या करूंगी?" जवाब वह जानती थी और वह उसे करने देगी. वह जानती थी कि वह उसी के लिए है. उसे लगा कि कुछ नया और सुकुमार उसके दिल के भीतर जन्म ले रहा है और जब तक वह पूरी तरह से आकार नहीं ले लेता, उसे दबाया नहीं जाना चाहिए.

इल्मारी सेलोने सोचता था कि वह औरतों को समझता है, पर उस शाम उसने महसूस किया कि इस मामले में उसे बहुत कुछ सीखना है. काफी समय से वह सेल्मा की अपनी भावी साथी के रूप में कल्पना करता आ रहा था. आज शाम जब वह सीढ़ियां चढ़ रहा था तो वह जानता कि उसके जीवन का वह उदात्त क्षण आ गया है. जिस हवा में वह सांस ले रहा था, लगता था, यह भावना उसमें व्याप्त है. उसे लगा, जैसे वह हवा में उड़ रहा हो.

इसी मनःस्थिति में उसने अपनी प्रियतमा को बाहों में भरकर चूम लिया. वह उसके ऊपर झुकी मुस्करा रही थी. फिर उसने भी इल्मारी को आलिंगन में लिया, इल्मारी ने मुस्कराते हुए कहा, "उस दोस्ती और जादू के नाम जो इस शानदार शाम ने हम पर कर दिया है."

अपने प्रेमी की बाहों में झूलते हुए सेल्मा अस्फुट स्वरों में कुछ बुदबुदायी, उन वाक्यों का अर्थ कुछ न था. बस जैसे भीतर के आवेग को बाहर निकाल रही हो, जैसे बहुत देर की इंतजार के बाद मिलनेवाली दावत का मजा ले रही हो.

जब इल्मारी वहां से चला गया तो सेल्मा पिछले घंटों की घटनाओं के सपने लेती, उन पर पुनर्विचार करती, बैठी रही. वह समय उसके लिए कितना प्रबल था. उसे लगा कि उस थोड़े से अंतराल में वह बहुत बड़ी हो गयी है. पर जैसे ही उसे नींद आयी तो वह उनींदे में भी आश्चर्य कर रही थी कि वह इन सबसे खुद को कितना उदासीन पा रही है. □

फ्रांसीसी कहानी

निर्वासित

● सेमुएल बैकेट

बचपन में घर से उपेक्षित, जवानी में समाज से उपेक्षित, आवारा और लंपट का विशेषण पाने वाले हर समाज में होते हैं . . . प्रस्तुत है योरोपीय समाज के कुछ ऐसे पक्षों की झांकी जो हम में से बहुतों के लिए अपरिचित हो सकते हैं.

सीढ़ियां बहुत नहीं थीं. मैंने उन्हें अनेक बार गिना था. ऊपर चढ़ते हुए भी और नीचे उतरते हुए भी, मगर उनकी संख्या मेरे दिमाग से निकल गयी. मुझे यह कभी पता नहीं चल सका कि पटरी पर पांव रखते समय एक गिना जाये और पहली सीढ़ी पर पांव रखते समय दो-तीन और आगे गिना जाये या पटरी को गिनती में शामिल न किया जाये. जीने के ऊपर पहुंचकर भी मुझे यही दुविधा घेरे रही. दूसरी दिशा में, अर्थात् ऊपर से नीचे भी वही बात थी. हालांकि 'दुविधा' शब्द बहुत वजनदार नहीं है. सच बात तो यह थी कि मुझे यह मालूम नहीं था कि कहां से शुरू करूं और कहां खत्म. नतीजा यह हुआ कि गिनती में तीन बिलकुल भिन्न संख्याएं आयीं और मुझे यह कभी पता नहीं चल सका कि उनमें कौन-सी सही है और जब मैं यह कहता हूं कि वह संख्या मेरे दिमाग से निकल गयी है तो मेरा मतलब यह बताने का है कि उन तीनों संख्याओं में से एक भी मेरे दिमाग में नहीं रही है. यह सच है कि मुझे इनमें से किसी भी संख्या के लिए अपना दिमाग खोजना पड़ेगा और जाहिर है कि वे संख्याएं वहीं मिल भी सकती हैं.

बहरहाल सीढ़ियों की संख्या का कोई महत्व नहीं होता. याद रखने की जो बात है और जिसका महत्व है, वह यह कि सीढ़ियां बहुत-सी नहीं थीं और यह मुझे याद था. यहां तक कि किसी बच्चे के लिए भी वे बहुत ज्यादा नहीं थीं—ऐसे बच्चे के लिए जो आमतौर पर सीढ़ियां चढ़ता-उतरता है और रोजाना उन्हें देखने का आदी होता है.

लिहाजा जब मैं गिरा तो मुझे खास चोट नहीं लगी. जब मैं गिरा तो मुझे दरवाजा बंद होने की आवाज सुनाई दी, जिससे मुझे कुछ राहत मिली. इसका मतलब यह था कि वे डंडे लेकर मेरे पीछे नहीं आ रहे थे और राहगीरों के सामने

मुझे पीटने का उनका कोई इरादा नहीं था, क्योंकि अगर उनका यही इरादा होता तो वे हरगिज दरवाजा बंद नहीं करते, बल्कि इसे खुला छोड़ देते ताकि ड्योढ़ी में जमा लोग मुझे पिटते देखकर सबक लेते. लिहाजा अब उन्होंने मुझे बाहर निकालकर ही तसल्ली कर ली. गटर में जाकर विश्राम करने से पहले मेरे पास इतना समय बच गया था कि मैं अपने इस तर्क पर विचार कर सकता था.

इन हालात में कोई भी बात ऐसी नहीं थी, जो मुझे एकदम उठ खड़ा होने पर मजबूर करती. मैंने अपनी कुहनी पटरी पर टिका दी, अपने हाथ कानों पर रख लिये और उस स्थिति पर गौर करने लगा जो मेरे लिए अपरिचित नहीं थी. लेकिन दुबारा दरवाजा बंद होने की आवाज धुंधली होने के बावजूद ठीक-ठीक सुनाई दी. मेरे हाथ पटरी पर टिके थे और टांगें उड़ने के लिए तैयार थीं. लेकिन वह तो मेरा ही हैट था जो हवा में तैरता हुआ मेरी ओर बढ़ रहा था. मैंने उसे पकड़ लिया और पहन लिया. वे जो कुछ कर सकते थे, अपने परमात्मा के आदेश के अनुसार, ठीक ही कर रहे थे. वे इस हैट को अपने पास भी रख सकते थे लेकिन वह उनका नहीं था, लिहाजा उन्होंने मुझे वह लौटा दिया. लेकिन इतने में ही सारा भ्रम टूट गया.

मैं उठा और उठकर चल पड़ा. याद नहीं, उस समय मेरी कितनी उम्र थी. मेरे साथ जो कुछ घट चुका था, उसमें ऐसी कोई बात न थी जो याद रहती. न उससे बचपन का रिश्ता था और न मृत्यु का इत्यादि बल्कि उसे देखकर बहुतों का बचपन और मृत्यु याद आ जाते थे और मैं न जाने कहां खो जाता था. किंतु यदि मैं कहूं कि उस वक्त मुझ पर शबाब का आलम था तो शायद अतिशयोक्ति न होगा. मेरा खयाल है कि यही वह वक्त होता है, जब आदमी की सारी मानसिक शक्तियां उसके वश में होती हैं. जी हां, मेरा भी यही हाल था. मैंने सड़क पार की और उस मकान की ओर मुड़कर देखा

▣ सेमुएल बैकेट

जन्मः 1906, डबलिन में

नोबेल पुरस्कारः 1969 में

आयरिश मूल के बैकेट की शिक्षा जर्मनी, इंग्लैंड और फ्रांस में हुई तथा फ्रांस में ही बस गये. यहीं जेम्स जॉयस के करीब आये. 1953 में 'वेटिंग फॉर गोडो' के मंचन के साथ ही इनकी ख्याति सब जगह फैल गयी. नाटकों के अतिरिक्त कहानियां और उपन्यास भी लिखे.

जहां से मुझे निकाला गया था. वहां से निकलते समय मैंने मुड़कर नहीं देखा. कितना खूबसूरत दृश्य था. खिड़कियों में जिरेनियम के पौधे लगे थे. जिरेनियम के पौधों पर मैंने कई साल लगाये थे. जिरेनियम अमूमन चलते-पुर्जे ग्राहकों जैसे होते हैं लेकिन अंततः मेरी उनसे ऐसी पट गयी थी कि मैं उनके साथ जो चाहता था, कर लेता था. इस मकान के दरवाजे का मैं हमेशा से बड़ा प्रशंसक रहा हूं जो इसका जीना खत्म होते ही ऊपर दिखाई देता है. भला उसका चित्र कैसे खींचूं? एक विशाल-सा हरे रंग का दरवाजा था, जो ऐसा लगता था, मानो गर्मी से मौसम में हरी सफेद धारीवाले मकान में सजाया गया हो. दरवाजा एक ही रंग के दो खंभों के बीच जमाया गया था और घंटी उसके दाहिनी ओर लगी थी. परदे बहुत ही सुरुचिपूर्ण थे. यहां तक कि जो धुआं चिमनी से उठता था और हवा में फैलकर विलीन होता था, तो पड़ोसियों की चिमनियों के धुएं से कहीं अधिक दुखदायी था. मैंने नजर उठाकर तीसरी और अंतिम मंजिल की ओर देखा तो मेरे कमरे की खिड़की चौपट खुली पड़ी थी. चारों तरफ की सफाई जोर-शोर से हो रही थी. कुछ ही घंटे बाद वे खिड़की बंद कर देंगे, परदे खींच देंगे और सारे कमरे में कीटनाशी दवा छिड़क देंगे. मैं उन्हें भली भांति जानता हूं. उस मकान में तो मैं मृत्यु का भी खुशी से स्वागत करता. मैंने अपने कल्पना-चक्षुओं से देखा—दरवाजा खुला और मेरे पैर बाहर को निकल आये.

मैं उस ओर देखकर डरा नहीं क्योंकि मुझे मालूम था कि वे परदों के पीछे से जासूसी नहीं कर रहे हैं जो वे, यदि चाहते तो, कर सकते थे. लेकिन उनकी रग-रग को पहचानता हूं. वे सब अपने-अपने अड्डों में चले गये थे और अपने कामों में लग गये थे.

इस सबके बावजूद मैंने उन्हें कोई नुकसान नहीं पहुंचाया. मेरा अपना जन्मस्थान से परिचय बहुत गहरा नहीं था, न ही मुझे अपने बचपन, लड़कपन की घटनाएं याद थीं. और वे सब चीजें इतनी अधिक गड्डमड्ड थीं कि मैंने सोचा, शायद मेरा कहीं नाम-निशान भी न रहा हो. लेकिन मैं गलती पर था. मैं बाहर बहुत कम ही निकलता था. कभी खिड़की तक चला गया, परदे हटाये और जरा बाहर झांक लिया. लेकिन वहां से मैं एकदम कमरे के भीतर लौट आता, जहां बिस्तर बिछा होता. समस्त परिवेश से मुझे बड़ी उलझन होती थी. लेकिन ऐसे वक्त में मुझे क्या करना चाहिए, यह मैं अच्छी तरह जानता था. पहले मैंने अपनी निगाहें ऊपर आसमान की ओर उठायीं, जहां से असहाय को सहायता की उम्मीद होती है, जहां कोई सड़क नहीं है, जहां कोई भी बेफिक्र घूम-फिर सकता है—जैसे मरुस्थल में. वहां कोई चीज आंख के रास्ते में नहीं आती, जहां चाहे, जो चाहे देख सकते हैं, अलबत्ता हर आदमी की अपनी नजर की सीमा जरूर होती है. जब मैं छोटा था तो मेरा खयाल था कि मैदानी जगहों में जिंदगी अधिक सुखकर होती है, लिहाजा मैं लूनबर्ग नामक बंजर जगह में चला गया. इसी मैदानी जीवन का सुख मेरे मस्तिष्क में बसा हुआ था जो मुझे वहां ले गया.

मैं चल पड़ा. उस वक्त मेरी चाल देखने लायक थी. देह के निचले अवयवों में ऐसी कड़ाई महसूस हुई मानो प्रकृति ने मुझे घुटने दिये ही नहीं. मेरे पैर कुछ अजीब आड़े-तिरछे पड़ रहे थे—कभी दायीं ओर और कभी बायीं ओर को झुकते हुए. मैंने अक्सर अपनी इन खामियों को दूर करने की कोशिश की है—अपना धड़ सीधा रखता और घुटनों में कुछ लचक लाता था और मेरे पैर चलते समय एक दूसरे के ठीक सामने रहते थे. मेरा यह व्यवहार, मेरे खयाल से किसी हद तक ऐसी प्रवृत्ति के कारण बना है, जिससे मैं पूरी तरह से कभी मुक्त नहीं हो पाया हूं और जैसा कि अपेक्षित था, उसने मेरे किशोर जीवन में मुझे पर अपनी छाप छोड़ी थी. यह वह उम्र होती है जिसमें आदमी के चरित्र का निर्माण होता है और जहां तक मेरा सवाल है, यह उम्र तब से शुरू हुई जब मैं कुर्सी के पीछे फुदकता रहता था. यह तीसरे दर्जे तक जारी रही जहां मैंने अपनी पढ़ाई खत्म की थी. उस वक्त मुझे पतलून में पेशाब या टट्टी कर देने की बुरी आदत पड़ गयी थी. और यह दोनों काम मैं नियमित रूप से सुबह-सुबह लगभग दस-साढ़े दस बजे शुरू करता था और सूरज डूबने तक यह काम जारी रहता. मुझे यही महसूस होता जैसे कुछ हुआ ही नहीं. यह खयाल मेरे लिए असह्य था कि मैं अपने कपड़े बदल लूं या अपनी मां से सही बात बता दूं जो मेरी मदद कर देती थी और बदले में कभी मुझसे कोई सवाल नहीं करती थी. मैं नहीं जानता ऐसा क्यों होता था लेकिन सारा दिन मैं अपनी नन्हीं-नन्हीं जांघों के बीच जलन और दुर्गंध या पिछले भाग में चिप-चिपाहट लिये गुजार देता था.

▣

मौसम अच्छा था. मैं सड़क पर बढ़ता गया, लेकिन जहां तक संभव हुआ, रहा पटरी पर ही. पटरी चाहे कितनी ही चौड़ी क्यों न हो, एक बार मैं चल पड़ा तो मेरे लिए उसकी चौड़ाई कभी काफी नहीं रहती और अजनबियों के लिए असुविधा पैदा करने से मुझे नफरत है. पुलिस के एक सिपाही ने मुझे रोका और कहा, "सड़क वाहनों के लिए है और पटरी पैदल यात्रियों के लिए." यह उक्ति मुझे वैसी ही लगी जैसी ओल्ड टेस्टामेंट का कोई अंश. लिहाजा मैं पटरी पर चलने लगा, जैसे अपने किये पर पछतावा हुआ हो. फिर कोई बीस कदम चलने पर मुझे एक भयंकर धक्का लगा, किंतु मैं उसी पटरी पर जमा रहा और आखिर में एक बच्चे को बचाने की

कोशिश में मुझे खुद को जमीन पर गिराना पड़ा.

मैं गिरा और अपने साथ एक बूढ़ी महिला को भी लेकर गिरा जो चमकी और गोटे के कपड़े पहने हुए थी. उसका वजन लगभग ढाई मन होगा. गिरकर जो वह चीखी-चिल्लायी तो भीड़-इकट्ठा हो गयी. मुझे पूरी उम्मीद थी कि उसकी जांघ की हड्डी टूट गयी होगी, बुढ़ियों की जांघ की हड्डी ही आसानी से टूटा करती है लेकिन उसके साथ सिर्फ इतना ही नहीं हुआ. मैंने भीड़ जमा होती देख वहां से खिसक निकलने की सोची और बुदबुदाते हुए न जाने कौन-सी शपथ ली. मानो चोट मुझे ही लगी हो और दरअसल हुआ भी यही था. मगर मैं उसे साबित कैसे करता?

ज्यों ही मैंने वहां से खिसकना चाहा कि एक दूसरे सिपाही ने मुझे रोक लिया. वह हर तरह से पहले जैसा ही था. उसमें पहले से इतना अधिक साम्य था कि मुझे लगा कि कहीं वह पहला ही तो नहीं है, उसने मुझे बताया कि पटरी सभी के लिए है, मानो यह कहना चाहता हो कि मैं उन 'सभी' से अलग हूं. मैंने उससे कहा, "क्या आप यह चाहते हैं कि मैं गटर में गिर जाऊं?" उसने जवाब दिया, "तुम चाहे भाड़ में जाओ लेकिन दूसरों को चलने के लिए रास्ता छोड़ो. अगर तुम दूसरों की तरह ढंग से नहीं चल सकते तो तुम्हें घर से बाहर आने की जरूरत ही क्या है?" और संयोग से मेरा भी यही खयाल था. उसने जो मेरे घर की बात कही, उसे सुनकर भी मुझे राहत मिली. ठीक उसी समय एक शव-यात्रा गुजरी, जैसा कि कभी-कभी हो ही जाता है. हैटों की जैसे हलचल मच गयी और उसी क्षण अनेक उंगलियां हरकत में दिखाई दीं. निजी रूप से, यदि मैं मजबूरी में भी क्रास का चिह्न बनाता तो मैं उसे ठीक ढंग से काटता. लेकिन जिस भौंडे और भद्दे ढंग से उन्होंने किया, उससे लगा, जैसे यों ही बला टाली हो.

▣

मैं चटपट एक घोड़ागाड़ी में सवार हो गया. जिन लोगों को मैंने अभी-अभी गुजरते देखा था और जो लोगों से बड़े जोर-शोर के साथ बहस कर रहे हैं, उनका मुझ पर बड़ा गहरा प्रभाव पड़ा. मैं ऊंघ-सा रहा था कि गाड़ीवान की आवाज ने मुझे चौंका दिया. उसने खिड़की बंद होने पर दरवाजा खोला और मुझे पुकारा. मुझे उसकी मूंछों के अलावा और कुछ भी नहीं दिखाई दिया. "आपको जाना कहां है?" उसने पूछा. वह अपनी सीट से उतरकर मुझसे केवल यही पूछने के लिए आया था. जहां तक मेरा अपना सवाल है, मैं शायद काफी आगे निकल आया था. मैंने अपने दिमाग पर जोर दिया और उस सड़क या इमारत का नाम याद करने की कोशिश की. "क्या तुम्हारी गाड़ी बिकाऊ है?" मैंने उससे पूछा और यह भी कहा, "मेरा मतलब है, बिना घोड़े के." मुझे भला घोड़े का क्या करना है? मगर मुझे गाड़ी का भी क्या करना है? ज्यादा से ज्यादा यही तो होगा कि मैं उसमें पैर पसारकर बैठा रहूं. मुझे खाना लाकर कौन देगा? "चलो, चिड़ियाघर ले चलो," मैंने कहा. राजधानी में और चिड़ियाघर न हो, ऐसा बहुत कम देखा गया है. मैंने उससे जरा धीरे-धीरे चलने के लिए कहा. वह हंस दिया. शायद इस बात पर कि मैं यह भांप गया था कि वह बहुत तेज रफ्तार से मुझे चिड़ियाघर ले जायेगा. हो सकता है, वह इसलिए हंसा हो कि मैं उसकी गाड़ी खरीद रहा था या यह भी संभव है कि वह मुझ पर, मेरे व्यक्तित्व पर ही हंसा हो, जिसकी उपस्थिति ने ही गाड़ी का स्वरूप बदल दिया हो.

जी हां, चाहे आपको अचरज ही क्यों न हो, लेकिन उस समय मेरे पास कुछ पैसे बचे हुए थे. मेरे पिताजी ने मरते समय जो छोटी-सी रकम छोड़ दी थी, जिसके सियाह-सफेद का मैं ही मालिक था. मुझे अभी यही खयाल आता है कि कहीं पिताजी ने ये मेरे पैसों में ही से तो नहीं चुराये थे. क्योंकि उस वक्त मेरे पास कानीकौड़ी भी नहीं थी. मगर इसके बावजूद मेरी जिंदगी खूब मजे से चलती रही और एक हद तक मेरी इच्छानुसार ही चलती रही. इस प्रकार की स्थिति का सबसे बड़ा लाभ यह होता है कि खरीद शक्ति का

लिखना इतना आसान !

▣ फॉकनर

मैंने लिखना कैसे शुरू किया? उन दिनों मैं न्यू आर्लियंस में रहता था और गुजारे के लिए कभी-कभी छोटा-मोटा काम कर लिया करता था. उन्हीं दिनों शरवुड एंडरसन से मेरी मुलाकात हुई. दोपहर के बाद हम मिलते, घूमते, बातें करते, शराब पीते. दोपहर के पहले मैं उन्हें कभी नहीं मिल सका था. वे अपने काम में लगे रहते. मैंने सोचा कि अगर यही लेखक का जीवन है, तब तो मैं भी लेखक बन सकता हूं. सो, मैंने अपनी पहली पुस्तक लिखनी शुरू की.

मुझे लगा कि लिखना बड़े मजे की बात है. मैं यह भी भूल गया कि तीन सप्ताह से मैं एंडरसन से नहीं मिला हूं. आखिर एक दिन वे मेरे पास आये और उन्होंने पूछा, "क्या बात है? मुझसे नाराज हो?" मैंने बताया कि मैं एक पुस्तक लिख रहा हूं. "या खुदा!" उन्होंने कहा और चले गये.

मैंने वह पुस्तक पूरी लिख ली. उसका नाम था : 'सोल्जर्स पे'.

...और फिर, एक दिन एंडरसन की पत्नी मुझसे मिली और उसने पुस्तक के बारे में पूछा. मैंने बताया कि वे आपसे एक समझौता करने को तैयार हैं. अगर उन्हें आपकी पुस्तक पढ़नी न पड़े, तो वे अपने प्रकाशक से उसे स्वीकृत करने के लिए कह सकते हैं."

"मंजूर है," मैंने कहा.

इस तरह मैं लेखक बन गया. □

• प्रस्तुति : सु

फ्रांसीसी तर्कबोध

■ बोरिस पास्तरनाक

मैं फ्रांसीसी साहित्य का हमेशा से ही प्रशंसक रहा हूं. (प्रथम विश्व) युद्ध के बाद से ही फ्रांसीसी लेखन ने एक नया स्तर अपना लिया है, जिसमें शब्दाडंबर नहीं है. विषयवस्तु में भिन्नता के बावजूद फ्रांसीसी साहित्य हमारे साहित्य के बहुत करीब पड़ता है. पर जब फ्रांसीसी लेखक अपने आपको राजनीतिक सिद्धांतों से प्रतिबद्ध कर लेते हैं तो उनका आकर्षण कम हो जाता है. ऐसे में या तो वे गुटों में बंटे हुए और पाखंडी लगते हैं या फिर लगता है कि फ्रांसीसी तर्कबोध ही ऐसा है कि वे अपने विश्वासों को ही निष्कर्ष के रूप में लाना पसंद करते हैं. □

नितांत अभाव होता है. जब आपके पास फूटी कौड़ी भी नहीं होती तो जहां भी आप शरण लेंगे, वहां से आपको हफ्ते के भीतर-भीतर निकाल ही दिया जाता है. ऐसी हालात में आपके घर का निश्चित पता होना तो असंभव ही है, क्योंकि जब पैसा ही नहीं होगा तो घर कहां से आयेगा? यही कारण है कि मुझे इस बात का पता बहुत देर से चला कि वे किसी मामले को लेकर मेरी तलाश कर रहे हैं. इस बारे में उन्होंने क्या तरीका अपनाया, मैं नहीं जानता. मैं अखबार नहीं पढ़ता, न ही मुझे याद है कि उन वर्षों के दौरान मैंने किसी से कोई बात की हो. अलबत्ता तीन-चार बार भोजन के बारे में मैंने जरूर अपनी जबान खोली थी. कुछ भी हो, मुझे उस बात का किसी न किसी तरह पता चल ही गया, वरना मुझे मिस्टर निट्ट नामक वकील के यहां जाने की क्या आवश्यकता थी. यह भी कैसी अजीब बात है कि लोग कुछ लोगों के नाम कभी भूल ही नहीं पाते, वरना मुझे वह अपने यहां क्यों आने देते. उन्होंने मेरी शिनाख्त की, जिसमें कुछ वक्त लगा. मैंने अपने हैट के अस्तर में अंकित अपने नाम के धातु के आद्यक्षर दिखाये. लेकिन उनसे कुछ सिद्ध होने के बजाय संदेह और बढ़ गये. उन्होंने मुझसे दस्तखत करने को कहा और खुद एक बेलनाकार रूल से खेलने लगे. रूल ऐसा था कि उससे आप बैल को भी मारकर गिरा सकते हैं. "अब इन्हें गिन लीजिए!" वह बोले. एक युवा महिला, जो शायद भ्रष्ट थी इस मुलाकात के समय गवाह के रूप में मौजूद थी. मैंने नोटों की गड्डी जेब में ठूंस ली तो उन्होंने मुझे ऐसा करने से रोका. मुझे खयाल आया कि उन्हें मेरे दस्तखत करने से पहले मुझसे नोट गिनने के लिए कहना चाहिए था. यही बात कायदे की भी थी. "जरूरत पड़ने पर मैं आपसे कहां मिल सकता हूं?" उन्होंने पूछा. जीना उतरने पर मुझे सहसा कुछ सूझा. और तभी मैं लौटकर गया और उनसे पूछा, "ये पैसे आये कहां से?" मैंने उनसे जोर देकर यह भी कहा कि मुझे यह सवाल करने का पूरा-पूरा हक है. उन्होंने मुझे किसी महिला का नाम बताया जो मैं भूल गया. शायद उसी महिला ने मुझे किसी समय अपने घुटनों पर झूला झुलाया था, जब मैं बच्चों के कपड़े पहनता था और मुझसे कुछ लाड़-प्यार किया जाता था. कभी-कभी यही काफी होता है. बचपन में ऐसा ही होता है. उससे आगे उम्र बढ़ने पर तो वह प्यार-दुलार समाप्त हो जाता है. इसी पैसे का प्रताप था कि मेरे पास अभी कुछ बाकी था, चाहे बहुत थोड़ा ही क्यों न हो.

मैंने विभाजक दीवार पर हाथ मारा और उसे तब तक थपथपाता रहा जब तक कि गाड़ी रुक न गयी. गाड़ीवान मुझे कोसता हुआ अपनी सीट से उतरा. मैंने खिड़की का शीशा नीचे गिरा दिया ताकि वह दरवाजा न खोल सके. "दरवाजा खोलो! दरवाजा खोलो!" वह चिल्लाया. उसका चेहरा गुस्से से लाल था, बल्कि बैंगनी हो गया था. न मालूम ऐसा उसके गुस्से की वजह से हुआ था या तेज हवा के थपेड़ों ने उसका मुंह लाल कर दिया था. मैंने उससे साफ-साफ कह दिया कि मैंने गाड़ी दिन भर के लिए किराये पर ली है. उसने जवाब दिया कि उसे तीन बजे एक अंत्येष्टि में जाना है. काश वह आज न मरा होता! मैंने बताया कि अब मैंने चिड़ियाघर जाने का इरादा बदल दिया है. मैंने उससे पूछा, "तुम किसी होटल में ले जा सकते हो? यदि चाहो तो तुम भी खाना मेरे साथ खा लेना."

■

वहां एक लंबी मेज बिछी थी. जिसके दोनों ओर एक ही आकार की दो बैंचें पड़ी थीं. हम मेज पर बैठे गये. जब खाना आ गया तो उसने मुझे अपनी जिंदगी, अपनी पत्नी, अपने घोड़े के बारे में बताया और फिर घूम-फिरकर अपनी जिंदगी के किस्से सुनाने लगा जो बहुत दुखद थे. इसका एकमात्र कारण उसका अपना चरित्र था. उसने मुझसे पूछा, "आप जानते हैं कि हर मौसम में रोटी की खातिर घर से बाहर फिरते रहना कितना कष्टकर होता है?"

मैंने भी अपनी पूरी राम कहानी उसे सुना दी और यह भी बता दिया कि मैंने क्या कुछ खोया है और क्या प्राप्त करने के लिए कोशिश कर रहा हूं. हम दोनों ने अपनी-अपनी हालत एक दूसरे को समझाने और समझने की भरपूर कोशिश की. उसकी समझ में इतनी बात आयी कि मेरा कमरा छिन गया है और अब मुझे दूसरे कमरे की जरूरत है लेकिन और सब बातें उसके पल्ले नहीं पड़ी. बस एक ही बात उसके दिमाग में बैठी कि वहां से निकलना असंभव था और वह यह कि मैं एक शानदार सुसज्जित कमरे की तलाश में हूं. उसने अपनी जेब से दो-दिन पुराना या शायद इससे भी पहले का शाम का एक अखबार निकाला और उसमें विज्ञापन देखने लगा. जिनमें से पांच-छह को उसने पेंसिल के टुकड़े से रेखांकित किया.

अंतिम पते पर पूछताछ कर लेने के बाद गाड़ीवान ने सुझाव दिया कि वह मुझे किसी ऐसे होटल ले जायेगा जहां मैं आराम से रह सकूंगा. होटल, गाड़ीवान, आराम—ये सब

बातें मुझे विश्वसनीय लगीं. अगर उसकी सिफारिश सही है तो मुझे और कुछ नहीं चाहिए. मैंने शराब पीने की इच्छा जाहिर की. घोड़े ने दिनभर कुछ खाया-पिया नहीं था. मैंने यह बात जब गाड़ीवान को बतायी तो उसने जवाब दिया कि घोड़ा जब तक अस्तबल लौटकर नहीं पहुंचता, कुछ खाता-पीता नहीं है. अगर काम के समय कुछ भी खा ले, चाहे वह सेब हो या शक्कर की डली, तो उससे पेट में दर्द हो जाता है और कुरकुरी की बीमारी हो जाती है, जिससे कभी-कभी घोड़ा मर भी जाता है.

दो-चार पेग पी चुकने के बाद गाड़ीवान ने मुझे अपने घर चलकर रात गुजारने की दावत दी और कहा, "यह मेरे और मेरी पत्नी के लिए गौरव की बात होगी कि आप हमारे मेहमान बनें." उसका मकान दूर नहीं था. उसकी भावनाओं की कद्र करते हुए मुझे लगता है कि उस दिन उसने अपने मकान के इर्द-गिर्द सवारी की तलाश में घूमने के सिवाय और कुछ नहीं किया था. वे एक मकान के पिछवाड़े बने अस्तबल के ऊपर रहते थे. यह अच्छी जगह थी और मैं सहर्ष वहां रात गुजार सकता था. उसने अपनी पत्नी से मेरा परिचय कराया. और बाहर चला गया. मेरे साथ अपने को अकेला पाकर उसे शायद कुछ घबराहट हो रही थी. मैं उसकी परेशानी को समझ गया. ऐसे मौकों पर मैं औपचारिकता निभाने के पक्ष में नहीं हूं. कुछ होना हो तो हो, वरना मामला खत्म कर दिया जाये. लिहाजा मैंने बात वहीं समाप्त करनी चाही और कहा, "मैं नीचे अस्तबल में जाकर सो जाता हूं." गाड़ीवान ने विरोध किया. लेकिन मैं अपनी बात पर अड़ा रहा. उसकी पत्नी ने कहा कि अगर यह अस्तबल में ही सोना चाहते हैं तो इन्हें अस्तबल में ही सोने दो. गाड़ीवान ने मेज से लैंप उठाया और जीने से या, कहना चाहिए, सीढ़ियों से, जो नीचे अस्तबल में उतरती थीं, अपनी पत्नी को अंधेरे में छोड़कर मुझे ले गया. वह अस्तबल के एक कोने में, जहां घास-फूस पड़ी थी, घोड़े का कंबल बिछाकर और एक माचिस वहां रखकर चला गया ताकि अगर मुझे रात को कोई चीज साफ देखनी हो तो उसका इस्तेमाल कर लूं. इस बीच घोड़ा क्या कर रहा था, मैं नहीं जानता. अंधेरे में पांव पसारकर लेटा तो मुझे उसके कुछ पीछे की आवाज सुनाई दी. यह आवाज कुछ अनजानी-सी थी—नीचे चूहे कलाबाजियां खा रहे थे और ऊपर गाड़ीवान और उसकी बीवी की बातें थी जिनमें दोनों मेरी नुक्ताचीनी कर रहे थे. मैंने माचिस हाथ में रख ली थी. रात को मैं उठा और एक तीली जलायी. उसके क्षणिक उजाले में मुझे घोड़ागाड़ी दिखाई दे गयी. मेरे मन में अचानक उस अस्तबल को आग लगा देने की इच्छा पैदा हुई, लेकिन शीघ्र ही मैंने अपने पर काबू पा लिया. घोड़ागाड़ी अंधेरे में खड़ी थी, मैंने ज्यों ही उसका दरवाजा खोला, चूहों की एक फौज निकलकर भागी. मैं उसमें चढ़ गया. ज्यों ही मैं गद्दी पर बैठा मैंने देखा कि घोड़ागाड़ी उलार थी और यह होना भी था क्योंकि उसके बम जमीन पर टिके हुए थे. लेकिन मेरे लिए यही बेहतर था. मैं अपने पैर सामने की ऊंची सीट पर फैलाकर आराम से बैठ गया. रात को कई बार मुझे यह महसूस हुआ कि घोड़ा खिड़की तथा अपने नथुनों से निकली सांस के जरिये मेरी ओर देख रहा है. उस समय चूंकि वह घोड़ागाड़ी में जुता नहीं था, इसलिए मुझे उसमें बैठा देखकर उसे कुछ आश्चर्य जरूर हुआ होगा. मुझे ठंड महसूस हो रही थी क्योंकि मैं ऊपर कंबल लाना भूल गया था. लेकिन ठंड इतनी भी नहीं थी कि मैं उठकर जाऊं और कंबल ला सकूं. घोड़ागाड़ी की खिड़की से ही मैंने अस्तबल की खिड़की को बहुत साफ-साफ देखा. मैं गाड़ी से नीचे उतरा, अब अस्तबल में उतना अंधेरा नहीं था. मैं दरवाजे तक गया लेकिन उसे खोल नहीं सका. लिहाजा मुझे खिड़की के रास्ते बाहर निकलना पड़ा. वह आसान भी तो नहीं था—मैंने पहले अपना सिर निकाला, हाथ जमीन पर जमा दिया और किसी तरह चौखट से निकालने के लिए जोर लगाता रहा. मुझे याद है, अपने आपको खिड़की से बाहर निकालने के लिए मैंने हाथ घास के गुच्छों में फंसा दिये थे.

जब मैं आंगन से निकला तो मुझे अचानक कुछ सूझा. यह थी मेरी कमजोरी. मैंने एक बैंक नोट माचिस की डिबिया में घुसेड़ दिया, लौटकर आंगन में गया और माचिस उसी खिड़की की चौखट पर रख दी, जहां से मैं अभी-अभी निकलकर बाहर आया था. घोड़ा अभी तक खिड़की के पास खड़ा था.

लेकिन अभी मैं सड़क पर पहुंचा ही था कि लौटकर आंगन में आया और माचिस की डिबिया में रखा नोट उठा लाया. माचिस की डिबिया मैंने वहीं छोड़ दी क्योंकि वह मेरी नहीं थी. घोड़ा अब भी खिड़की से सटा खड़ा हुआ था. मुझे इस घोड़े को देखकर बड़ी कोफ्त और उकटाहट-सी हुई. पौ फट रही थी. मुझे यह भी मालूम न था कि मैं कहां हूं. मैंने उदय होते हुए सूरज की ओर, या कहिए उस दिशा की ओर प्रस्थान किया जहां से वह उदय होकर अपना प्रकाश फैलानेवाला था. मुझे समुद्र का या फिर मरुस्थल का क्षितिज पसंद है. मैं जब भी सुबह के समय बाहर होता हूं तो सूर्योदय देखने जरूर जाता हूं और जब कभी मेरी शाम बाहर हो जाती है तो मैं उसके पीछे-पीछे तब तक चलता रहता हूं, जब तक तंद्रा आकर मुझे सुला नहीं देती है. न जाने मैंने यह कहानी क्यों सुनायी. मैं कोई और भी कहानी सुना सकता था. शायद किसी और वक्त वह सुना सकूं. जीवित आत्माएं, आप देखेंगे, हर जगह एक-दूसरे से कितना अभिन्न होती हैं. □

● अनुवाद : विनोद दास

चलते-चलते

"मेरी बुद्धि, जैसी भी है, का पतन मेरी बीस वर्ष की अवस्था से होने लगा था. जब मैं युवा था तब मुझे गणित पसंद था. जब यह मेरे लिए बहुत कठिन हो गया तब मैंने राजनीति को अपनाया. उसके बाद मैंने जासूसी कहानियों पर अपना ध्यान केंद्रित किया."

● बर्ट्रेंड रसेल

मानव उत्कर्ष की आस्था का प्रतीक : सॉल बैलो

● हरिमोहन शर्मा

● सॉल बैलो

जब सन् 1964 में सॉल बैलो का छठा उपन्यास 'हरज़ोग' प्रकाशित हुआ, तो एक ब्रितानी समीक्षक ने उसकी समीक्षा करते हुए लिखा था, "युद्धोत्तर-काल के अमरीकी उपन्यासकारों में सॉल बैलो महानतम हैं. वे बुद्धिमान तो हैं ही, महानगरों में रहने वाले समझदार निवासियों के जीवन के विरोधाभासों को उन्होंने बड़ी बारीकी से समझा-परखा भी है. उनकी सर्वाधिक उल्लेखनीय विशेषता यह है कि मानव के उत्कर्ष में उनकी आस्था है." सच तो यह है कि ये गुण हमें 1976 के नोबेल-पुरस्कार विजेता सॉल बैलो के पूरे कथा-साहित्य में दिखायी पड़ते हैं.

समकालीन अमरीकी कथाकारों में अकेले सॉल बैलो ही हैं, जिनकी कथा-कृतियों में अमरीकी जीवन के सारे बिंब-विधान, बड़ी बारीकी और सफाई से तराशे हुए दिखायी पड़ते हैं. जैसे-जैसे समय बीतता जाता है, अमरीकी जीवन के उल्लास, नैराश्य और संवेदना से स्पंदित उनकी कथा-कृतियों को पढ़कर लगता है कि उनकी सहज महानता का स्रोत किसी अजस्र रस-पूर्ण जीवन-धारा में है.

1915 में कनाडा के यहूदी-रूसी परिवार में जन्मे सॉल बैलो के घर में तीन भाषाएँ बोली जाती थीं—अंग्रेजी, इड्डिश और फ्रैंच. हिब्रू का प्रयोग भी यदा-कदा होता था. ऐसे वातावरण में पले सॉल बैलो के लिए लेखन एक सहज प्रवृत्ति बन गयी.

युवावस्था में सॉल बैलो कनाडा छोड़कर अमरीका के शिकागो नगर में रहने लगे. शिकागो की गलियों और सड़कों में घूमकर उनसे प्रेम का नाता जोड़ा. अल्फ्रेड काजिन नामक एक साहित्य-समीक्षक ने, जो युवावस्था में उनके साथ शिकागो का भ्रमण किया करते थे, एक स्थान पर लिखा है, "भ्रमण करते समय तरुण सॉल बैलो, जैसे हर दिखायी पड़ने वाले पदार्थ में निहित शक्ति और रहस्य को चीन्हने का प्रयास करता रहता था. तब उसके प्रिय लेखक थे थ्योदोर ड्रिसियर, जो स्वयं शिकागो के प्रेमी थे. यद्यपि वह एक हंसमुख युवक था, तथापि उसकी लेखन-शैली काफी गंभीर थी. उसकी उस काल की रचनाएं आज पढ़कर मुझे लगता है, जैसे वह किन्हीं अदृश्य शक्तियों से जूझने के लिए बेकरार था. वह तब मुझसे कहा करता था कि महान लेखकों की रचनाओं को वह एक चुनौती मानकर पढ़ता है."

सॉल बैलो की आयु तब 27 वर्ष थी. दो वर्ष बाद, 1944 में उसका पहला उपन्यास 'द डैंग्लिंग मैन' प्रकाशित हुआ, जो काजिन के इस कथन को सच्चा प्रमाणित करता है कि उसकी लेखन-शैली गंभीर है. उपन्यास का मुख्य पात्र है, जोसेफ नामक एक शिकागोवासी युवक, जो प्रति दिन सेना के भरती-आदेश की प्रतीक्षा करता है, और इस प्रतीक्षा के कारण एक वर्ष तक कोई और काम नहीं कर पाता. इस उपन्यास में कसक और नैराश्य के गहन-गह्वर की छाया कामू के 'द स्ट्रेंजर' उपन्यास की याद दिलाती है.

बैलो के बाद के उपन्यासों के नायकों की भांति जोसेफ भी एक भ्रमित और निराशांध आदमी है. अनिश्चय और अस्पष्टता के झूले में झूलता हुआ, वह बार-बार अपने से ही एक प्रश्न पूछता है, "एक अच्छे आदमी को निश्चिंतता से जीने के लिये क्या करना चाहिये, कैसे जीना चाहिये?" एक प्रकार से देखा जाये तो, यह उपन्यास जोसेफ की ही नहीं, जोसेफ की पूरी पीढ़ी की मनोव्यथा की कहानी कहता है.

कुछ समीक्षकों की राय में 'द डैंग्लिंग मैन' एक कलात्मक और कल्पना-प्रसूत उपन्यास न होकर एक बौद्धिक प्रबंध मात्र है. इस उपन्यास में वे एक चिंतक के रूप में अवश्य उभर कर आते हैं, लेकिन एक महान उपन्यासकार की कला इस बात में निहित है कि वह अपनी कला द्वारा एक ऐसी सच्ची और सजीव दुनिया का निर्माण भी करे जिसकी पृष्ठभूमि में उनके बौद्धिक विचारों का यथार्थपूर्ण आकलन संभव हो सके.

1947 में प्रकाशित उनके दूसरे उपन्यास 'द विक्टिम' में इस कला के दर्शन होते हैं. इस उपन्यास के पात्रों और परिवेश में यथार्थता का बोध होता है. उपन्यास का मुख्य पात्र लेवेंथल एक

व्यावसायिक पत्र का संपादक और एक मामूली-सा इंसान है. वह अपनी सीमाओं से भली भांति परिचित है. उपन्यास के आरंभ में ही वह स्वयं से अपने विषय में यह शब्द कहता है, "कुछ लोगों को देखकर लगता है, जैसे वह किसी चंचल घोड़े पर सवार हैं, और वह घोड़ा उन्हें बेतहाशा भगाये लिये जा रहा है. वह, कम से कम, उन लोगों में नहीं है."

लेवेंथल को इस बात का भी कष्टदायक एहसास है कि वह न्यूयार्क की भारी भीड़ में एक ऐसी अनाम, अपरिचित, व्यक्तित्व-विहीन इकाई है, जिसे प्रतिपल एक गहरे और अंधेरे गढ्डे में धकेला जा रहा है.

दोस्तोयव्स्की की भांति सॉल बैलो ने भी एक नीम-पागल पात्र का सृजन किया है. ऑलबी नाम का यह पात्र लेवेंथल पर अभियोग लगाते हुए कहता है, "तुम अपनी आत्मा को ताले में बंद करके रखते हो. उससे अपनी व्यावसायिक सहायिका की भांति काम लेते हो. वह तुम्हारी पालतू हो गयी है, और तुम्हें कोई ऐसा काम नहीं करने देती, जिसमें खतरा हो. उसे अपने वश में करके तुम यह भूल गये हो कि बिना खतरा उठाये कोई महान कार्य नहीं कर सकता." वह लेवेंथल पर अध्यात्मिक भीरुता का आरोप लगा रहा था, "जिसके कारण तुम अपने अहं को कभी विलीन नहीं कर पाते."

'द विक्टिम' को पढ़कर लगता है कि किस प्रकार से बैलो की कला निर्बाध रूप से विकसित हो रही थी. उनके विचारों के क्रमिक विकास का चित्र भी इसके कुछ अंशों द्वारा प्रस्तुत किया जा सकता है. हेरा क्लीतस के इस कथन में कि "आदमी ही उसकी नियति है," वे यह भी मानते थे कि "विश्व में व्याप्त होना, पूरे संसार में घुलमिल जाना, यही मानव का वास्तविक रूप है. वह न अपना दास है, न सृष्टि का अनुचर. उसकी मुक्ति एवं पूर्णता प्रेम में है, और प्रेम का अर्थ है, आत्मा के उस स्वरूप की पहचान, जिसमें वह अखिल विश्व से एक रूप हो जाती है."

1952 में प्रकाशित बैलो के अगले उपन्यास 'द एडवेंचर्स ऑव ऑगी मार्च' ने उनके विचारों तथा उनकी शैली, भाषा और संभावनाओं को एक नयी दिशा प्रदान की. इस उपन्यास में वे विचारमग्न और चिंताग्रस्त नहीं है, बल्कि अपने नव-शोधित उल्लास को उपन्यास के आरंभ में ही इन शब्दों में व्यक्त करते हैं, "मैं शिकागो में जन्मा एक अमरीकी हूं. लोगों और घटनाओं से मैं अपनी 'फ्रीस्टाइल' शैली में पेश आता हूं, और अपने अनुभवों का वर्णन अपने मन से, अपने ढंग से करता हूं."

बैलो का चर्चित उपन्यास है—'हरज़ोग' (1964), जिसे स्वयं बैलो ने अपना श्रेष्ठतम उपन्यास माना है. एक समीक्षक के अनुसार, "अमरीकी मानस का इतना संपूर्ण और व्यापक चित्रण किसी अन्य अमरीकी कथाकार ने नहीं किया." 1970 में उनका अगला उपन्यास 'मिस्टर सेमलर्स प्लेनेट' प्रकाशित हुआ. इस उपन्यास का अंत आशावाद की अभिव्यक्ति के साथ होता है, उसकी मिसाल आधुनिक विश्व साहित्य में मिलनी मुश्किल है. □

नोबेल पुरस्कार स्वीकरण भाषण का अंश

अप्रस्तुत विधान में विराट का संयत रूप

रोबे-ग्रिले की भांति मैं भी अतीत की धारणाओं से अपने को जोड़ने में असमर्थ पाता हूं, तथापि अतीत के श्रेष्ठतम कथाकारों की रचनाओं के प्रति मेरा आकर्षण कतई कम नहीं हुआ है. इन रचनाओं में व्यक्ति ही केंद्र में है, समूह या संगठन नहीं, और सारी कहानी व्यक्ति या व्यक्तियों के चारों ओर ही घूमती है, समूहों या संगठनों के चारों ओर नहीं.

सच्ची कला यथार्थता से संबद्ध होती है. मैं फ्रेंच लेखक प्रूस्त के इस कथन से पूरी तरह सहमत हूं कि कला के माध्यम से ही हम अपने को तथा दूसरों को जान सकते हैं. सिर्फ कला ही बुद्धि, आदतों, भावनाओं और अहं की उन अभेद्य दीवारों को भेद सकती है, जो यथार्थता को घेरे हैं, और उसे हम पर प्रकट नहीं होने देते. ताल्स्तोय की 'इवान इलिच' नामक कहानी इस सच्ची कला का एक अच्छा नमूना है. उसका नायक इन सब दीवारों को भेदकर हमारे सामने एक व्यक्ति, एक पात्र के रूप में ही प्रकट होता है.

तो कला, जैसा कि प्रूस्त ने कहा है, जीवन की एक आवश्यकता है, एक स्वतंत्र और पृथक यथार्थता है, और एक जादुई शक्ति है. आज कला मानवीय भावनाओं से अधिक मानवीय उद्योगों से जुड़ी है. विज्ञान की आज की प्रगति के मूल में हमें कला और मानवीय उद्योग के इसी संगम के दर्शन होते हैं.

मुझे लगता है कि आज के साहित्यकार को अपना दृष्टिकोण बदलना चाहिए. इसे कला की शक्ति को पुनः साहित्य को सशक्त तथा व्यावहारिक लक्ष्यों के प्रति समर्पित करने के प्रयास करने चाहिए.

पाठक आज भी साहित्यकारों का आदर करते हैं मगर, वे उनसे थोड़ा निराश भी हैं. वे उनसे हवाई बातें नहीं, ऐसी बातें सुनने के इच्छुक हैं, जिनका सीधा संबंध उनके जीवन से हो. विज्ञान से भी हो, और धर्म से भी, व्यवस्था से भी, और तथाकथित 'एब्सर्डिटी' से भी. उसे ऐसा साहित्य चाहिए, जो उसे किसी मत, वाद या दर्शन से बांधे नहीं, सब वादों, मतों और दर्शनों से मुक्त करे, उसे 'सच्चे विचार' प्रदान करे.

तो, जैसा कि कॉनरेड ने कहा था कि कला का उद्देश्य ब्रह्मांड में, पदार्थ में और जीवन में उसकी खोज करना है, जो स्थायी है, मूलभूत है, और अनिवार्य है. सच्चे लेखक के अप्रस्तुत विधान में विराट का संयत रूप लक्षित होता है." ▣

पोंट्रिटर किसी महिला के साथ नृत्य में तल्लीन था. यह महिला पहले 'रमन एंड एडलीना' नामक टांगो-टीम की सदस्य थी. अधेड़ उम्र की इस महिला का मध्य-भाग कुछ भारी था, पर उसकी टांगें काफी पतली थीं.

संगीत बंद होते ही नृत्य भी रुक गया था.

"तुम मोसेस हरजोग हो न!" पोंट्रिटर ने उसके करीब आकर पूछा.

"बिल्कुल ठीक."

"मेरी बेटी के प्रेम में फंसे हुए हो. . .?"

"बेशक!"

"मुझे लगता है, इससे तुम्हारी सेहत पर भी काफी फर्क पड़ा है."

"नहीं. . .मैं पहले भी कभी तंदुरुस्त नहीं रहा."

"सभी लोग मुझे फित्ज कहते हैं. . .ये एडलीना है. . .! एडलीना, ये मोसेस हैं. . .आजकल मेरी बेटी के चक्कर में. . ."

"हलो!" एडलीना ने मोसेस का अभिवादन किया और पोंट्रिटर से माचिस लेकर सिगरेट सुलगाने में व्यस्त हो गयी.

दोपहर को मोसेस की मुलाकात टेनी पोंट्रिटर से हुई. बातचीत की शुरुआत में ही उसकी आंखों से आंसू बह निकले, "अपनी बेटी पर मेरा ज्यादा दबाव नहीं है. दरअसल, मैं उसे बेइंतहा प्यार करती हूं . .मुझे फित्ज की बात भी माननी है. . .मैं उसके प्रति वफादार रहना चाहती हूं."

"मुझे यकीन है. . .!" मोसेस ने उसके चुप होते ही कहा. "मुझे लगता है, मेडी सचमुच तुम्हें चाहती है!"

"मैं उससे बेहद प्यार . . .!" वह भावुक हो उठा था.

"तुम्हें उससे प्यार करना ही चाहिए. . .तुम करते भी हो. . .पर तमाम चीजें किस कदर उलझी हुई हैं!"

"यही न, कि मैं उम्रदार और शादीशुदा इंसान हूं?"

"तुम उसे दुखी नहीं रखोगे. . .वह क्या कहती और सोचती है, यह दीगर बात है. . .अखिरकार मैं उसकी मां हूं. . .

जिस लड़की की खातिर उसने अपनी बीवी से तलाक ले लिया . . . वही अब बीवी बनने के बाद उसके लिए मुसीबत बन गयी थी. . . दूसरे को बचाने की खातिर अपनी आजादी कुर्बान कर देने की रोचक दास्तान पेश करता 'हरजोग' का एक अंश—

अनचाहा सच

▫ सॉल बैलो

मेरे भीतर भी एक कलेजा है!" टेनी ने अपनी झुंझलाहट जाहिर की, "हरजोग, मैं हमेशा उन्हीं दोनों के बीच रही हूं. . . .मैं जानती हूं, कि हम कभी अच्छे मां-बाप नहीं बन सके. . . .वह सोचती है कि मैंने उसे पैदा ही किया है बस, और मैं कुछ नहीं कर सकती. . .पर अब यह सब तुम पर है. . .तुम्हें उसे एक. . ." टेनी करीब-करीब रो ही दी.

— हरजोग टेनी का दर्द समझ रहा था.

"टेनी, मैं मेडलीन को बहुत चाहता हूं. अब तुम्हें परेशान होने की कोई जरूरत नहीं. . ."

▣

एक पुरानी इमारत का एक अपार्टमेंट, मेडलीन का निवास था जहां हरजोग उसके साथ रुका. वे दोनों स्टूडियो के सोफे पर साथ-साथ सोये. हरजोग ने उसकी तारीफ करते हुए रातभर उसे अपने शरीर से चिपटाए रखा. गुस्से में कभी-कभी वह रो देती. . .और अपने पाप की शिकायत करती.

इस अपार्टमेंट का ढर्रा बहुत पुराने किस्म का था. . . यह दरअसल, 1890 के विलासगृहों से मिलता-जुलता था.

. . .मेडलीन ने अपना पाजामा और टोप उतार दिया जिससे वह अपना पूरा शरीर अच्छी तरह धो-पोंछ सके. सफाई के बाद उसकी नीली आंखोंवाला लाल चेहरा उभर आया. . .और उरोज एकदम गुलाबी. . .

नंगे पांव, खामोशी के साथ, हरजोग वहां पहुंचा और टब के सहारे बैठकर नजारा देखने लगा.

नहाने के बाद, हरजोग की परवाह किये बगैर वह इत्मीनान से मेक-अप करती रही. लगता था, जैसे दिन की जिंदगी जीने के लिए वह हरजोग से मुक्त होना चाहती है. शीशा देखकर, आश्वस्त होते हुए उसने लंबी स्कर्ट भी पहन ली, जिससे उसकी टांगें ढक गयीं. . .फिर भी ऊंची एड़ी की सेंडिल की वजह से घुटने. . .थोड़े-थोड़े झलक रहे थे. मेक-अप करने के बाद जब उसने कैप पहनी तो वह करीब चालीस साल की लग रही थी.

"तुम्हें कुछ नाश्ता कर लेना चाहिए!" हरजोग ने कहा.

"नहीं, मुझे देर हो जायेगी."

"खाली पेट काम पर जाने से तुम्हारी तबीयत खराब हो जायेगी. . .मैं तुम्हें बग्घी का किराया दे दूंगा."

वे दोनों कॉरीडोर पर उतर आये.

"तुम नहीं आओगे क्या?. . .यहां क्या कर रहे हो?" मेडलीन ने उससे पूछा, कॉरीडोर पर मछलियां बर्फ पर रखी जाती देखकर शायद हरजोग वहीं खोया हुआ था.

"मैं तुम्हारा इंतजार नहीं कर सकती हरजोग!"

अब वे दोनों एक रेस्तोरां की टेबल पर थे.

"तुम क्यों इतनी देर कर रहे थे?" मेडलीन ने पूछा.

". . .दरअसल, मेरी मां को मछलियां अच्छी लगती हैं!"

"मोसेस, मेरी गर्दन का मेक-अप तो ठीक है न!"

"तुम्हारे कंप्लेक्शन के हिसाब से मेक-अप की जरूरत नहीं है. . .वैसे हम अब कब मिलेंगे?"

"मैं कह नहीं सकती, मुझे कॉकटेल पार्टी में जाना है."

"पर इसके बाद तो मैं फिली चला जाऊंगा. . .!"

"दरअसल, मैं मां को प्रॉमिस कर चुकी हूं. . .उसे बूढ़े ने फिर परेशान कर रखा है."

"मुझे लगता है, यह पहले से ही पक्का था. . .तलाक!"

"वह ऐसी गुलाम है," मेडलीन ने कहा, "न तो वह जा सकती है. . .न ही वह बूढ़ा, यह उसके लिए फायदेमंद भी है. . ."

"मैंने सुना है कि वह बहुत अच्छा डायरेक्टर था!"

तभी खाते-खाते वह रुक गयी.

"क्या हो गया? खाओ-खाओ!" मोसेस ने उसे टोका.

"मैं कह रही हूं कि फोरडम पर मुझे फोन मत करना."

दरअसल, वह मोसेस को चाहती थी और मॉनसिगनर को उससे मिलने के लिए काफी संघर्ष करना पड़ता था.

". . .और शादी के बारे में क्या सोचा? . . .हम लोग कैसे करेंगे शादी?" मोसेस ने बात बदली.

"सोच-विचार किया जा सकता है. . .वैसे चर्च. . ."

"यही सबसे आसान है. . .अगर डेसी मुझे तलाक दे दे!"

□ सॉल बैलो.

जन्म : सन् 1915.

बचपन से ही अंग्रेजी, इड्डिश, फ्रेंच और हिब्रू जैसी भाषाओं के माहौल में पले. पहला उपन्यास 'द डैंग्लिंग मैन' सन् 1944 में प्रकाशित हुआ. 'द विक्टिम', 'हरजोग', 'द एडवेंचर्स ऑफ ऑगी मार्च', 'सीज द डे' जैसे उपन्यासों के प्रणेता. नोबेल पुरस्कार : सन् 1976

". . .मैं भावुकता में कतई यकीन नहीं करती. मुझे ईश्वर, पाप और मृत्यु पर यकीन है. . .इसलिए तुम ऐसा कोई प्रभाव डालने की कोशिश मत करो! मैं शादी करना चाहती हूं. . .बस. और वह भी चर्च में."

"हूं. . .!" मोसेस ने धीरे-से सिर हिलाया. मेडलीन फिर शुरू हो गयी, ". . .बचपन में मुझे धमकाया गया. . . मारा गया और गाऽ ऽ ऽ. . .!"

"और गाली भी दी गयी?" उसकी बात पूरी करते हुए मोसेस ने पूछा.

"मुझे चुप रहने के लिए उसने पैसा भी दिया था . . . वह काफी उम्र का आदमी था."

"कौन था वह?" हरजोग ने जिज्ञासु अंदाज में पूछा.

"यह बहुत सारे लोगों के साथ होता है. . .पर सारी जिंदगी इसी पर आधारित नहीं होती. . ."

"तुम सुन भी रहे हो?" उसने पूछा.

"हां, हां. . .!" हरजोग ने उसकी ओर देखते हुए कहा.

"अच्छा अब मैं चलूं, फादर फ्रांसिस कभी देरी नहीं करते. . .!" उसने अपना हैंडबैग उठाया और चल दी.

▣

कॉफी का कप सामने रखे हुए वह खयालों में खोया हुआ था, कि अचानक मेडलीन को आया देख चौंक गया, "क्या

हो गया . . . कैसे . . . हुआ.?"

"रास्ते में गिर पड़ी थी. . .चोट लग गयी है!"

"बेहतर होगा कि तुम लेट जाओ!" उसने उसे समझाया और उसका हैट उतारने के बाद सावधानी से जैकेट के बटन खोले और स्कर्ट भी उतार दी.

"मेरा पाजामा दे दो!" वह कांप रही थी. उसके घाव में बंधी पट्टियों से दवाइयों की गंध आ रही थी. वह उसके साथ बिस्तर पर लेट गया ताकि उसे गर्मायी दे सके.

"मैंने अपने पापों के लिए खुद को सजा दे दी!" उसने हरज़ोग से कहा और दोनों खामोश लेटे रहे.

▣

तलाक के बाद हरज़ोग ने मेडलीन से शादी कर ली. लुडेविले का मकान मेडलीन के गर्भवती होने पर लिया गया. हरज़ोग जिन परेशानियों में फंसा हुआ था, उन्हें देखते हुए यह सबसे बढ़िया जगह थी. पश्चिमी परंपरा में मस्तिष्क में तत्वदर्शन और हृदय के नियम, नैतिक भावुकताओं का मूल और संबद्ध चीजें . . .जिनके बारे में हरज़ोग के अपने विचार थे.

मकान की हालत काफी खस्ता थी. . .पर एक साल की मेहनत के बाद मकान को बरबाद होने से बचा लिया गया. मेडलीन के चैक बराबर लौटते जा रहे थे और हरज़ोग परेशान था. हरज़ोग उसे समझाता, "मेडलीन. . .तुम ये सब लाना कब बंद करोगी?"

"हमें इस जगह को सजाना नहीं है क्या ?"

". . .मैं काम पर लगा रहता हूं और तुम. . .!"

"मैं जो भी समान लाती हूं. . . उसका बिल 'पे' करती हूं. . .तुम्हें क्या?"

"तुमने ही कहा था कि तुम पैसे का इस्तेमाल करना सीखना चाहती हो! अब मैं तुम्हें यहां से न्यूयार्क कैसे ले जाऊंगा?"

"वहां हम दस दिन पहले जाएंगे."

"और यह सारा काम. . .?"

"तुम्हारे ये नोट्स. . .बंडल के बंडल बंधे पड़े हैं. इतने बड़े मकान के लिए यहां चार-चार नौकरों की जरूरत है. . . तुम चाहते हो कि मैं अकेली घिसटती रहूं. . ."

लुडेविले की दीवारों पर हरज़ोग ने अकेले ही पेंट किया. . .मेडलीन के चेक अब भी बाउंस हो रहे थे.

"मेडी बस भी करो.!"

गहरे हरे रंग का, प्रसूति के समय का कपड़ा पहने हुए थी मेडलीन, डाक्टर ने उसे कैंडी न खाने की सख्त हिदायत दे रखी थी. . .और मोसेस उसे गुस्से में धमका रहा था.

"यहां भी हम छोटी-छोटी . . ." मेडलीन झुंझलायी

"नहीं यह कोई छोटी-मोटी-सी चीजें नहीं हैं. . ."

"तुम जो सीमाएं चाहते हो, कभी नहीं पा सकोगे. . .ये सब बारहवीं शताब्दी में ही कहीं होता होगा. हमेशा पुराने घर और किचिन टेबल. . .अपनी लेटिन की किताब को लेकर ही चिल्लाते रहोगे तुम तो. . ."

"कह तो तुम ऐसे रही हो जैसे तुम्हारा कोई बीता हुआ समय है ही नहीं?"

अमरबेल का तना

▣ सोल्जेनित्सिन

उस वक्त हम आग जलाने की लकड़ियां चीर रहे थे जबकि हमें अमरबेल के तने की जिजीविषा ने अचंभे में डाल दिया. हमें एक वर्ष पूरा गुजर गया था जब हमने इसका तना काटकर, ट्रैक्टर के पीछे वाला पाटा फेर दिया था और चिराई करके लट्ठों को बांध दिया था, और अब जिन्हें हमको नौकाओं तथा चौपहियों में भरना था. अमरबेल को लपेटकर गांज बनायी और लट्ठों का जमीन पर ढेर लगा दिया गया था. फिर भी अमरबेल का यह तना ज्यों का त्यों बना रहा. ताजगी से भरा-पूरा एक हरा अंकुर इसमें से नाजुक पत्तों वाली टहनी की प्रत्याशा लिए फूटा, यानी एक संपूर्ण अमबेरल का रूप.

हमने लट्ठों को किसी जल्लाद के घर-सी घोड़े की पीठ पर लाद दिया लेकिन हम स्वयं को इसे काट देने को तैयार नहीं कर सके. हम कैसे काट सकते थे? उस तने को भी जीवन उतना ही प्यारा था जितना हमें. लेकिन सच तो यह है कि उसकी जिजीविषा हमसे भी कहीं अधिक थी. □

● अनु. : राजकुमार गौतम

". . .अच्छा-अच्छा. . .तो अब मुझे सुनना होगा कि. . . किस तरह तुमने मुझे बचाया. . ."

"एक मिनट ठंडे दिमाग से तो सोचो जरा!"

"सोचो. . .? तुम सोचने के बारे में जानते क्या हो?" मैंने अपनी दिमागी तरक्की के लिए तुमसे शादी की है, मैं सीख रहा हूं. . .!" हरज़ोग गंभीर था.

"ठीक है. . .मैं सिखलाऊंगी तुम्हें!" मुस्कराते हुए मेडलीन बोली. हरज़ोग नोट करने लगा. . ."विरोध ही सच्ची दोस्ती है. . .!"

हरज़ोग को तस्वीरें इकट्ठी करने का शौक था. उसके पास बारह साल की मेडलीन का वह फोटो था, जिसमें वह घोड़े पर चढ़ रही है. डेसी का भी फोटो उसके पास था.

हरज़ोग कुछ देर के लिए डेसी में खो गया. डेसी, जो एकदम अलग तरह की औरत थी. ठंडक देने वाली और नियमित. . .खामोश हरी आंखें. . .लंबी नाक. . .और सुनहरे बाल. पहली बार वह हरज़ोग की पॉकिट मनी एक लिफाफे में डालकर लायी थी जो हरे रंग की बजट-फाइल में रखा हुआ था. . .'डेसी मुझे तुमसे यही कहना है कि मेरी अनियमितताएं और परेशानियां ले लो. . .!' . . .डेसी को तब ओहियो वापस जाना था क्योंकि उसके पिता की मृत्यु निकट ही थी. . . मोसेस ने अपने कॉटेज में ही पढ़ाई जारी रखी. . .'

हरज़ोग अब भी सोचता चला जा रहा था. . . □

रूपांतर : महेश दर्पण

पुष्पहार

● लुईगी पिरांदेलो

इतालवी कहानी

हमेशा क्या ऐसा ही होता है कि जो चीज सबकी होती है, वह विशेष तौर पर किसी की नहीं होती? और क्या प्रेम हमेशा ही स्वामित्व की मांग करता है? दोहरे प्रेम के द्वंद्व में पिसती एक युवती की व्यथा-कथा.

डॉक्टर सिमा नगर की सीमा पर एक पहाड़ी पर बने हुए सार्वजनिक उद्यान के दरवाजे पर कुछ रुका. एक क्षण के लिए उसने पुराने दरवाजे की ओर देखा जो दो खंभों के बीच में लगे हुए लोहे के डंडे के अलावा कुछ भी नहीं था. उन खंभों के पीछे दो देवदार के पेड़ खड़े थे जो उदास से लग रहे थे, हालांकि उनकी शाखाओं के बीच जहां-तहां उलझे हुए गुलाब खिल रहे थे. दरवाजे से पहाड़ी की ऊंचाई तक चढ़ाई का रास्ता जाता था जहां पेड़ों के बीच लता-कुंज नजर आ रहा था.

सूरज की पहली किरणों की गर्मी का आनंद लेते हुए वह कुछ सुस्ताया ताकि उसकी निष्क्रियता दूर हो जाये और वह उस पुराने जनविहीन उद्यान में घूम-फिर सके. पहाड़ी की उत्तरी ढलान की शीतल छाया में हवा पुदीने, जंगली बेरें और अन्य खुशबूदार झाड़ियों की गंध से गहरा रही थी. पास ही पेड़ों पर पक्षी लगातार चहकते हुए वसंत का स्वागत कर रहे थे. कृतज्ञ हुए से डाक्टर ने सुवासित हवा में गहरी सांस ली और फिर रास्ते पर धीरे-धीरे चढ़ना शुरू कर दिया. सभी पौधों में से फूटते हुए हरे अंकुर, फूलों की क्यारियों पर मंडराती सफेद तितलियां; इन सभी ने उसके गमगीन विचारों को अस्पष्ट और सपनों-सा झिलमिल बना दिया. यह शांत वातावरण वाला उद्यान, जहां कदाचित ही कोई घूमने आता था, कितना सुंदर था!

काश, यह मेरा ही होता!

यहां उसके समान कितने लोग घूमने आये थे और जिन्होंने यह आह भरी थी कि काश, यह मेरा होता! हमेशा ऐसा ही होता आया है कि जो चीज सबकी होती है, वह विशेष तौर पर किसी की नहीं होती. हर मोड़ पर एक तख्ती टंगी हुई थी—'फूलों की क्यारियों पर न चलें,' 'पौधों को नुकसान न पहुंचायें', 'फूल न तोड़ें'. स्वामित्व का अर्थ है 'मैं', न कि 'हम' और यह केवल एक ही व्यक्ति 'मैं' हो सकता था और वह था माली. एक माने में वह वास्तविक स्वामी था और इसके लिए उसे वेतन दिया जाता था, रहने के लिए मकान दिया जाता था और फूलों को चुनने की अनुमति दी जाती थी, जो सभी के थे और किसी के भी नहीं थे और जिनमें से कुछ वह अपने व्यक्तिगत लाभ के लिए बेच देता था.

एक विशेष पक्षी जो अन्य सभी पक्षियों से ऊंचा उड़ रहा था, ने अपनी तान के स्वरों से डाक्टर को अपने उस

अवकाश की याद दिलायी जो उसने बहुत पहले समुद्र के पास एक खुले-से गांव में पेड़ों के बीच स्थित डेयरी-फार्म पर बिताया था.

क्षण भर के लिए व्यवसाय की दैनिक परेशानियां और समस्याएं उसके मस्तिष्क से हट गयीं, किंतु पहले जन्म दिन पर उसके चालीस वर्ष पूरे होने की बात फिर भी नहीं हटी. उसने सोचा, जिंदगी का अच्छा हिस्सा उसके लिए समाप्त हो गया, और दुर्भाग्यवश वह यह नहीं कह सकता था कि उसे कभी युवा होने का वास्तविक आनंद आया था. जिंदगी में इतनी सारी आश्चर्यजनक चीजें थीं! जिंदगी इतनी सुंदर हो सकती थी!

▣

एक विचार उसे अकस्मात् आया और वह रुक गया. क्या वह अपनी युवा पत्नी को लाने के लिए दौड़कर वापस जाये? उनकी शादी हुए अब सात माह हो गये थे, और वह चाहता था कि इस मोहक भ्रमण का आनंद वह उसके साथ ले. परंतु क्षण भर के अनिश्चितता के पश्चात वह पुनः उस रास्ते पर धीरे-धीरे चलने लगा.

उसकी पत्नी ने भी इस सम्मोहन का अनुभव किया होता, यदि वह अपने आप बिना उसके सुझाव के यहां घूमने आयी होती. साथ रहने पर यह सम्मोहन समाप्त हो जायेगा. अभी भी, जबकि इस बारे में वह विचार कर रहा था, थोड़ी उज्ज्वलता फीकी पड़ गयी थी. वेदना का एक कड़वा स्वाद, जिसका अनुभव पहले अस्पष्ट रूप में हुआ था, उसके गले में उभर आया.

वह अपनी पत्नी को किसी भी बात के लिए दोष नहीं दे सकता था. निश्चय ही उसकी कनपटी पर और उसकी दाढ़ी में जो कुछ बाल सफेद होते-से नजर आ रहे थे, उसके लिए वह जिम्मेदार नहीं ठहरायी जा सकती थी. उसके पोर-पोर में अच्छाई समायी हुई थी. लेकिन उसकी उम्र केवल बाईस वर्ष थी, उससे अठारह वर्ष छोटी. उसे आशा थी कि जो स्नेहपूर्ण आदर उसकी पत्नी ने उसके लिए उनकी अल्पकालीन सच्चाई के दौरान व्यक्त किया था, एक बार शादी हो जाने पर और उसे यह मालूम हो जाने पर कि वह उसे कितना प्यार करता है, एक युवक की तरह, हालांकि उसके बालों में सफेदी चमकने लगी थी, स्वाभावतः प्रेम में परिणत हो जायेगा. वह उसका पहला प्यार था. उसने कभी भी किसी अन्य नारी से प्यार नहीं किया था.

बेकार के सपने! प्रेम, वास्तविक प्रेम वह अपनी पत्नी के हृदय में जाग्रत करने में कभी भी समर्थ नहीं हुआ था, और शायद न कभी होगा. उसके दिखने पर वह मुस्करा देती और कई छोटे-मोटे तरीकों से व्यक्त करती कि वह उसे पसंद है, लेकिन यह प्यार तो नहीं.

उसका दर्द कुछ कम गहरा होता यदि उसकी पत्नी की जिंदगी की एक घटना ने उसे बढ़ न दिया होता, और जिसे वह उतनी सौम्यता से नहीं ले पाया था जितनी कि वह अन्य अधिकांश बातों को.

एक अठारह वर्षीय लड़की के अनुरूप ही अदम्य चाह से उसने एक युवा विद्यार्थी से प्यार किया था, जिसकी मृत्यु टायफायड से हो गयी. डा. सिमा को यह मालूम था क्योंकि उसे विद्यार्थी की चिकित्सा के लिए बुलाया गया था और उसे यह भी पता था कि उसने करीब-करीब अपना मानसिक संतुलन खो दिया था. अपने कमरे में अंधेरे में अपने आपको बंद कर किसी से भी मिलने से मना कर दिया था और वह मकान से कभी भी बाहर नहीं निकलती थी. उसने भिक्षुणी (नन) बनने की भी इच्छा प्रकट की थी. उस समय हर कोई उन मृत्यु द्वारा बिछड़े दो युवा प्रेमियों के दुर्भाग्य के अलावा कोई दूसरी बात ही नहीं करता था. वह लड़का अपने सहज वार्तालाप तथा आकर्षक नम्र व्यवहार के कारण बहुत लोकप्रिय था, जबकि वह, जो उसके लिए फूट-फूटकर रोयी, नगर की अत्यंत सुंदर लड़कियों में से एक गिनी जाती थी.

▣

एक वर्ष बीत गया, तब जाकर उसके परिवार वाले उसे कुछ समारोहों में शामिल होने के लिए मना सके. सभी लोग उसकी चेष्टा, उसकी उदास भंगिमा और फीकी मुस्कान से प्रभावित हुए—विशेष तौर पर पुरुष. उसके द्वारा प्यार किया जाना, उसे विषाद की काली छाया से उबारना, उसे पुनः जीवंत युवा बनाना, सभी का सपना बन गयी.

परंतु वह अपने शोक को छोड़ न पायी. विद्वेषपूर्ण अफवाहें फैलती रहीं कि वह सारी विनयशीलता और नम्रता के बावजूद अपने शोक पर एक प्रकार का गर्व अवश्य करती होगी, क्योंकि वह जानती थी कि इस कारण उसके प्रति लोगों के दिलों में प्यार और प्रशंसा का भाव उत्पन्न होता था. परंतु उसकी भावनाएं वास्तविक थीं, यह उस समय सिद्ध हो गया जबकि उसने कुछ महीनों में ही चार ऐसे या पांच विवाह प्रस्ताव अस्वीकार कर दिये जो जाने-माने योग्य युवकों से प्राप्त हुए थे.

लेकिन इस दुखियारी के दो वर्ष पश्चात, जबकि कोई भी उसके सम्मुख विवाह का प्रस्ताव लेकर जाने की हिम्मत यह जानकर नहीं करता था, डा. फ्रांसिस्को सिमा ने अपना प्रस्ताव रखा और वह तुरंत स्वीकार कर लिया गया.

पहले तो लोग आश्चर्यचकित हो गये, तथापि बाद में हर कोई उसकी सफलता का स्पष्टीकरण करने लगा. उसने 'हां' इसलिए कर दी थी कि डाक्टर अब युवा नहीं था, और यह कोई सोच भी नहीं सकता था कि उसने डॉक्टर से सच्चे प्रेम के कारण शादी की थी. उसने 'हां' इसलिए कर दी थी कि डाक्टर एक बुद्धिमान व्यक्ति की तरह युवक के समान प्यार किये जाने की आशा नहीं रखेगा और इसी से संतुष्ट हो जायेगा कि वह उसके प्रति स्नेह, आदर और कृतज्ञता का भाव व्यक्त करे.

डाक्टर को शीघ्र ही पता चल गया कि यह बात कितनी सही थी, और इससे वह आहत हुआ. उसे हर वक्त अपने आप पर नियंत्रण रखना पड़ता था कि कहीं उसके मुंह से कोई ऐसी बात न निकल जाये जिससे उसकी वेदना प्रकट हो जाये.

यह एक यंत्रणा ही थी कि यद्यपि वह अपने को युवा अनुभव कर रहा था तो भी वह अपने भावोद्वेग को इस भय से व्यक्त नहीं कर पा रहा था कि वह कहीं उसका आदर भाव भी न खो दे.

वह केवल एक स्त्री के लिए युवा रहा था, अपनी वृद्धा मां के लिए, जिसकी मृत्यु तीन वर्ष पूर्व हुई थी. उसकी मां इस सुंदर सुबह का आनंद लेने में उसका साथ दे सकती थी, और वह उसे लाने के लिए बिना किसी सोच-विचार के दौड़कर जा सकता था. वह मंगलमयी वृद्धा महिला, उसने उसे एक कोने में, माला हाथ में लिये, उन सभी रोगियों के लिए, जिनकी वह चिकित्सा कर रहा था, प्रार्थना करते हुए पाया. अपनी मां की स्मृति में खोया हुआ डा. सिमा मुस्कराया और सिर हिलाते हुए पहाड़ी पर जाने वाले रास्ते पर चढ़ने लगा. उसके बीमारों के लिए प्रार्थना करने में उसकी तपस्विनी-सी वृद्धा मां ने उसमें या उसकी ट्रेनिंग में बहुत ही कम आस्था प्रदर्शित की थी. मजाक में उसने अपनी मां पर यह आरोप भी लगाया था और उसने तुरंत जवाब दिया था कि वह उसके बीमारों के लिए कतई प्रार्थना नहीं कर रही थी, बल्कि ईश्वर से याचना कर रही थी कि बीमारों की चिकित्सा करने में उसकी सहायता करे.

"तो तुम्हारे विचार में बिना ईश्वर की सहायता के. . ." उसने बोलना शुरू किया कि मां ने टोक दिया.

"क्या कह रहे हो, हमें हमेशा ईश्वर की सहायता की जरूरत रहती है बेटे!"

और इस प्रकार से वह सुबह से रात तक प्रार्थना करती. वह प्रायः यह चाहने लगता कि उसके पास बीमार कम आयें जिससे उसकी मां ज्यादा थके नहीं. उसकी मुस्कराहट लौट आयी. अपनी मां को याद करने में उस पर फिर से उस दिन का जादू छा गया था.

अचानक ही एक नये माली ने जो थोड़ी ऊंचाई पर एक क्यारी में घास उखाड़ रहा था, विचार श्रृंखला भंग कर दी. "मैं यहां हूं सिन्योर डाक्टर, क्या आप काफी देर से मेरी तलाश कर रहे हैं?"

"मैं? नहीं, वास्तव में . . ."

"सिन्योर डाक्टर, वह पुष्पहार . . !"

"पुष्पहार?"

माली ने भी उसकी ओर उसी प्रकार आश्चर्यचकित होकर देखा.

"मुझे क्षमा करें, क्या आज बारह तारीख नहीं है?"

"है, पर उससे क्या?"

"परसों आपने अपनी नौकरानी को भेजकर कहलाया था कि आज के लिए एक पुष्पहार तैयार रखा जाये. . . याद आया?"

"मैंने? बारह तारीख के लिए? आ हां, हां," डाक्टर ने याद आने का दिखावा करते हुए कहा, "मैंने. . .हां, मैंने नौकरानी को भेजा था, ठीक है."

पुष्पहार? उसकी पत्नी ने गुप्त रूप से पुष्पहार बनाने के लिए कहलाया होगा. बारह तारीख, यह तो अवश्य ही उस

धर्म बनाम प्रेम

नोबेल पुरस्कार प्राप्त पोलैंड के प्रथम लेखक हेनरिक सीनकीविच के चर्चित उपन्यास 'को वाडिस' का कथा-सार

यह नीरो का समय था. नीरो, जिसकी निरंकुश राजशाही तले पनपते बर्बर दमन से रोमवासी ईसाई बेतरह आक्रांत थे. ऐसे समय में लिजिया ने अपना प्रेमी विनिशियस को चुना जो पैगेन (रोम निवासियों का धर्म) था. विनिशियस की धर्मांधता का अहसास लिजिया को उसके महल में जाने पर हुआ. विनिशियस का पूरा महल ईसाई विरोध में आकंठ डूबा हुआ था. वहां जाते ही लिजिया का भी जीवन असुरक्षित हो उठा. लेकिन उसके वफादार नौकर अर्सस ने उसकी मदद की और लिजिया जान बचाकर महल से निकल भागी. वह भागकर ईसाइयों के बीच छुप गयी. विनिशियस उसका पीछा कर रहा था. धर्म के उन्माद ने उसके मन में लिजिया के प्रति प्रेम की स्मृति तक पोंछ डाली थी. विनिशियस अपने प्रयत्न में सफल नहीं हो सका और लिजिया पर खुले आक्रमण में लिजिया के नौकर अर्सस द्वारा बेतरह घायल हुआ. ईसाईविरोधी होने के बावजूद ईसाइयों द्वारा ही उसकी देखभाल की गयी जिसके परिणाम स्वरूप वह न सिर्फ मरने से बच गया वरन् पूर्ण स्वस्थ भी हो गया. ईसाई लोगों के मानवीय प्रेम और सेवा-भावना ने उसे इस कदर प्रभावित किया कि वह स्वयं भी ईसाई मत को मानने-स्वीकारने लगा और लिजिया के प्रति उसका मन फिर से प्रेमिल हो उठा. इस बीच नीरो की कूटनीति के अनुसार रोम में आग लगा दी गयी ताकि यह आरोप ईसाइयों पर मढ़ कर उन्हें दंडित किया जा सके. विनिशियस ने लिजिया को बचाने का प्रयत्न किया लेकिन सफल न हो सका. लिजिया और अर्सस को गिरफ्तार कर, जंगली सांड के सींग से बांध अखाड़े में लाया गया जहां अर्सस ने सांड की गर्दन मरोड़ दी और एक बार पुनः लिजिया को बचा लिया. यह देख दर्शकों ने लिजिया और अर्सस को छोड़ देने का आग्रह किया. जिसके फलस्वरूप दोनों को मुक्त कर दिया गया. मुक्त होते ही लिजिया ने अपने प्रेमी विनिशियस से विवाह कर लिया. अंततः प्रेम ही विजयी हुआ और धर्मांधता परास्त हुई. □

● प्रस्तुति : धीरेंद्र अस्थाना

लड़के की मृत्यु का वार्षिक दिन है. अभी तक इतना दुख, तीन वर्ष के बाद भी? वह गुप्त रूप से पुष्पहार भेजना चाहती थी, अब भी जबकि उसकी विवाहिता थी! वह जो इतनी भयभीत, इतनी विनीत थी, साथ ही इतनी दुस्साहसी भी थी! तो वह अभी भी लड़के को प्यार करती थी? क्या वह उसकी याद अपने हृदय में जीवन भर रखेगी? तो उसने फिर उससे शादी क्यों की थी? क्यों, जबकि उसके हृदय पर उस मृत लड़के का अधिकार है और सदा रहेगा? क्यों? क्यों? क्यों?

चलते-चलते उसके भीतर ही भीतर भयंकर गुस्सा उफन रहा था. इसके पहले कि यह विश्वास करने को तैयार हो जाये कि उसकी पत्नी इतना धोखा, इतनी प्रवंचना भी कर सकती है, वह उस पुष्पहार को देखना चाहता था.

▣

"एक सौ लीरा, डाक्टर! क्या आप जानते हैं कि उन सब छोटे-छोटे नीलपुष्पों को एक-एक कर लगाने में कितनी अधिक मेहनत लगती है? और वे गुलाब, वे सर्दी में कम होते हैं और ज्यों ही मौसम शुरू होता है, हर कोई उन्हें चाहता है. एक सौ लीरा, यह बहुत कम है. बीस और लीरा तो मिलना ही चाहिए."

डाक्टर ने बोलने की कोशिश की परंतु उसके गले से आवाज ही नहीं निकली. उसके होंठों पर एक करुण मुस्कान उभरी और अंततः वह बोलने में सफल हुआ, "मैं तुम्हे इसकी पूरी कीमत दूंगा. एक सौ लीरा बहुत कम है. हां, गुलाब और नीलपुष्प हैं. यह एक सौ बीस लो."

"धन्यवाद, सिन्योर डाक्टर," माली ने जल्दी से रकम लेकर कहा, "मेरे ख्याल में यह अपनी कीमत के मुताबिक ही है."

"इसे यहीं रखो," डाक्टर ने अपना बटुआ वापस जेब में डालते हुए कहा, "यदि नौकरानी आये तो उसे मत देना. मैं इसे लेने के लिए स्वयं ही लौटकर आऊंगा."

वह पैगोडा से बाहर और टेढ़े-मेढ़े रास्ते से नीचे उतर आया. ज्यों ही उसे लगा कि वह अकेला है और उसे कोई देख नहीं रहा है, वह रुक गया, उसने अपनी मुट्ठियां भींच लीं और उसका चेहरा रुलाई भरी हंसी से विकृत हो गया. "और मैंने ही उसकी कीमत भी चुकायी!"

अब वह क्या करे? अपनी पत्नी को उसके पिता के घर, अवश्य ही उसे पीड़ा पहुंचाने की गरज से, कुछ कहे बिना छोड़कर आ जाये? वह इसी योग्य है. उसे जाने दिया जाये और एक दूरी पर ही उस मृत लड़के के लिए रोने दिया जाये जिससे कि वह एक ऐसे ईमानदार आदमी के दिल से खिलवाड़ न कर सके, जिसके प्रति यदि और कुछ नहीं तो कम से कम आदर प्रदर्शित करना तो उसका कर्त्तव्य था. न तो प्यार न आदर? उसने युवकों को अस्वीकार कर दिया और उसे स्वीकार कर लिया, क्योंकि उसे वह वृद्ध लगा और वह निश्चित थी कि वह कभी भी सपने में भी उसके प्यार पर अधिकार मांगने की नहीं सोचेगा.

उस लड़के की मृत्यु कितने अन्यायपूर्ण ढंग से हुई है. यदि वह जीवित रहता, यदि वह बड़ा होकर एक पुरुष बनता और जीवन की छोटी-मोटी प्रवंचनाओं से परिचित हो जाता और उस प्यार करने वाली लड़की से शादी करता, तब इस लड़की को शीघ्र पता चल जाता कि अठारह वर्ष की आयु में खिड़की में से प्यार करना एक बात है और पहला प्यार ठंडा पड़ने पर व दैनिक जीवन की उकताहट से लड़ाई-झगड़े शुरू होने पर कठोर वास्तविकताओं का सामना करना दूसरी बात.

ऐसे समय एक युवा पति उकता जाता है और पहले-पहल अपनी पत्नी से विमुख होने की सोचता है. आह, काश, ऐसा कुछ अनुभव उसने उस युवक के साथ किया होता, तब शायद यह 'वृद्ध'...

उसने अपने हाथों को इतने जोर से भींचा कि नाखून उसकी हथेलियों में गड़ गये. अपने सफेद, कांपते हाथों की ओर देखते हुए, उसने अपने को संभाला. पहली उत्तेजना समाप्त हो चुकी थी. वह सामने एकटक देखते हुए खड़ा रहा.

अंततः क्या यह वृद्ध पुरुष किसी युवक के समान ही कुछ करने, एक हलचल मचाने, उद्वेगपूर्ण स्थिति बनाने की सोच नहीं रहा था और तब सभी लोगों को जिन्होंने लड़की द्वारा उसे स्वीकार किये जाने के कारण सहज ही सोच लिया था, यह कहने का मौका मिल जायेगा, "कितने शर्म की बात है!" यह सब किसलिए ? एक पुष्पहार ? क्यों नहीं? वह हमेशा बारह तारीख को एक पुष्पहार कब्रिस्तान भेजती थी, लेकिन नये माली को यह पता नहीं था. इस वर्ष भी उसे याद रहा, क्योंकि स्पष्टतः डाक्टर से यह भुलाने के लिए अनुप्रेरित करने में असमर्थ रहा था. निस्संदेह यह उसकी (पत्नी की) गलती थी, लेकिन हृदय कोई तर्क थोड़े ही मानता है. और फिर वह लड़का तो मर चुका है!

▣

और यह सब ऐसा ही होगा.

तब उसे क्या करना चाहिए? यह सब जाने दे? इन सब के बारे में कुछ जानकारी न होने का दिखावा करे? माली के पास वापस जाये और उसे वह पुष्पहार नौकरानी को देने के लिए कह दे, जिसे वह माली के पास इसलिए रख आया था कि उसे अपनी पत्नी के सामने पेश कर सके?

नहीं. वह नहीं. तब उसे माली से अपनी रकम वापस लेनी होगी और उसको विश्वास में लेना पड़ेगा.

तब, फिर क्या करूं? घर जाऊं और व्यर्थ के स्पष्टीकरण प्राप्त करूं? पत्नी के सामने...

उसकी प्रवंचनाएं! उसे दंड दूं? यह सब कितना घृणास्पद था, कितना कुरुचिपूर्ण!

यह मामला गंभीर था, और गहराई तक असर डालता था. गंभीर इस कारण कि उसकी पत्नी की उसके बारे में वास्तविक भावनाएं मालूम होने पर कितनी हंसी होगी. उसे अपने पर नियंत्रण रखना चाहिए और यह भली प्रकार समझ लेना चाहिए कि जब तक हर कोई उसे प्रौढ़, लगभग वृद्ध समझता हो, अपने आपको युवा अनुभव करने से कोई

लाभ नहीं होगा. कोई बहुत युवा पुरुष एक तमाशा खड़ा कर देता, लेकिन इस उम्र में उसे किसी अन्य तरीके से अपनी पत्नी का आदर प्राप्त करना चाहिए.

वह उठा अब पूर्ण रूप से शांत, तो भी चित्त में शून्यता का भाव लिये हुए. पक्षी अभी भी उद्यान में चहक रहे थे, परंतु क्षण भर पहले का सम्मोहन अब कहां था!

फ्रांसिस्को सिमा उद्यान से बाहर आया और घर की ओर रवाना हो गया. जब वह अपने घर के सामने वाले दरवाजे के पास आया तो उसकी शांति तिरोहित हो गयी. अचानक ही उसकी सांस फूलने लगी और उसे आश्चर्य हुआ कि वह इस प्रकार लड़खड़ाती टांगों से सीढ़ियां कैसे चढ़ गया. और अब फिर अपनी पत्नी के सामने जाना... वह आज हमेशा से कुछ अधिक ही उदास होगी, लेकिन वह शायद अपने गम को छुपाना जानती होगी. वह उसे प्यार करता था, ओह, वह उसे कितना प्यार करता था! और वह अपने दिल की गहराई में समझता था कि वह प्यार के काबिल थी.

वह सीधा अपनी पत्नी के कमरे में गया और उसे शीशे के सामने अपने बालों में कंघी करते पाया.

"मैं तुम्हें अपने साथ बाहर चलने के लिए बुलाने वापस आया हूं." उसने कहा.

उसने, अपनी बांहों को बिना नीचे किये मुड़ते हुए, हल्के-से मुस्कराते हुए, अपने सिर पर सुंदर, कोमल, काली केशराशि ढीली-सी जमाये हुए पूछा, "अभी?"

उसकी पीली-सी मुस्कान ने डाक्टर को इतना अव्यवस्थित कर दिया कि उसकी आंखों में आंसू आते-जाते रह गये. उसे ऐसा लगा कि जैसे उस मुस्कान में उसके प्रति गहरी करुणा हो, डाक्टर के हृदय में उमड़ते हुए प्यार के लिए और साथ ही उसके अपने विषाद के लिए.

"हां, अभी," डाक्टर ने उत्तर दिया, "बाहर कितना सुंदर नजारा है."

"क्यों?" उसने करीब-करीब अनजाने में ही पूछ लिया, "आज क्यों?"

इस प्रश्न से उसे ऐसा लगा कि डाक्टर के चेहरे के उतार-चढ़ाव, उसकी मनोभावना को प्रकट कर देंगे. वैसे भी उसे अपनी आवाज को शांत रखने में संघर्ष करना पड़ रहा था.

"क्या तुम आज जाना नहीं चाहोगी?" उसने कहा, "तुम्हारे लिए ठीक रहेगा. जल्दी करो! मैं चाहता हूं कि तुम मेरे साथ आओ." वह दरवाजे तक गया और मुड़ा, "मैं तुम्हारा ऑफिस में इंतजार करूंगा."

वह जल्दी ही तैयार हो गयी. वैसे हमेशा जैसा वह चाहता था, वैसा ही वह करती थी, सिवाय अपने हृदय के मामले में जहां डाक्टर का कोई प्रभाव नहीं था. उसने यह कहकर एक कमजोर-सा ही विरोध किया था, "आज क्यों?"

वे बाहर निकलकर आये और थोड़ी देर तक उस छोटे-से नगर में घूमते रहे, फिर डाक्टर ने एक गाड़ी किराये पर ली और ड्राइवर को छोटे उद्यान पर रुकने के लिए कहा.

और अपनी पत्नी को वहीं क्षणभर के लिए ठहरने को कहकर, ऊपर उद्यान में अकेला चला गया.

डाक्टर के पीछे माली को पुष्पहार हाथ में लिये आता देखकर उसे सहसा अपनी आंखों पर विश्वास नहीं हुआ. वह करीब-करीब बेहोश-सी हो गयी. डाक्टर ने उसकी ओर देखकर उसे आश्वस्त करने का प्रयत्न किया.

"कब्रिस्तान चलो!" उसने ड्राइवर से कहा.

ज्यों ही वे रवाना हुए, वह जोरों से रो पड़ी और अपने चेहरे को रूमाल से ढंक लिया.

"रोओ मत," उसने धीरे से कहा, "मैं इसके बारे में घर पर कुछ भी बात करना नहीं चाहता था, और अब मैं कुछ भी कहना नहीं चाहता. रोओ मत. यह सब संयोगवश हो गया. मैं बगीचे में घूमने गया था और माली ने यह सोचकर कि मैंने ही पुष्पहार बनवाने के लिए कहा था, मुझे यह बात बता दी. अब बिल्कुल न रोओ. हम वहां साथ-साथ जाकर इसे वहां रख आयेंगे."

वह अपनी आंखों पर रूमाल रखे रही, जब तक कि गाड़ी कब्रिस्तान के फाटक के पास पहुंचकर रुक न गयी.

"आओ," उसने कहा और बायीं ओर पहले रास्ते पर चलते हुए और कतार में बनी कब्रों को देखने लगा.

उस रास्ते पर वह कब्र आखिरी कब्र के पास थी. उसने कब्र पर पुष्पहार रखने के लिए अपना टोप उतार लिया, फिर धीरे से पीछे खिसक गया और उसे प्रार्थना करने का समय देने के लिए वहां से हट गया. लेकिन उसकी पत्नी वहीं ठहरी रही, शांत, अपनी आंखों पर अभी भी रूमाल लगाये. मृत लड़के के लिए अब उसके दिमाग में कोई विचार नहीं था, न उसकी आंख में कोई आंसू. हतप्रभ हुई-सी उसने अचानक मुड़कर अपने पति को ऐसे देखा जैसे उसने पहले कभी नहीं देखा था.

"मुझे माफ करो, फ्रांसिस्को! मुझे घर ले चलो!" □

● रूपांतर : सत्यनारायण पुरोहित

इतिहास की गवाही : चर्चिल

विंस्टन चर्चिल इस बात के प्रति हमेशा सचेत रहते कि कई लोग उन्हें इतिहास के प्रतिभावान लेखक के रूप में बहुत महत्व देते थे. कभी मौका मिलने पर वे खुद भी हल्की-सी शरारत के साथ इस बात का जिक्र करने से नहीं चूकते थे.

एक बार इंग्लैंड की लोक-सभा में, उन्होंने सरकार की किसी नीति के संबंध में उस समय के प्रधानमंत्री, स्टेन्ले बाल्डविन की बहुत सख्त आलोचना करने के बाद कहा, "एक दिन इतिहास भी इस बात की गवाही देगा कि प्रधानमंत्री गलती पर है." तभी उनके होंठों पर शरारतभरी मुस्कराहट आयी और उन्होंने एक क्षण रुककर कहा, "हां, मैं यह बात दावे के साथ कह सकता हूं, क्योंकि वह इतिहास मैं लिखूंगा." □

● प्रस्तुति : सुखबीर

रूसी कहानी

जिंदगी में हर चीज कितनी आसानी से उतर आती है. . .! उसे क्या पता था कि जिस जहाज से वह अपने परिवार के साथ मौज-मस्ती के लिए रवाना हुआ था—वही उसके शव को लेकर लौटेगा! जिंदगी के हादसों की दर्दनाक सच्चाई—

सैनफ्रांसिस्को के महाशय

◙ इवान बुनिन

वह सेनफ्रांसिस्को के जिस तबके का आदमी था उसके लोग ज्यादातर अपने मनबहलाव की शुरुआत यूरोप, भारत और मिस्र की यात्रा से करते थे. उसने भी यही ठीक समझा और दौरे की समूची रूप-रेखा बना डाली.

नवंबर के अंतिम दिनों में खराब मौसम के बावजूद जहाज समुद्र की लहरों को चीरता जिबराल्टर की ओर बढ़ा जा रहा था. स्टीमर 'एटलांटिस' और तमाम यात्री यूरोप के बेहद खर्चीले होटल में पहुंचे. यह होटल तमाम आधुनिक साधनों से संपन्न था.

शाम की पोशाक पहने वह बहुत कम उम्र का लग रहा था. उसके पास ही जोहांसबर्ग का एक आदमी अपनी पत्नी के साथ खड़ा था. उसकी पत्नी महंगी पारदर्शी पोशाक पहने हुए थी. जब-जब वह सांस लेती, लगता सुगंध उड़ रही है.

पूरे दो घंटे में जाकर कहीं रात का भोजन समाप्त हुआ, साथ ही डांस-हॉल में डांस भी शुरू हो गया. वह भी लोगों के साथ रिफ्रेशमेंट बार की ओर बढ़ लिया जहां लाल जैकिट पहने बड़ी-बड़ी आंखोंवाले नीग्रो उनका इंतजार कर रहे थे. मेजों पर पैर रखे, होंठों में हवाना का सिगार दबाये, वे ताजातरीन राजनीतिक घटनाओं से लेकर स्टाक एक्सचेंज पर बहसों में खोये हुए थे.

जिबराल्टर पहुंचकर सूरज की रोशनी देख सभी लोग बहुत खुश हुए. मौसम भी बसंत के शुरुआती दिनों-सा था. यहां एक नया यात्री आया जिसने आते ही अन्य यात्रियों का ध्यान अपनी ओर खींच लिया. शायद यह किसी एशियन राजघराने का राजकुमार था. नाटे कद का यह आदमी उम्रदार होते हुए भी किसी युवक-सा लग रहा था.

सैनफ्रांसिस्को से आये परिवार की लड़की राजकुमार से कुछ फासले पर खड़ी थी और गौर से उसकी हरकतें देख रही थी. पिछली शाम दरअसल, उसका परिचय राजकुमार से हो चुका था.

नेपल्स अब नजदीक आ रहा था. बैंडवालों ने अपने चमचमाते पीतल के वाद्ययंत्रों समेत डेक पर एक घेरा-सा बना लिया था. तभी लंबा-चौड़ा जहाज का कप्तान ब्रिज पर पहुंचा और अपना हाथ उठा-उठाकर यात्रियों को संबोधित करने लगा. सैनफ्रांसिस्को के उस आदमी को लगा कि कप्तान अकेले उसे ही संबोधित कर रहा है. उसने सफर के आराम से खत्म होने पर कप्तान को बधाई भी दी.

◙

सुबह-सुबह डाइनिंग रूम में नाश्ता दिया गया. डायनिंग रूम की खुली-खिड़कियों से आकाश में छाये घने बादल और उदास मौसम साफ नजर आ रहा था. . .पर थोड़ी देर बाद सूरज की पहली किरण के साथ समूचा मौसम बदल गया.

दोपहर को वे लोग ऊंची-ऊंची ईमारतों के बीच से

होकर गुजरे जिनमें खिड़कियों की बहुतायत थी. संग्रहालयों में गये जहां सफाई और प्रकाश-व्यवस्था देखते ही बनती थी. इसके बाद सभी लोग चर्च गये. दोपहर का भोजन सैन मारटियम की पहाड़ी पर किया. यहां कुछ गण मान्य लोग ही इकट्ठे हुए. तभी सैनफ्रांसिस्को के परिवार की लड़की तो खुशी के उत्साह में करीब-करीब बेहेश ही हो गयी. असलियत यह थी कि उसने अखबार में राजकुमार के रोम रवाना हाने की खबर पढ़ी ली थी.

पांच बजे होटल के रिवाज के मुताबिक वहीं चाय ली गयी. . . .धीरे-धीरे भोजन का वक्त भी आ पहुंचा.

चलनेवाला दिन इस परिवार के लिए बहुत यादगार साबित हुआ. इस दिन सूरज निकला ही नहीं. समूचा कैपरी अंधेरे में खोया हुआ था. लगता था जैसे वह कभी इस जमीन का हिस्सा रहा ही नहीं. स्टीमबोट के परेशानीतलब केबिन के सोफे पर वे पांव सिकोड़कर बैठ गये. . .उबकाई आने के कारण ज्यादातर अपनी आंखें बंद ही किये हुए थे. परिवार की औरत इस लंबी समुद्री यात्रा से ऊब चुकी थी.

छोटी लड़की डरी-सी लग रही थी. . .वह लगातार पीली पड़ती जा रही थी. अक्सर वह अपने दांतों के बीच नींबू का टुकड़ा फंसाये रहती. ओवरकोट और बड़ा-सा टोप पहने हुए उस परिवार का आदमी लड़की के पीछे लेटा हुआ था.

उसके चेहरे का रंग गहरा, मूंछें सफेद और सिर का दर्द तेज होता जा रहा था. दरअसल, पिछली कुछ शामों को वह ज्यादा ही पी गया था.

कैपरी के टापू पर शाम को काफी धुंध छायी हुई थी. सैनफ्रांसिस्को से आये आदमी के स्वागत के लिए कुछ लोग खड़े थे. किसी और को इनकी परवाह भी नहीं थी.

जवान और सुंदर नजर आने वाला होटल का मालिक मुस्कराते हुए, अतिथियों के सामने झुका-झुका ही अभिवादन कर रहा था. सैनफ्रांसिस्को के आदमी ने एक नजर उसे देखा और फिर कुछ सोचने लगा. उसने दिमाग पर जोर डाला तो उसे लगा कि यह वही शख्स है जिसे उसने कल रात कल्पना में सोने नहीं दिया था, 'एकदम वैसा ही है यह आदमी' उसने सोचा, 'वही फ्रॉक कोट, वही सिर. . .एकदम वही बाल. . .' वह कॉरीडोर पार करता हुआ, तेजी से, अपनी पत्नी और बेटी को कल्पना और यथार्थ के इस अद्‌भुत संयोग के बारे में बताने को चल दिया.

◙

उसकी तबीयत ठीक नहीं थी. धीरे से. . .लेकिन कुछ बेहूदे ढंग से उसने खिड़की बंद कर दी. तभी होटल का एक आदमी आ पहुंचा. उसके पूछने पर उसने दोपहर के भोजन का आदेश दिया. . .कि उनकी मेज दरवाजे से खासे फासले पर होनी चाहिए. . .वे लोकल वाइन और शेंपेन लेंगे.

सैनफ्रांसिस्को का आदमी अब तैयारियां करने लगा जैसे किसी शादी में जाना हो.

इस शाम इस आदमी ने क्या सोचा और महसूसा यह बताना बहुत जरूरी है. यह भी कहा जा सकता है कि इसमें कुछ भी अजीबोगरीब नहीं था. परेशानी तो यही है कि इस जमीन पर हर चीज, बड़ी आसानी के साथ उतर आती है. . . पर, क्या उसके जेहन में कोई चीज गहराई से उतरी थी? . . .

दाढ़ी बनाने के बाद वह शीशे के सामने खड़ा हो गया. देर तक गौर से देखता रहा कि उसके मोती-से रंगवाले बालों में कुछ छूट तो नहीं गया है!

"कितना भयानक है यह!" उसके मुंह से निकला. . . बगैर यह सोचे-समझे कि 'भयानक' क्या होता है. उसने अपने हाथों की उंगलियों के जोड़ों को अगौर से देखा. फिर नाखूनों के रंग को देखता हुए एक बार फिर बड़बड़ाया.

उसने अपनी टाई को कालर के गिर्द कसा और फिर डिनर कोट पहनते हुए कफों को सैट किया. उसने आखिरी बार फिर अपना रूप शीशे में निहारा. फिर खुशी से अपना कमरा छोड़ते हुए वह अपनी पत्नी के कमरे की ओर चल दिया. पत्नी के कमरे के पास पहुंचकर ऊंची आवाज में पूछा, "अभी ज्यादा देर लगेगी क्या?"

"पापा, सिर्फ पांच मिनट!" बेटी ने जवाब दिया.

. . .इसके बाद वह लाल दरी पर चलता हुआ धीरे-धीरे लायब्रेरी की ओर बढ़ लिया. हल्के स्लेटी रंग की स्कर्ट पहने एक बूढ़ी औरत तेजी से उसके आगे निकल गयी. . .उसे शायद डिनर के लिए तैयार होने में देर हो गयी थी. होटल के नौकर भी तेजी से इधर-उधर आ-जा रहे थे. . .पर वह इस तरह चलता रहा जैसे उसे इन सबकी कोई परवाह ही न हो.

शीशे के दरवाजेवाले डाइनिंग रूम में मेहमान पहले ही इकट्ठे हो चुके थे. कुछ ने भोजन शुरू भी कर दिया था. वह इजिप्शियन सिगरेट और माचिसोंवाली मेज के सामने रुका और एक मनीला सिगार लेते हुए उसने तीन लीरा मेज पर उछाल दिये. अब वह लायब्रेरी की ओर चल दिया.

लायब्रेरी में एक जर्मन अखबार पढ़ने में तन्मय था. उसने जर्मन पर एक टेढ़ी नजर डाली और चमड़े की आर्म-चेयर पर बैठ गया. कसी हुई कॉलर उसके गले को घोटे दे रही थी. उसने अपना सिर झटका और अखबार के शीर्षक पढ़ने लगा. कुछ पंक्तियां बाल्कन युद्ध के विषय में पढ़कर उसने अपनी आदत के मुताबिक पेज पलट दिया. धीरे-धीरे उसे लगा कि आंखों के आगे धुंधलका-सा छाता जा रहा है. उसके गले की नसें भी फूलने लगीं. . .और आंखें बाहर निकलने को हो आयीं. उसने हवा लेने की गर्ज से आगे की ओर बढ़ने की कोशिश की और. . .फिर अचानक उसके मुंह से अजीबो-

◙ इवान एलेक्स्येविच बुनिन
जन्म : 22 अक्तूबर, 1870
प्रमुख कृतियां : 'द ड्रीम्स ऑफ चैंग', 'द जेंटिलमैन फ्राम सैनफ्रांसिस्को', 'द वैल ऑफ डेज' और 'द विलेज'.
नोबेल पुरस्कार : सन् 1933
निधन : 8 नवंबर, 1953.

चिंतन

▣ सोल्जेनित्सिन

तेज बहते पानीवाले दरिया की सतह पर चीजों का अक्स पास या दूर हमेशा ही अस्पष्ट होता है, यहां तक कि पानी यदि साफ है और उस पर कोई झाग नहीं है, तो भी छोटी लहरवाले स्थिर-से दरिया में भी पानी की बहुमूर्तिदर्शी सतह अशांत, अनिश्चित, अस्पष्ट तथा अबोध बनी रहती है.

केवल तभी जब यह पानी नदी-दर-नदी होता हुआ एक विस्तृत किंतु शांत मुहाने पर पहुंचता है या कटकर इधर-उधर किसी झील में ठहर जाता है, तब इसके दर्पण से देखा जा सकता है—किनारे पर खड़े हरेक पेड़ की चिकनी पत्तियां, बादलों के लच्छे, और थोड़ी गहराई पर नीले आकाश का विस्तार.

ठीक ऐसा ही हमारी जिंदगी के साथ भी है. जब हम शाश्वत सत्य की आकृति स्पष्ट देख पाने के काबिल होते हैं, तब ऐसा नहीं होता है कि हम भी लगातार, किसी अंत की तरफ बढ़ रहे हों—क्योंकि हम तब भी सोचते हैं कि हम जीवित हैं! □

● अनु. : राजकुमार गौतम

गरीब आवाज निकलने लगी. कंधे ढीले छोड़ते हुए उसने कांपना शुरू कर दिया. . .उसकी कमीज भी बाहर निकल आयी. आखिरकार संभलने की काफी कोशिशें करने के बावजूद वह फर्श पर गिर ही पड़ा. जर्मन उसकी यह हालत देखकर तेजी से बाहर की ओर पलटा और अलार्म बजा डाले.

सभी लोग अपना-अपना खाना छोड़कर तेजी से लायब्रेरी की तरफ भागे और 'क्या हुआ क्या हुआ' करने लगे. तभी होटल का मालिक मेहमानों के बीच में रास्ता बनाता हुआ बमुश्किल वहां आ पहुंचा, "कुछ नहीं हुआ, सैनफ्रांसिस्को के महाशय बेहोश हो गये हैं बस."

निचले कॉरीडोर में ले जाकर छोटे किंतु ठंडे कमरे में बिस्तर पर उसे अभी लिटाया ही था कि उसकी बेटी बेतहाशा भागती हुई आयी. उसके बाल कंधों तक झूल रहे थे. उसकी स्कर्ट और ड्रेसिंग गाउन करीब-करीब अधखुले-से थे. इसके बाद उसकी पत्नी वहां पहुंची जो डिनर के लिए लगभग तैयार थी. उसके चेहरे पर आतंक छाया हुआ था.

कुछ लोग वापस डायनिंग हॉल में आकर भोजन करने लगे थे. वे सभी अपने आप में खामोश थे.

उधर सैनफ्रांसिस्को का आदमी एक सस्ते लोहे के पलंग पर गुमसुम पड़ा था. मद्धम रोशनी का बल्ब हल्का प्रकाश फेंक रहा था और माथे पर बर्फ रखकर ठंडक पहुंचाने की कोशिश की जा रही थी. पर, धीरे-धीरे उसका चेहरा पीला पड़ने लगा . . . .और अब वह खत्म हो चुका था.

तभी होटल का मालिक वहां आ पहुंचा. उसने डाक्टर से कुछ बातचीत की और खामोश हो गया. मृतक की पत्नी ने कहा कि लाश पहले उसके कमरे में पहुंचायी जानी चाहिए.

"नहीं मैडम, यह एकदम नामुमकिन है!" उसने विनम्रता से जर्मन भाषा में कहा.

लड़की, जो अब तक भौंचक्क-सी अपने पिता के शव को देखे जा रही थी, जमीन पर पसर गयी और मुंह पर रूमाल ढांपे जार-जार रो पड़ी. उसकी मां के आंसू एकदम सूख गये और वह अपने हाथ उठाकर कहने लगी कि अब मेरी इज्जत नहीं की जा रही.

रात को जब होटल सो चुका था, एक वेटर ने रूम नं. 43 की खिड़की खोली. खिड़की बगीचे के कोने की तरफ थी. वेटर ने रोशनी का रुख मोड़ा और दरवाजे की ओर नजर मारकर लौट गया. शव अंधेरे में पड़ा रहा.

कॉरीडोर में बैठे होटल के नौकर कुछ बना रहे थे. तभी स्लीपर पहने लुइजी ने प्रवेश किया. उसने फुसफुसाते हुए कुछ पूछा और कमरे की ओर हाथ का इशारा किया. फिर वह फुसफुसाने के अंदाज में ही चीखा.. .नौकरों के गले जैसे घोट ही दिये गये थे. उसने इसके तुरंत बाद एक-दूसरे के कंधों पर एक-दूसरे के सिरों को टिकाया और कमरे की ओर बढ़ लिया. दरवाजा खोला और कुछ पूछा फिर कुछ क्षण बाद वह खुद ही दुखी स्वर में बोला, "हां, अंदर आ जाओ!"

. . .और जब रूम नं. 43 की खिड़कियों का रंग सफेद हो गया, केले के पेड़ के पत्ते हवा में फड़फड़ाने लगे, कैपरी के आसमान का रंग पीला होने लगा, सभी घुमंतू अपने-अपने कामों में लग गये तो एक बड़ा संदूक लाया गया.

▣

छोटी बाहों का पुराना कोट पहने लाल आंखोंवाला गाड़ीवान लगातार चाबुक मारते हुए अपने छोटे लेकिन शक्तिवान घोड़े को दौड़ाए चला जा रहा था. उसके सर में काफी दर्द था. इसी वजह से वह खामोश था. पर उसकी बगल में रखे संदूक में पड़े सैनफ्रांसिस्को के आदमी के शव ने, उसे अचानक होनेवाली आमदनी से खुश कर दिया था.

घाट के पास हैड डोरमैन गाड़ीवान से आगे निकल गया. वह मृतक की पत्नी और बेटी को ऑटो में लेकर आया था.

मृतक का शव अपने अपने गंतव्य के रास्ते पर था. एक नयी दुनिया का समुद्रतट, जहां एक कब्र उसके इंतजार में थी. संयोग की बात यह थी कि यह वही जहाज था जो सैनफ्रांसिस्को के उस परिवार को पूरी शान से लेकर आया था.

विलासमय केबिनों, डाइनिंग रूम और हॉलों में प्रकाश और उल्लास फैला हुआ था. बढ़िया और चुस्त कपड़े पहने लोग ऑरकेस्ट्रा की धुनों में मस्त थे. सभी इस बात से बेखबर थे कि संगीत की लहरों के साथ-साथ एक दूसरे में खोये हुए प्रेमी युगल आनंददायी आदान-प्रदान कर रहे थे. वे सभी बेखबर थे कि दूसरी तरफ समुद्र के बीचोबीच जहाज ने समुद्र, तूफान और अंधेरे के साथ कितना संघर्ष किया है! □

रूपांतर : महेश दर्पण

'मैंने नोबेल पुरस्कार क्यों अस्वीकार किया ?'

--सार्त्र

नोबेल पुरस्कार मिलना जितना मुश्किल है, उससे ज्यादा मुश्किल है उसे अस्वीकार कर देना और सार्त्र ने यही सबसे मुश्किल काम किया था. प्रस्तुत हैं उनके अस्वीकार-वक्तव्य के कुछ अंश और उनकी जिंदगी के कुछ अछूते पहलू.

"आज जबकि तीसरे विश्वयुद्ध का संकट सारी दुनिया के लोगों के सिर पर मंडरा रहा है, और हमारी यह सुंदर पृथ्वी एक डरावनी जगह बनती जा रही है, मैं नैराश्य की गहरी खाई में गिरने से बड़ी मुश्किल से अपने को बचा पा रहा हूं. मुझे लगता है कि हम इससे उबरने में कभी सफल नहीं हो पायेंगे. और यह भी कि हम सब निरुद्देश्य और अपने तुच्छ से निजी हितों के लिए आपस में लड़ रहे हैं. हम छोटी-मोटी क्रांतियों के झंडे आये दिन फहराते रहते हैं, किंतु ऐसी सब क्रांतियों का अंत पहले से अधिक बड़ी अव्यवस्था में होता है. इनमें से किसी भी क्रांति का उद्देश्य आज के साधारण मानव की स्थिति को बेहतर बनाना नहीं है. अब जब मेरे मरने में पांचेक साल ही रह गये हैं, मुझे यह देखकर बड़ी निराशा होती है कि मरने से पूर्व मैं इस दुनिया को पहले से भी ज्यादा कुरूप और भयानक छोड़कर जाऊंगा. काश, मैं आशावान होकर मर सकता! मगर ऐसी आशा, जो हवाई न होकर एक सुदृढ़ आधार पर आधारित हो, मेरे भाग्य में नहीं बदी है. . ." ये शब्द हैं ज्यां पॉल सार्त्र के, जो उन्होंने 24 मार्च, 1980 को अपने अंतिम साक्षात्कार के दौरान एक फ्रांसीसी पत्र के प्रतिनिधि से कहे थे.

व्यभिचार की मनोग्रंथि

इन आग से तपते शब्दों से यह तो स्पष्ट है कि सार्त्र, जिन्हें 1964 का नोबेल-पुरस्कार प्रदान किया गया था (जो उन्होंने अस्वीकार कर दिया था) एक प्रतिबद्ध, ईमानदार और मानवता-प्रेमी लेखक थे.

वे अपने माता-पिता की एकमात्र संतान थे. लेकिन रिश्ते की अपनी एक बहन के साथ कौटुंबिक व्यभिचार की घटना अंत तक उनकी एक मनोग्रंथि बनी रही, और उनकी स्वर-कल्पना की झलक हमें 'द फ्लाइज' (ओरेस्ती और एलेक्ट्रा), 'रोड्स टू फ्रीडम' (बोरिस और इविच) और 'एल्तोना' (फ्रेंज और लेनी) में दिखायी देती है. सिर्फ अंतिम नाटक में भाई-बहन इस अस्वाभाविक संबंध के बारे में कुछ कहते हैं. भाई कहता है, "यदि हम दोनों के यौन-संबंधों पर प्रतिबंध न होता, तो शायद मैं उसकी ओर आकर्षित न होता."

सार्त्र को आकर्षक व्यक्तित्ववाला पुरुष नहीं कहा जा सकता था. पत्नी न होते हुए भी उनकी जीवन-संगिनी का दर्जा पाने वाली सिमरेन द बुवा ने एक स्थान पर कहा है, "मैंने अपने सब छात्रों में सार्त्र को सर्वप्रथम, महज इस वजह से चुना था कि वे सबसे ज्यादा कुरूप और गंदे थे."

स्वयं चेन-स्मोकिंग करने वाले सार्त्र क्लास-रूम में अपने छात्रों को धूम्रपान करने से मना नहीं करते थे.

इसे नारी-मनोविज्ञान की एक विलक्षणता या यों कहा जाये कि स्त्रियां उनके प्रति सहज रूप से आकर्षित हो जाती थीं. उनके नाटकों और उपन्यासों में पुरुष-पात्र गौण हैं, प्रधान भूमिका नारी-पात्रों की ही है. और ये सभी नारियां विषयासक्त हैं, मगर बड़े सर्द ढंग से. बुद्धिमती होने के साथ-साथ आक्रामक भी हैं, और अपने प्रेमियों तथा परिचित पुरुषों को अपनी मुट्ठी में रखना जानती हैं. पुरुषों को वे अपना दास बनाकर रखती हैं, और उन्हें सिर्फ अपनी काम-वासना तृप्त करने का साधन-मात्र समझती हैं.

ये तो रहीं सार्त्र की रचनाओं की नारियां. स्वयं सार्त्र का नारियों के बारे में जो मत था, वह इस प्रकार था—'मैंने सदा अपने को नारियों से घिरा पाया. नारियों से मेरे संबंध बहुत अच्छे और प्रीतिकर रहे हैं, भले ही मैं उनके साथ सोया या नहीं. नारी पुरुष से इस अर्थ में भिन्न है कि जब वह कुछ देती है, तन, मन या प्यार, तो संपूर्ण भाव से देती है.'

बर्नार्ड शॉ की भांति सार्त्र को भी नारी को आक्रामक और पुरुष को निश्चेष्ट दिखाने में आनंद आता था. आक्रामक नारी उनके लेखे स्वतंत्रता का रूपक थी. 'द फ्लाइज' में ओरेस्ती निष्क्रिय है, और एलेक्ट्रा उत्कट और आक्रामक है.

बचाव में सुरक्षा

अपने व्यक्तित्व और कृतित्व दोनों में सार्त्र घोर पलायनवादी थे. बचाव में उन्हें सुरक्षा दिखायी देती थी. उनका एक प्रसिद्ध कथन है—'द अदर इज हेल' (दूसरा नरक है). 'एल्तोना' में फ्रेंज गरलॉल एक अटारी में 13 वर्षों तक छिपा रहा. वह रोमानी सपनों, चाकलेट के पदकों, केकड़ों और हिटलर के एक चित्र से घिरा है, और रह-रहकर हिटलर के चित्र पर प्लेट फेंकता रहता है.

सार्त्र ने जो कहा, उससे मैं कतई संतुष्ट नहीं हूं। ● जॉन ओहारा

सार्त्र के नोबेल पुरस्कार अस्वीकार करने के कारणों के वक्तव्य पर एक टिप्पणी

सार्त्र ने भी नोबेल पुरस्कार को अस्वीकार कर दिया है. (यह लेख सार्त्र द्वारा नोबेल पुरस्कार की अस्वीकृति के समय लिखा गया था.) और इस सर्वोच्च पुरस्कार की अस्वीकृति की सफाई में सार्त्र ने जो कुछ कहा है, उससे मैं कतई संतुष्ट नहीं हूं. उन्होंने अपनी सफाई में यह भी कहा है कि "नोबेल पुरस्कार ज्यादातर पश्चिम के लेखकों को ही दिया जाता रहा है, और पूरब के उन लोगों को भी, जो पश्चिम का समर्थन और पूरब का विरोध करते हैं. सोवियत रूस की जिस एकमात्र कृति को नोबेल पुरस्कार समिति ने पुरस्कृत किया, वह सोवियत रूस के बाहर प्रकाशित हुई थी, और रूस में उस पर प्रतिबंध लगा था."

सार्त्र यद्यपि कम्युनिस्ट पार्टी के सदस्य नहीं हैं, तथापि कम्युनिस्ट विचारधारा के प्रति उनकी समर्पण भावना और लगन पार्टी के नियमित सदस्यों को भी शर्मिंदा कर सकती है.

सार्त्र ने यदि इसी आधार पर नोबेल पुरस्कार को अस्वीकार किया है, तो मुझे उनसे सिर्फ इतना कहना है कि इसी आधार पर उन्हें नोत्रेदाम विश्वविद्यालय का लेयत्रे पदक, अमरीकी सरकार का स्वतंत्रता-पदक और 'नेशनल कॉन्फ्रेंस ऑफ क्रिश्चियंस एंड ज्यूज' का भाईचारा पुरस्कार आदि भी वापस लौटा देने चाहिए, क्योंकि ये सभी सम्मान भी सोवियत रूस विरोधी हैं. उन्हें 'फ्रेंच लीजन ऑफ ऑनर' के सम्मान को भी वापस लौटाना होगा.

इसके अतिरिक्त मैं सार्त्र के इस कथन के विरोध में अवश्य कुछ कहना चाहूंगा कि —"लेखक को अपने को संस्था के रूप में परिणित होने देने से इंकार कर देना चाहिए. उसे सरकारी या अन्य पुरस्कार नहीं स्वीकार करने चाहिए, क्योंकि ऐसा करने से वह अपनी कलम की ताकत में उस प्रभावशाली संस्था की शक्ति भी जोड़ देता है, जिसने उसे पुरस्कार देकर सम्मानित किया है."

अपने को 'पूर्णतया स्वतंत्र' मानने और कहने वाले किसी गणमान्य व्यक्ति के मुंह से ऐसी बात सुनकर सचमुच आश्चर्य होता है. सार्त्र कहते हैं कि "सरकारों या संस्थाओं द्वारा प्रदत्त पुरस्कारों को स्वीकार करके लेखक अपने पाठकों के साथ अन्याय करता है." क्या सार्त्र यह कहना चाहते हैं कि यदि वे नोबेल पुरस्कार स्वीकार कर लेते, तो अपनी स्वतंत्रता खो बैठते, और अपने पाठकों के साथ अन्याय करते! क्या सार्त्र को यह याद दिलाना सही होगा कि पचास हजार डॉलर (नोबेल पुरस्कार की राशि) और एक स्वर्ण-पदक देकर उन्हें कोई खरीद नहीं रहा है, और इस राशि से उनकी कीमत नहीं आंकी जा रही है. इसके विपरीत, इस पुरस्कार की राशि को अस्वीकार करके उन्होंने अप्रत्यक्ष रूप से यह स्वीकार कर लिया है कि इसकी स्वीकृति उनकी स्वतंत्रता को नष्ट कर देगी.

मैं यह कहना चाहता हूं, सार्त्र एक कलाकार और राजनीतिक नेता के रूप में तब अत्यधिक प्रभावशाली होते, जब वे पुरस्कार स्वीकार कर लेते, और उसके बाद भी कम्युनिस्ट पार्टी से जुड़े रहते, और उसकी सेवा करते रहते. एक दार्शनिक न सही, किंतु एक राजनीतिक नेता के रूप में वे तब नोबेल पुरस्कार समिति के लिए ज्यादा खतरनाक सिद्ध हो सकते थे, और परेशानी पैदा कर सकते थे.

मैं कोशिश कर रहा हूं कि मैं जो कुछ कहूं, रचनात्मक दृष्टिकोण से कहूं. 1964 समाप्त होने वाला है, और मुझे लगता है कि मुझे इस विषय पर अपने रचनात्मक विचार अवश्य व्यक्त करने चाहिए.

तो, स्वीडिश अकादमी से मैं सिफारिश करता हूं कि आगे से वह साहित्यकारों को पुरस्कार देने के अतिरिक्त, दार्शनिकों को भी अलग से एक पुरस्कार प्रदान किया करे.

रूढ़िवादिता के विरोधी होते हुए भी सार्त्र की लेखन-शैली काफी हद तक आश्चर्यजनक रूप से रूढ़िवादी है. लेकिन, वे शब्दों को विचारों का दास मानकर चलते हैं. इस कारण, उनकी सभी रचनाएं पढ़ने में आसान हैं. 'नॉसिया' (जुगुप्सा) का नायक, जो दुनिया की विसंगतियों और कृपाओं से कुचला जा रहा है, बड़े स्पष्ट शब्दों में अपने विचारों और भावों को व्यक्त करता है—"अस्तित्व है. . . बस यहां होना." इसी कारण उनके उपन्यासों को रेडियो या टीवी पर प्रस्तुत करने में कोई दिक्कत नहीं होती.

संरचनात्मक दृष्टि से देखा जाये तो उनकी रचनाओं की मुख्य विशेषता यह है कि वे परमात्मा में विश्वास नहीं करते. वे कहते हैं, "उपन्यासकार या तो अपने पात्रों के कृत्यों का साक्षी हो सकता है या अभियंगी. वह एक साथ दोनों नहीं हो सकता. यदि वह ऐसा करने का प्रयास करेगा तो अपने पात्रों को भी धोखा देगा और पाठकों को भी. उपन्यास की घटनाएं विभिन्न दृष्टिकोणों से एक साथ जुड़ी होनी आवश्यक हैं." इस मामले में वे विलियम फॉकनर और डॉस पैसो के प्रशंसक थे.

सार्त्र को साहित्यकार के रूप में पुरस्कार देने का निर्णय करते समय समिति ने अपने प्रशस्ति-पत्र में कहा था—'सार्त्र का लेखन वैचारिक समृद्धता से पूर्ण है, और उसने स्वतंत्रता की खोज और सत्य की शोध के ईमानदार प्रयास के कारण आधुनिक काल को बहुत अधिक प्रभावित किया है.'

समिति का मत सही हो सकता है, मगर मेरी राय में यह ज्यादा सही है कि सार्त्र साहित्यकार से अधिक दार्शनिक हैं, और दार्शनिकों को साहित्यकारों से अलग रखना ही ठीक है. तब दार्शनिक की नकाब ओढ़कर साहित्य सृजन करने वाले लेखकों और साहित्यकार के रूप में विशुद्ध दर्शन बघारने वाले दार्शनिकों में भेद करना आसान हो जायेगा. एक और सुझाव भी देना चाहता हूं, और वह यह कि कवियों को भी अलग से नोबेल पुरस्कार दिया जाना चाहिए. वैसे, कवियों में भी अनेक हैं—बुद्धिवादी, रोमानी, सूफी, रहस्यवादी और दुर्बोध.

आज स्थिति यह है कि साहित्य-पुरस्कार-विजेताओं में विलियम फॉकनर, टी. एस. ईलियट और बर्ट्रेंड रसेल जैसे विभिन्न व्यक्तित्वों वाले लोग एक मंच पर आ जाते हैं.

और हां, सार्त्र महोदय, रसेल भी तो कम्युनिस्ट थे. फिर क्यों उन्होंने नोबेल-पुरस्कार स्वीकार कर लिया था? □

● प्रस्तुति : हरि

बड़े नोट पास रखना अच्छा लगता है ?

अपने जीवन के अंतिम 30 वर्षों में सार्त्र ने उपन्यास से पूरी तरह संबंध-विच्छेद कर लिया था. वैसे वे अपनी आत्मकथा 'वर्ड्स' (शब्द) को भी एक उपन्यास ही मानते हैं—'एक ऐसा उपन्यास, जिसमें मैं विश्वास करता हूं.'

अपनी कृतियों से सार्त्र ने बहुत कमाया. वे काफी धनी थे. वे अपने किसी भी मित्र के साथ कहीं भी, अपने खर्चे से यात्रा कर सकते थे. उनके पास एक हजार पौंड के करीब रकम जेब में हमेशा रहती थी. "मुझे अपने पास बड़े-बड़े नोट रखना अच्छा लगता है. मैं अपने जरूरतमंद मित्रों की सहायता के लिए सदा तैयार रहता हूं. अपनी सारी कमाई के प्रति मेरे मन में कोई अपराध-भावना नहीं है. लेकिन, कभी किसी दबाव में आकर मैंने आज तक किसी को कुछ नहीं दिया."

नोबेल-पुरस्कार को स्वीकार करने के लिए उन पर काफी दबाव डाला गया था, लेकिन जिस प्रकार कुछ देते समय वे किसी के दबाव में नहीं आते, उसी प्रकार कुछ लेते समय भी किसी के दबाव में नहीं आते.

नोबेल-पुरस्कार को अस्वीकार करने के कारण बताते हुए उन्होंने कहा था, "नोबेल-पुरस्कार को अस्वीकार करके मैं स्वीडिश अकादमी और उसके सम्माननीय सदस्यों की अवहेलना या अनादर नहीं कर रहा हूं. कारण नितांत व्यक्तिगत और मेरी दृढ़ धारणाओं से संबंधित है. मैं ऐसा मानता हूं कि किसी साहित्यिक पुरस्कार को स्वीकार करते ही साहित्यकार की प्रतिबद्धता, जो उसकी संपूर्ण स्वतंत्रता और सत्य की शोध के साथ ही होनी चाहिए थी, पुरस्कार देने वाली संस्था के साथ हो जाती है. लेखक के रूप में मैं मानता हूं कि उसे न कोई संस्था बनना चाहिए, और न किसी संस्था से जुड़ना चाहिए. व्यक्ति के रूप में मैं यह मानता हूं कि इस पुरस्कार पर पश्चिम का ही एकाधिकार नहीं होना चाहिए, और पूरब और पश्चिम में अधिक सांस्कृतिक आदान-प्रदान आवश्यक है.' □

('न्यू स्टेट्समैन' के साहित्य-संपादक डेविड काउते के साथ हुई एक लंबी बातचीत के कुछ अंशों पर आधारित.)

● प्रस्तुति : हरि

सार्त्र का सत्य किसी चौखटे का सत्य नहीं है

◘ *नथाली सरात*

"**सार्त्र** के उपन्यास इतिवृत्तात्मक हैं. उनके नाटकों के बारे में अवश्य यह बात नहीं कही जा सकती. सार्त्र एक महान लेखक और महान व्यक्ति हैं. उनका सारा जीवन सत्य की तलाश है. उन्होंने राजनीति, साहित्य, हर जगह जो रुख अख्तियार किया, वह परस्पर विरोधी लगता है—क्योंकि वह सत्य को किसी एक चौखटे में कैद करने का नहीं बल्कि उसे ढूंढ़ निकालने का अनवरत यत्न है. सार्त्र ने पहले मार्क्सवाद का विरोध किया, फिर बीस साल बाद उसे आधुनिक समाज-रचना का आधार करार दिया. दरअसल, वह इतिहास के उन सभी अंतर्विरोधों को सुलझाना चाहते हैं जिनसे मनुष्यता आक्रांत है. सार्त्र के साहित्य में एक ऐसा नैतिक तनाव है, जो इस शताब्दी के किसी भी अन्य लेखक में नजर नहीं आता." □

● प्रस्तुति: धीरेंद्र अस्थाना

इतालवी कहानी

"जिस संपत्ति के मिलने से पहले
ही आदमी अपनी ईमानदारी खो बैठे,
उसका न मिलना ही अच्छा है."
इटली के मध्यवर्गीय जीवन की बेचारगी
और टुच्चेपन को रेखांकित करती
एक यादगार रचना

फटा हुआ बूट

▫ ग्रेज़िया देलेद्दा

एलिया कचहरी में बेकार-सा रहता था. उन दिनों लोग कचहरी से दूर ही रहना पसंद करते थे. बड़े से बड़े वकील भी छोटे-छोटे मुकद्दमे लेने के लिए मजबूर थे. एलिया के पास तो कोई भी मुकद्दमा न आता. फिर भी, वह कचहरी में जाता और वहां एकांत में बैठकर अपनी पत्नी को संबोधित करके कविताएं लिखा करता.

एक दिन रास्ते में एक परिचित गाड़ीवान ने एलिया को रोकते हुए कहा, "मैं अभी-अभी तेर्सनोवा से आ रहा हूं. वहां मैं तुम्हारे चचा से मिला था. वे सख्त बीमार हैं . . ."

एलिया घर लौटा तो उसकी पत्नी घर के सामने धूप में खड़ी उसकी प्रतीक्षा कर रही थी. एलिया ने अपने चचा की बीमारी की खबर उसे सुनायी तो उसके शांत-गंभीर चेहरे पर बेचैनी की बजाय रहस्यमयी मुस्कराहट आयी. उसे देखकर एलिया के होंठों पर भी मुस्कराहट आयी.

"तो मैं जाता हूं." एलिया ने कहा. आगे वह कुछ न बोला. पत्नी उसके मन की बात समझ गयी. चचा मरने पर अपनी सारी संपत्ति उसे दे जानेवाला था. तभी उसने पति के फटे हुए बूट की ओर देखते हुए पूछा, "रास्ते के खर्चे का भी कुछ खयाल किया है?"

"इसकी चिंता न करो. मेरे पास थोड़े-से पैसे हैं."

एलिया अपने चचा के शहर के लिए रवाना हो गया. रास्ते में वह तेजी से चलता हुआ अपने फटे बूट के बारे में सोच रहा था कि वह उसे किसी न किसी तरह चचा के घर तक पहुंचा दे तो बहुत अच्छा हो.

रात हुई तो ठंड बढ़ने लगी. एलिया को लगा कि उसके पांव उस ठंड को जैसे छूने लगे हों. उसने अपने खस्ता बूट की तरफ देखा, जो अब मरम्मत करने लायक नहीं रह गया था. उसे पहनकर चलने में बड़ी तकलीफ हो रही थी. फिर, यह खयाल भी तकलीफ दे रहा था कि ऐसा बूट पहनकर चचा के घर में जाना बेइज्जतीवाली बात होगी, लेकिन कोई चारा नहीं था. तब वह बूट की ओर से ध्यान हटाकर चचा की संपत्ति पाने और भविष्य में सुखी जीवन बिताने के बारे में सोचने लगा.

एक गांव आने पर वह रात बिताने के लिए एक धर्मशाला में ठहरा. कम किराये में उसे एक गंदी, छोटी-सी कोठरी मिली. वहां दो व्यक्ति पहले से ठहरे हुए थे. वे दोनों ही सोये हुए थे.

एलिया अपने उन्हीं कपड़ों में लेट गया, लेकिन उसे नींद न आयी. उसने अपने खयालों में संसार की सभी सड़कों पर और सभी घरों में अनगिनत बूट देखे. फिर तो उसे हर जगह बूट ही बूट दिखाई देने लगे. आखिर उसे लगा कि जैसे उस कोठरी में भी बूट बिखरे पड़े हों. तभी वह अचानक उठ बैठा और सर्दी से कांपता हुआ नंगे पांव बड़ी नर्मी से चलता हुआ अपने बगलवाले मुसाफिर की खटिया के पास गया. उसका एक बूट उसने पहना ही था कि उसके तपते हुए पांव में जैसे कोई चीज चुभी. उसने बूट उतार डाला. तभी कोठरी के बाहर उसे अस्पष्ट-सी आवाज सुनायी दी तो डर के मारे उसके पांव वहीं के वहीं जम गये. और उसी समय उसने अपनी आत्मा की फटकार सुनी कि वह पतन के रास्ते पर जा रहा है. बाहर की आवाज जब बंद हो गयी तो वह कोठरी में से निकला. वहां कोई नहीं था. एक तरफ लटकी हुई लालटेन मद्धिम-सी रोशनी कर रही थी. एलिया ने इधर-उधर देखा तो पास ही एक बूटों का जोड़ा पड़ा दिखाई दिया. उसी समय उसने बिना कुछ सोचे एक बूट उठाकर अपने कोट में छिपा लिया. फिर वह एक नजर वहां सोये पड़े चौकीदार की तरफ देखकर चुपके से फाटक खोलकर बाहर निकल गया.

▣

लगभग आधा घंटा नंगे पांव चलने के बाद उसे बूट पहनने का खयाल आया. एक पत्थर पर बैठकर वह बूट को कुछ क्षण देखता रहा. आखिर जब वह बूट पहनकर खड़ा हुआ तो उसके अंदर से आवाज आयी, "पतन! घोर पतन!" लेकिन आवाज की तनिक भी परवाह किये बिना वह चल पड़ा. अब वह पहले की तरह तेजी से नहीं चल रहा था. उसके कदम लड़खड़ा रहे थे और वह बार-बार पीछे मुड़कर देखता था कि कोई उसका पीछा तो नहीं कर रहा है.

प्रातःकाल का प्रकाश फैलने लगा तो एलिया का डर और बढ़ गया. उसके दिमाग में विचारों ने हलचल मचा दी. उसे लग रहा था कि राह चलते लोग उसकी चोरी भांप लेंगे और फिर उसके चोर होने की खबर चारों ओर फैल जायेगी. आखिर पकड़े जाने के डर से उसने फिर अपना पुराना बूट पहन लिया और चुराया हुआ बूट सड़क के एक तरफ फेंक दिया. तो भी, उसका मन शांत न हुआ. रात की घटना रह-रहकर उसके सामने आने लगी. उसे बार-बार लग रहा था कि उस कोठरी के दोनों मुसाफिर उसके पीछे आ रहे होंगे. फिर, इस खयाल से उसका दिल कांप उठा कि उसके चोर होने की खबर उसकी पत्नी तक पहुंच गयी तो अनर्थ हो जायेगा. संपत्ति पाने के पहले ही वह किस अधःपतन को पहुंच गया है!

▣

चलते-चलते वह रुक गया और फिर लौट पड़ा. उसका फेंका हुआ बूट वहीं पड़ा था. उसे देखते हुए उसके मन में हलचल होने लगी. अगर वह उसे छिपा दे या जमीन में गाड़ दे तो भी वह चोरी उसकी आत्मा से तो छिपी नहीं रहेगी. और वह चोरी उसके पूरे जीवन को कलंकित करती रहेगी. . .

अचानक उसने बूट उठाया और धर्मशाला की ओर चल पड़ा. वह धीरे-धीरे चल रहा था ताकि अंधेरा होने पर धर्मशाला में पहुंचे. दिनभर उसने कुछ नहीं खाया था और बड़ी थकान महसूस कर रहा था. उसके कदम डगमगा रहे थे.

धर्मशाला में खामोशी थी. उसने रात काटने के लिए जगह ली. फिर, मौका पाकर उसने वह बूट वहीं रख दिया, जहां से उठाया था और अपनी खटिया पर जाकर लेट गया. लेटते ही वह नींद में डूब गया. सुबह उठने पर उसने बचे-खुचे पैसों से डबल-रोटी खरीदी और वहां से चल दिया.

बड़ा सुहाना मौसम था. एलिया अपना फटा हुआ बूट पहने स्वस्थ मन से चला जा रहा था. आखिर जब वह अपने चचा के घर पहुंचा तो पता लगा कि कुछ ही घंटे पहले वह चल बसा था. नौकरानी ने उसे बताया, "मालिक ने आपका बहुत रास्ता देखा. तीन दिन पहले उन्होंने आपको तार भी भेजा था. वे कहा करते थे कि आप अकेले ही उनके वारिस हैं, लेकिन आपने उन्हें भुला दिया था. वे आपसे बहुत नाराज थे. जब आज सुबह भी आप नहीं आये तो उन्होंने अपनी सारी दौलत मछेरों के अनाथ बच्चों को दे दी."

एलिया लौटकर अपने घर आया. उसकी पत्नी ने सारा हाल सुनकर कहा, "अच्छा ही हुआ, जो संपत्ति हमें नहीं मिली. जिस संपत्ति के मिलने से पहेले ही आदमी अपनी ईमानदारी खो बैठे, उसका न मिलना ही अच्छा है." □

● रूपांतरः सुखबीर

प्रिंस ऑव वेल्स की चिट्ठी चर्चिल के नाम

प्रत्येक व्यक्ति इसे पढ़ रहा है!

● विंस्टन चर्चिल

युद्ध विषयक लेखों का अभूतपूर्व संग्रह था—'द स्टोरी ऑव द मलकंड फील्ड फोर्स' जिसके प्रकाशित होते ही (मार्च 1898 में) चर्चिल की पुरजोर प्रशंसा की गयी. यहां तक कि प्रिंस ऑव वेल्स (जो बाद में किंग एडवर्ड सप्तम हुए) ने भी चर्चिल को बधाई-पत्र भेजा—

प्रिय विंस्टन,

तुम्हारी किताब की सफलता पर बधाई की कुछ पंक्तियां लिखने का लोभ संवरण नहीं कर पा रहा हूं. मैंने इसे पूरी दिलचस्पी के साथ पढ़ा है और मेरे विचार में किताब की वर्णन-शैली और भाषा बेहतरीन है. प्रत्येक व्यक्ति इसे पढ़ रहा है . . . और मैंने अभी तक इसकी प्रशंसा ही सुनी है. अब तक तुमने सक्रिय (सेना) सेवाओं को देखा है . . . तुम और देखना चाहोगे, मुझे विश्वास है कि इस महान अवसर का उपयोग करते हुए तुम विक्टोरिया क्रॉस भी पा जाओगे . . . जैसा कि फिनकैसल ने पहले किया है, पर मैं समझता हूं कि तुम पहले के उन उदाहरणों से प्रभावित नहीं होगे, जो सेना छोड़ते हुए संसद की ओर जाने का रास्ता अख्तियार करते रहे हैं.

तुम्हारे पास अथाह समय है और तुम्हें अपने नाम के आगे मेंबर-पार्लियामेंट लगाने से पहले सेना को कोंचते रहना चाहिए.

तुम्हारी सफलताओं की आशा के साथ . . .

तुम्हारा
ए. ई.

● प्रस्तुति : महेश

हमें अपने बारे में कैसे, कितना और किस प्रकार बोलना चाहिए?

जब हेमिंग्वे को नोबेल पुरस्कार प्रदान किये जाने की घोषणा हुई तब उनकी मनःस्थिति क्या थी? यह खुशखबरी सुनकर उन पर क्या प्रतिक्रिया हुई? और नोबेल-पुरस्कार समारोह में धन्यवाद प्रकट करते हुए उन्होंने अपने नायाब संदेश में क्या-क्या कहा? साथ ही पुरस्कार प्राप्त करने के बाद दिये गये साक्षात्कार के दिलचस्प अंश और उन महिलाओं की जानकारी, जिनका खयाल था कि हेमिंग्वे ने कुछ महिला पात्रों की सृष्टि उन्हें आधार बनाकर की है.

28 अक्तूबर 1954 को स्वीडन अकादमी ने औपचारिक घोषणा कर दी कि इस वर्ष का नोबेल-पुरस्कार हेमिंग्वे को प्रदान किया गया है. प्रशस्ति-पत्र में कहा गया था: "यह पुरस्कार हेमिंग्वे को 'द ओल्ड मैन एंड द सी' में प्रदर्शित सशक्त और आधुनिक वर्णन-शैली के लिए प्रदान किया जा रहा है... नोबेल-पुरस्कार साधारणतया जिन आदर्शवादी प्रवृत्तियों के लिए प्रदान किया जाता है, उनका हेमिंग्वे की 'द ओल्ड मैन एंड द सी' से पहले की कृतियों में, जो पाशविकता, निर्दयता और दोषदर्शिता से पूर्ण थीं, नितांत अभाव था. लेकिन इसके बावजूद, उनके जीवन-बोध में एक उदात्त कारुणिकता है, साहस और खतरनाक कृत्यों के प्रति एक मर्दाना प्रेम है. लेखक के रूप में वे हर उस व्यक्ति की प्रशंसा करते हैं, जो हिंसा और हत्या से आक्रांत

आज की दुनिया में सच्चाई और नेकी के लिए संघर्ष करता है."

दो प्रतिक्रियाएं तत्काल हुईं, हेमिंग्वे के मन में, इस घोषणा के बारे में—

पहली—"अगर कोई जना मुझे बधाई देने आया, तो खुदा की कसम, या तो मैं उसे गोली मार दूंगा, या अफ्रीका में जाकर किसी शेर का शिकार करते-करते खुद मर जाऊंगा. मेरे हमदर्द ही मेरी जान लेकर रहेंगे!"

दूसरी—"पारितोषिक-समारोह में भाग लेने के लिए स्टाकहोम जाना मेरे लिए असंभव है. कमर के दर्द की वजह से मैं दो कदम भी नहीं चल सकता हूं. वैसे, अगर मैं पूरी तरह स्वस्थ होता है, तो भी संभावना यही होती कि मैं स्टाकहोम नहीं जाता. ऐसे समारोहों में भाग लेने के लिए औपचारिक पोशाक पहनना लाजिमी है... और औपचारिक पोशाक के नाम पर मैं बनियान-चड्डी को ही 'औपचारिक पोशाक' मानता हूं, और उनसे ऊपर नहीं जा सकता. मेरा एकांत-प्रेम और शर्मीलापन भी ऐसे समारोहों में भाग लेने में बाधक बनता है. इसीलिए, मैं ऐसे तड़क-भड़क वाले औपचारिक समारोहों से दूर ही रहता हूं."

हेमिंग्वे स्काटहोम में आयोजित नोबेल-पुरस्कार वितरण-समारोह में भाग लेने तो नहीं गये, लेकिन उन्होंने एक स्वीकरण-संदेश अवश्य भेजा जो इस समारोह में स्वीडन में नियुक्त अमरीकी राजदूत जॉन केबोत ने पढ़कर सुनाया.

संदेश इस प्रकार था—

स्वीडिश अकादमी के सदस्यो, महिलाओ और सज्जनो! मैं एक अच्छा वक्ता नहीं हूं. वाक्पटु मैं न कभी रहा, और न कभी हो सकूंगा. सर्वप्रथम मैं नोबेल महोदय की उदारता को अक्षुण्ण रखने वाले प्रबंधकों को धन्यवाद देना चाहूंगा कि उन्होंने मुझे इस पुरस्कार के योग्य समझा.

यह पुरस्कार ग्रहण करने वाला प्रत्येक लेखक ऐसे अनेक लेखकों को जानता है, जो इस पुरस्कार के योग्य थे, किंतु जिन्हें यह पुरस्कार नहीं मिल सका. इसलिए, यह पुरस्कार स्वीकार करते समय वह अत्यंत नम्र हो जाता है. उसे विनम्र होना ही पड़ता है.

मैं स्वयं ऐसे अनेक लेखकों के नाम गिना सकता हूं, किंतु उसकी कोई आवश्यकता नहीं है. प्रत्येक साहित्यकार और साहित्य-प्रेमी अपने ज्ञान और विवेक के अनुसार ऐसे लेखकों की सूची तैयार कर सकता है.

मेरे दिल में क्या है, और सचमुच मैं जो कुछ कहना चाहता हूं, उसे कहने बैठ जाऊं, तो यह अपने देश के राजदूत के प्रति, जो मेरी बात आपको पढ़कर सुनाने वाले हैं, अन्याय होगा. इसलिए जो कुछ मैं वास्तव में कहना चाहता हूं, वह कहना मेरे लिए नामुमकिन है.

असल में लेखक क्या कहना चाहता है, वह उसके लेखन से तत्काल ज्ञेय नहीं होता. और लेखक को अपने को सौभाग्यशाली मानना चाहिए कि वह तत्काल ज्ञेय नहीं हो पाता. किंतु अंततः जो कुछ वह अपने लेखन के माध्यम से कहना चाहता है, वह स्पष्ट और ज्ञेय हो ही जाता है, उस कीमिया की वजह से, जो उसके अंदर सदा विद्यमान रहता है. और वह कितना ज्ञेय और स्पष्ट है, या नहीं है, इसी पर निर्भर करती है यह बात कि उसका लेखन अमर रहेगा, या उसे शीघ्र ही भुला दिया जायेगा.

लिखना एकांत में ही हो सकता है. लेखकों की संस्थाएं उसके एकांत सेवन की अनिवार्यता को थोड़ा कम अवश्य करती हैं, मगर इस कारण उसके

लेखन में कोई सुधार नहीं ला पातीं. अपने एकांत-जीवन का परित्याग करके, और सार्वजनिक जीवन को अधिकाधिक अपना कर, वह लोगों की निगाह में ऊंचा अवश्य उठ जायेगा, मगर इससे उसका लेखन श्रेष्ठतर हो पायेगा, इस बारे में मुझे संदेह है, कारण, सच्चा लेखन एकांत में ही हो सकता है, एकांत में लेखन-कार्य करके ही वह प्रतिदिन शाश्वतत्व का साक्षात्कार कर सकता है.

सच्चे लेखक के लिए उसकी प्रत्येक कृति एक ऐसी शुरुआत है, जिसके द्वारा वह अप्राप्य को प्राप्त करने का अभिनव प्रयास करता है. वस्तुतः उसे सदा एक ऐसे लक्ष्य तक पहुंचने की कोशिश करनी चाहिए, जहां तक पहले कभी नहीं पहुंच पाया, और जहां तक पहुंचने के प्रयास में दूसरे असफल रहे हैं. यदि वह सतत रूप से ऐसा प्रयास करता रहे, तो उसकी सफलता निश्चित और असंदिग्ध है.

साहित्य-लेखन कितना सरल हो जाये, यदि सब लेखकों के लिए पहले के ही अच्छे लेखन को ही दूसरे ढंग से प्रस्तुत करना आवश्यक हो जाये. मैं ऐसा इसलिए कह रहा हूं, क्योंकि गुजरे जमाने में अनेक महान लेखक हो चुके हैं, जो नये लेखन के, बशर्ते वह उन तक पहुंच सके, मददगार साबित हो सकते हैं.

खैर, मैं जरूरत से ज्यादा कह गया. हमें अपने और अपने लेखन के बारे में इतना ज्यादा नहीं बोलना चाहिए. लेखक को अपने और अपने लेखन के बारे में जो कुछ कहना हो, वह उसे अपनी कृतियों के माध्यम से ही कहना चाहिए.

हेमिंग्वे के सहयोगी और 'लिटरेरी एजेंट' ए. ई. हॉचनर कृत 'पापा हेमिंग्वे' के अनुसार—"1954 के अंत तक हेमिंग्वे वापस क्यूबा चले गये. शायद 1 जनवरी, 1955 को मुझे हवाना से उनका एक फोन मिला. मुझे आशा थी कि वह मुझे बुलायेंगे कि हवाना में व्याप्त अशांति और उपद्रवों के कारण, उनका लेखन-कार्य सुचारू रूप से नहीं हो रहा है. लेकिन उन्होंने कहा, "अनेक शारीरिक कष्टों के बावजूद, पिछले दो महीनों में मैं अपनी नयी पुस्तक के 35,000 शब्द लिख सका, और इससे मुझे बड़ा सुख और संतोष मिला. असल में लिखने से मुझे इतना सुख और संतोष मिल रहा था कि नोबेल-पुरस्कार मिलने के समाचार से भी कोई विशेष सुख नहीं हुआ. और जो थोड़ा-बहुत सुख मिला, वह उसके बाद उपद्रवों के कारण, बिलकुल हवा हो गया. एक के बाद एक फोटोग्राफर आये, जिनके लिए पोज करते करते मैं आजिज आ गया, एक फोटोग्राफर ने तो लगातार साढ़े छह घंटे तक मुझे नाच नचाया. और तुम जानते ही हो कि इन फोटोग्राफरों से मुझे कितनी नफरत है, और उनसे भी ज्यादा नफरत है उन तथाकथित पत्रकारों से जो दुनिया भर के बेकार सवाल पूछते हैं, फिर अपने सवाल तो ठीक छापते हैं, लेकिन मेरे जवाबों को गलत-सलत और तोड़-मरोड़ कर छापते हैं. इन सब लोगों की वजह से मेरी किताब का तो कचूमर ही निकल गया. मैंने हर मुमकिन कोशिश करके देख ली है, लेकिन मैं न तो शैतान फोटोग्राफरों से निजात पा सका हूं और न इन बेवकूफ रिपोर्टरों से. कुछ भी करो, न जाने कहां से घुसकर सामने खड़े हो जाते हैं. इन कमबख्तों के लिए यह बात कोई महत्व नहीं रखती कि मैं एक किताब लिखने में व्यस्त हूं और मेरा पूरा ध्यान उसी में लगा है. और इन लोगों से नहीं भी मिलो, तो भी ये लोग बाज नहीं आते. अब इन 'टाइम' वालों को देखिए. वे मेरे बारे में एक सचित्र आवरण-कथा प्रकाशित करना चाहते थे, एक ऊंची रकम मुझे देकर. मैंने उनसे इल्तिजा की कि वे उतनी रकम मुझसे ले लें, मगर मुझे अकेला छोड़ने की कृपा करें. तो सुनो क्या कहते हैं 'टाइम' के बॉब मेनिंग मेरी पत्नी से! हजरत ने कहा, "हेमिंग्वे राजी हों या न हों, यह आवरण-कथा तो छपेगी ही." अब बताओ, कैसे छुटकारा मिले इन लोगों से?"

जब हेमिंग्वे मैड्रिड में थे तब उन्हें एक जर्मन पत्रिका के संपादक का फोन मिला, "आप अपने बहुमूल्य समय में से सिर्फ दस मिनट हमें देने की कृपा करें. हम इसके लिए आपके शुक्रगुजार होंगे."

"नहीं, बिलकुल नहीं, किसी भी शर्त पर नहीं." कहकर हेमिंग्वे ने फोन रख दिया.

कुछ देर बाद जब वह अपने होटल से कहीं बाहर जा रहे थे, तो उन्होंने होटल की लॉबी में दो जर्मनों को खड़े पाया. उनमें से एक के पास एक बड़ा कैमरा था. दूसरे ने, जो रिपोर्टर था, अपना कार्ड हेमिंग्वे के हाथ में थमा

तो भाड़ में जायें समीक्षक!

हेमिंग्वे को अपनी रचनाओं की समीक्षाएं पढ़ना बिलकुल पसंद नहीं था. एक बार उन्होंने ए. ई. हॉचनर से कहा था, "मैं उच्च रक्तचाप का मरीज हूं और इस रोग से पीड़ित साहित्यकारों का रक्तचाप अपनी कृतियों की प्रतिकूल समीक्षाएं पढ़कर प्रायः बढ़ जाता है. लेकिन मेरे साथ ऐसा बिलकुल नहीं होता, क्योंकि एक तो मैं अपनी कृतियों की समीक्षाएं कभी पढ़ता ही नहीं, और दूसरे पढ़ता भी हूं तो वे चाहें अनुकूल हों या प्रतिकूल, मुझे दूसरे लोगों की लांड्री की सूची से ज्यादा दिलचस्प नहीं लगतीं."

हॉचनर ने कहा, "न्यूयार्क टाइम्स में आपकी 'एक्रॉस द रिवर' नामक कृति की समीक्षा करते हुए उपन्यासकार जॉन ओ हारा ने आपको शेक्सपीयर के बाद अंग्रेजी का महानतम लेखक बताया है."

"न कभी मेरे समीक्षक मुझे समझ सकेंगे और न कभी मैं उन्हें. अब मैं कैसे उन्हें समझाऊं कि जब मैंने लिखना शुरू किया था, तब जैसे मैं साधारण गणित का एक छात्र था. बाद में क्रमशः ज्यामिति, और बीजगणित का छात्र हुआ. इस कृति के बाद, मैं जैसे कैल्क्युलस का छात्र बन गया हूं. अगली कृति के बाद मैं, यदि इस उपमा को आगे बढ़ायें, तो त्रिकोणमिति का छात्र बन जाऊंगा. लेकिन मेरे लेखन के प्रगतिक्रम को देखने-समझने लायक बुद्धि कहां है मेरे समीक्षकों में? नहीं है, तो भाड़ में जायें!" □

दिया. दोनों उसी पत्रिका से संबद्ध थे, जिसके संपादक को अपने बहुमूल्य समय में से दस मिनट देने के लिए हेमिंग्वे ने साफ मना कर दिया था.

उन्होंने उस रिपोर्टर से कहा, "तुम्हारे संपादक ने मुझे फोन किया था और मैंने उसे साफ मना कर दिया था. फिर तुम क्यों आये हो?"

रिपोर्टर ने बड़ी अजिजी से कहा, "देखिए, अगर आप मुझे इंटरव्यू नहीं देंगे, तो सच मानिए, मेरी नौकरी चली जायेगी".

> "आपने कितनी महिलाओं के साथ प्रेम किया है?" पूछने पर हेमिंग्वे का जवाब था, "काली महिलाओं के बारे में पूछ रहे हो या गोरी महिलाओं के बारे में?"

बेवकूफ से लगने वाले रिपोर्टर से हेमिंग्वे ने पूछा, "तुम मेरे बारे में क्या जानते हो?"

"जी, जानता तो नहीं हूं, मगर अब जान जाऊंगा."

"मेरी कोई पुस्तक पढ़ी है?"

"जी नहीं, पढ़ी तो नहीं है, मगर इस बात का हमारे इन्टरव्यू से.क्या संबंध है, यह मेरी समझ में नहीं आ रहा है!"

"ठीक कहते हो," हेमिंग्वे ने कहा. उन्हें इस बेवकूफ से लगने वाले रिपोर्टर से बातें करने में मजा आ रहा था, "अच्छा, तुम्हें दस मिनट दिये जाते हैं. लेकिन याद रखो, मैं कोई फोटो नहीं लेने दूंगा."

"जैसी आपकी मर्जी! और समय देने के लिए शुक्रिया! अच्छा, सबसे पहले यह बताइए कि क्या स्पेन आने का आपका यह पहला अवसर है? क्या आप स्पेनी भाषा जानते हैं? 'बुलफाइट' देखी है आपने?"

अगर रिपोर्टर को हेमिंग्वे के जीवन की थोड़ी भी जानकारी होती, तो वे ये सवाल न पूछता, क्योंकि हेमिंग्वे स्पेन में काफी समय तक रहे थे और वहां के जन-जीवन का उन्होंने अपनी कृतियों में बड़ा सुचारु चित्रण किया है.

हेमिंग्वे कुछ देर तक शांति के साथ उसके ऐसे ही बेकार और घिसे-पिटे सवालों के जवाब देते रहे, पर जब उसने यह पूछा, "आपने कितनी महिलाओं के साथ प्रेम किया है?" तो वे कुछ चौंके.

"काली महिलाओं के बारे में पूछ रहे हो या गोरी महिलाओं के?"

"दोनों की अलग अलग संख्या बता दीजिए?"

"तो लिखो—सत्रह काली, चौदह गोरी."

और रिपोर्टर ने ये संख्याएं अपनी नोटबुक में लिख लीं.

"आपको काली महिलाएं पसंद हैं, या गोरी?"

"गर्मियों में काली और सर्दियों में गोरी." रिपोर्टर ने यह जवाब भी नोट कर लिया.

इन उल-जलूल सवाल-जवाबों का सिलसिला शायद कुछ देर और चलता, मगर तभी हेमिंग्वे ने देखा कि फोटोग्राफर उनके चित्र खींच रहा है. उन्होंने उसे एक गाली देकर कहा, "मैंने पहले ही मना कर दिया था कि तुम्हें मैं अपना कोई फोटोग्राफ नहीं लेने दूंगा."

"मैंने आपका नहीं, होटल का फोटो लिया था."

"होटल का फोटो लेते समय कैमरे का मुंह मेरी तरफ करने की क्या जरूरत थी?"

"जी, माफी चाहता हूं. . ."

"अच्छा, अब तुम दोनों यहां से भागो. कैमरे के 'क्लिक' की आवाज मुझे सांप की सिसकारी जैसी लगती है."

और, यह नायाब इंटरव्यू बस यहीं खत्म हो गया. □

प्रस्तुति : हंस

हेमिंग्वे के महिला पात्र–

सिर्फ तुम्हारे लिए

अपने लेखन-काल में जिस एक समस्या से हेमिंग्वे सदैव बहुत अधिक परेशान रहे, वह यह थी कि अनेक महिलाओं का, जो हेमिंग्वे की परिचित थीं, यह विश्वास था कि उन्हें ही हेमिंग्वे ने अपने किसी उपन्यास में महिला पात्र के रूप में चित्रित किया है. उन्होंने कहा भी था कि "उपन्यास के बहुत से पात्र अभी तक जीवित हैं."

जैसे ही उनका उपन्यास 'एक्रास द रिवर एंड इनटु द ट्रीज' इतालवी में प्रकाशित हुआ, 'एपोका' नामक साप्ताहिक पत्र में आद्रियाना नामक एक महिला ने एक लेख प्रकाशित कराया, जिसका शीर्षक था: 'हेमिंग्वे की रेनेटा मैं ही हूं.' इस लेख में आद्रियाना से हेमिंग्वे से अपनी सबसे पहली भेंट का उल्लेख किया था, "यद्यपि वे मुझसे ज्यादा आयु के और अनुभवी थे, और मेरे साथ अधिक से अधिक समय बिताने को उत्सुक थे, तथापि मुझे उनके साथ बातें करने और रहने में ज्यादा आनंद नहीं आता था. वे मुझे नीरस लगते थे, और मैं उन्हें नहीं समझ पाती थी."

लेख में आद्रियाना का यह वाक्य विशेष रूप से महत्त्वपूर्ण और उल्लेखनीय है, "एक्रॉस द रिवर एण्ड इनटु द ट्रीज' लिखते समय हेमिंग्वे अचानक बीमार पड़ गये थे. तब उन्होंने मुझसे कहा था, "रेनेटा में सिर्फ तुम्हीं नहीं हो, तीन अन्य युवतियां भी हैं, जो कभी मेरे जीवन में आयी थीं. रेनेटा चारों की विशेषताओं का सम्मिश्रण है. रेनेटा का सिर्फ चेहरा ही तुम्हारा है. वैसे, मैं सिर्फ तुम्हारे लिए एक और उपन्यास लिखूंगा, जो मेरा श्रेष्ठतम उपन्यास होगा. इस उपन्यास का नाम भी मैंने सोच लिया है: 'द ओल्ड मैन एंड द सी.'. . □

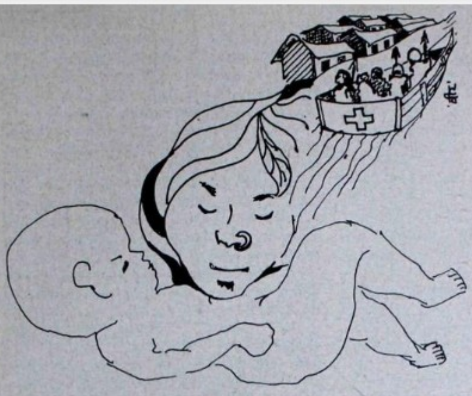

पापा, क्या मरना बहुत मुश्किल होता है? . . . पापा, उस आदमी ने आत्महत्या क्यों कर ली? . . . क्या बहुत से लोग आत्महत्या कर लेते हैं पापा?—मौत के दृश्यों को सामने देखकर एक बालमन में उठने वाले सवालों को रेखांकित करती गाथा कि किस प्रकार दर्द झेलने वाला तो मौत के मुंह से बाहर आ जाता है और देखने वाला मौत के मुंह में समा जाता है ! . . .

अमरीकी कहानी

जीना-मरना

• अर्नेस्ट हेमिंग्वे

एक दूसरी नाव भी झील के किनारे तैयार थी. दो आदिवासी खड़े आगंतुकों का इंतजार कर रहे थे.

निक और उसके पापा आये और नाव के पिछले हिस्से में बैठ गये. आदिवासियों ने उसे ठेलकर सरकाया और उनमें से एक बड़ी फुर्ती से उछलकर नाव में आ बैठा . . .और मशीन की तरह चप्पू चलाकर नाव खेने लगा.

उधर जार्ज चाचा शिविर वाली नाव में जा बैठे. दोनों नावों ने अंधेरे में पानी की छाती पर सफर तय करना शुरू कर दिया. कोहरे में आगे-पीछे चलती नावों के चप्पुओं की आवाजें एक-दूसरे को साफ सुनाई दे रही थीं. आदिवासी बड़ी तेजी से चप्पू चला रहे थे. उन्हें देखकर कोई भी कह सकता था कि वे अपना पूरा जोर लगाये दे रहे हैं.

निक अपने पापा की बाहों में लिपटकर उनकी गोद में लेटता हुआ बोला, "हम कहां जा रहे हैं पापा?"

"इधर एक आदिवासी बस्ती में एक औरत बहुत बीमार है. हम उसे देखने जा रहे हैं."

"अच्छा!" कहकर निक शांत हो गया. पिता ने देखा, कोहरे में दूसरी नाव आंखों से ओझल हो चुकी थी.

झील के उस पार पहुंचने पर उन्होंने दूसरी नाव को वहीं खड़े पाया. जार्ज अंधेरे में खड़ा सिगार पी रहा था. उसने दोनों नाविकों को सिगार दिये और वे सब एक घास के मैदान से गुजरते हुए आगे बढ़ने लगे. मैदान ओस के कारण भीगा हुआ था. एक आदिवासी लालटेन लिये-लिये उनके आगे-आगे चल रहा था. धीरे-धीरे वह जंगल में दाखिल हो गये. अब वे एक पगडंडी पर चल रहे थे. यह पगडंडी दरअसल, लट्ठे ढोने के वास्ते बनायी गयी थी, जो आगे जाकर पहाड़ियों में दाखिल होती मुख्य सड़क से मिल जाती थी.

सड़क पर पहुंचकर वे सब सहज हो गये, क्योंकि यहां दोनों ओर की लकड़ियां कट चुकी थीं और आराम से चला जा सकता था. यहां आदिवासी युवक ने लालटेन भी बुझा दी. सब बड़े उन्मुक्त भाव से सड़क पर आगे बढ़ने लगे.

एक मोड़ आया. सहसा एक कुत्ता भौंकता हुआ उनके समीप आ पहुंचा. तभी उन झुग्गियों में जलती रोशनियां दिखाई पड़ीं, जिनमें पेड़ों की छाल छीलने वाले आदिवासी रहते थे. कुछ आगे बढ़ने पर बहुत-से और कुत्ते भी उन पर झपटने को तत्पर हुए, मगर दोनों आदिवासियों ने उन्हें खदेड़कर वापस भगा दिया. वे झुग्गियों के पास पहुंचने लगे.

सड़क से कुछ ही दूर सबसे पहली झुग्गी के द्वार पर एक बूढ़ी औरत लालटेन लिये खड़ी प्रतीक्षा कर रही थी. वह झटपट उन्हें अंदर ले गयी, जहां एक तख्त पर जवान आदिवासी लड़की लेटी हुई थी.

वह दो दिन से प्रसव पीड़ा झेल रही थी. बस्ती की बुजुर्ग औरतें तो अपने-अपने ढंग से उसकी मदद कर रही थीं, लेकिन

आदमी दूर सड़क पर अंधेरे में जा बैठे थे और उस औरत की चीखों-कराहटों की पहुंच से परे सिग्रेट पी-पीकर वक्त काट रहे थे.

निक के पापा, चाचा जार्ज और आदिवासी ज्यों ही झुग्गी में घुसे वह लड़की बुरी तरह चीखी. वह अस्त-व्यस्त सी पड़ी थी...और लिहाफ में लिपटी हुई बहुत बड़ी महसूस हो रही थी. उसका सिर एक तरफ लुढ़का हुआ था.

वहीं एक तरफ उसका पति भी लेटा हुआ था. तीन दिन पहले उसका पांव कुल्हाड़ी से बुरी तरह कट गया था. वह पाईप पी रहा था और कमरे में भरी उसकी गंध नाक में सुरसुरी पैदा कर रही थी.

निक के पापा ने बूढ़ी औरत को कहा, कि वह कुछ पानी गर्म कर लाये. बुढ़िया चली गयी और जब तक पानी गर्म होता रहा, वह बैठे निक से बतियाते रहे.

"यह लड़की गर्भवती है, निक, इसके बच्चा पैदा होने वाला है." पापा ने कहा.

"मुझे मालूम है." निक बोला.

"मगर तुम्हें वह नहीं मालूम जो मैं बता रहा हूं," पापा ने बताया, "यह जिस हालत में से गुजर रही है, उसे प्रसव-अवस्था कहते हैं. . .यानी जब बच्चा पैदा होना चाहता है, मां भी चाहती है कि वह जल्द से जल्द जन्म ले ले. इसलिए इस अवधि में जब यह चीखती है, तब यही कुछ हो रहा होता है."

"अच्छा!" निक की आंखें फैल गयीं.

▣

तभी प्रसूता युवती फिर चीख उठी.

"पापा, क्या आप इसे कोई ऐसी दवा नहीं दे सकते, जिससे इसका चीखना बंद हो जाये?" निक ने पूछा, "बहुत दर्द हो रहा होगा न?"

"नहीं, मेरे पास बेहोशी लाने की दवा नहीं है," पिता ने कहा. "फिर इस वक्त इसकी चीखों का कोई महत्व नहीं. महत्वपूर्ण है वह क्षण जब यह एक नये-नकोर मुंह से सुनेगी. . . रोने की आवाज, जो इसके कानों में रस घोल देगी."

इससे पहले कि निक कुछ बोलता, युवती फिर चीख उठी. पास ही बिस्तर पर लेटा उसका पति दीवार से सटकर सुड़क गया.

बुढ़िया ने आकर बताया कि पानी गर्म हो गया है. निक के पापा उठकर रसोई में चले गये. वहीं केतली में से आधा पानी निकालकर उन्होंने अपना रूमाल खोलने के बाद कुछ औजार केतली के शेष पानी में डाल दिये.

"इन्हें उबलने दो," कहकर वह सैनिक शिविर से अपने साथ लाये गये साबुन से हाथ धोने लगे. निक उन्हें रगड़-रगड़कर हाथ धोते देखता रहा और वह मुस्कराते हुए उससे बातें भी करते रहे. उन्होंने बताया, "देखो निक, प्रसव में पहले बच्चे का सिर बाहर आना चाहिए, किंतु कभी-कभी ऐसा नहीं भी होता. . .और जब ऐसा नहीं होता तो प्रसूता और डाक्टर दोनों को काफी परेशानी का सामना करना पड़ता है. इस लड़की की हालत देखते हुए कुछ ऐसा लग रहा है कि शायद मुझे आप्रेशन करना पड़े. खैर, कोई बात नहीं, देखते हैं क्या होता है."

निक नासमझ-सा खामोश खड़ा रहा. पापा ने अपने हाथों को एक बार फिर देखा और उनकी सफाई से आश्वस्त होकर युवती के पास जा पहुंचे. जार्ज और बाकी लोग भी जाकर उनके पीछे खड़े हो गये.

पापा कुछ देर युवती की जांच करते रहे. फिर बोले, "आप्रेशन ही करना पड़ेगा. . . जार्ज, जरा इसके लिहाफ को हटा दो. . . कहीं मेरे हाथों पर धूल न लग जाये."

कुछ ही देर में आप्रेशन शुरू हो गया. जार्ज और तीन आदिवासी उस युवती को थामे रहे. युवती छटपटाती रही. यहां तक कि उसने जार्ज की बांह काट ली. जार्ज चिल्ला उठा, "अरी चुड़ैल. . ." एक आदिवासी युवक, जो जार्ज की नाव को खे कर लाया था, हंस दिया.

निक पापा के पास बेसन थामे खड़ा यह सब कुछ बड़ी उत्सुकता से देखता रहा. उसे पता ही न चला कि कब और कैसे इतनी जल्दी एक घंटा बीत गया.

▣

सहसा युवती के पेट पर झुके-झुके पिता ने एक बच्चे को ऊपर उठा लिया. उन्होंने उसकी सांस चलायमान करने के लिए उसे थपका और यह पाकर कि वह सांस लेने लगा है, उसे बूढ़ी औरत के सुपुर्द कर दिया.

"देखा निक? . . . यह लड़का है, जिसने अभी-अभी संसार में पांव रखा. . . मेरे हाथों. . . क्या तुम भी डाक्टर बनना पसंद करोगे मेरी तरह?"

"हां." निक ने दूसरी तरफ देखते-देखते जवाब दिया, ताकि वह वो सब कुछ न देखे जो उसके पापा कर रहे थे.

"बस, काम पूरा हो गया." पापा ने कहा और कोई चीज बेसिन में डाल दी.

निक उसे नहीं देख पाया.

"अब सिर्फ कुछ टांके लगाने हैं" पिता ने बताया, "मैंने इस लड़की के पेट का जो हिस्सा काटा था, उसे सी रहा हूं. तुम चाहो तो देख सकते हो."

मगर निक ने नहीं देखा. उसकी उत्सुकता और रुचि औरत को तड़पता देख-देखकर ही समाप्त हो चुकी थी. पिता ने अपना काम खत्म किया और उठ खड़े हुए. जार्ज और तीनों आदिवासी भी खड़े हो गये. जार्ज ने अपनी बांह देखी. आदिवासी युवक मुस्कराया.

"मैं इस पर पैराक्साइड लगा दूंगा." निक के पापा ने कहा और एक बार फिर अभी-अभी मां बनी युवती पर झुक गये. वह खामोश थी. आंखें बंद. वह पीली पड़ गयी थी और नहीं जानती थी कि उसके बच्चे या किसी भी चीज के साथ क्या बीती है.

"मैं कल फिर आऊंगा" पापा ने सीधे खड़े होते हुए कहा, "नर्स दोपहर तक पहुंच जायेगी और जिस चीज की जरूरत होगी, लेती आयेगी."

वह बहुत खुश थे और बिल्कुल उसी उत्साह से बातें कर रहे थे जैसे विजयी टीम के फुटबाल खिलाड़ी, खेल के

बाद कपड़े बदलते हुए करते हैं.

"जार्ज, यह तो अखबारों में छपने लायक खबर हो गयी है." उन्होंने कहा, "एक साधारण चाकू से प्रसव का आप्रेशन करके नौ फुट की नुकीली आंत की डोरी से पेट को सी देना . . . कोई मामूली घटना नहीं."

जार्ज दीवार से सटकर खड़ा अपनी बांह के घाव को देख रहा था. उसने कहा, "आप सचमुच महान हैं."

"जरा इसके खुशनसीब पति को भी देख लूं. आम तौर पर इस मामूली से काम के लिए भी पति को काफी कष्ट झेलना पड़ता है. वह पत्नी को तड़पता नहीं देख सकता. . . मगर इस आदमी ने सब कुछ बड़ी शांति से सहा है"... कहते-कहते उन्होंने उसके सिर पर से लिहाफ खींच लिया तो सहसा उनका हाथ चिपचिपा हो आया. उन्होंने पाया, यह खून था. वह आदिवासी दीवार की ओर मुंह किये निश्चेष्ट पड़ा था. . .और एक कान से लेकर दूसरे कान तक उसका गला कटा हुआ था. खून बहकर बिस्तर पर फैल गया था और उसका शरीर उसी में लुढ़का हुआ उसकी बायीं बांह पर टिका था. खुला रक्तसना चाकू उसके कपड़ों में पड़ा था.

"जार्ज, निक को बाहर ले जाओ." उन्होंने कहा. पर इसकी जरूरत नहीं पड़ी, क्योंकि रसोई के दरवाजे पर खड़ा निक यह सब कुछ भली-भांति देख चुका था.

▣

भारी मन लिये वे वापस चल दिये. सड़क खत्म होने पर पगडंडी पार करते-करते पौ फटने लगी. पापा बेहद उदास थे. आप्रेशन की सफलता की सारी खुशी गायब हो चुकी थी. वह अपने-आप में पश्चाताप सा करते हुए बोले, "मुझे बहुत अफसोस है निक, मैं तुम्हें यहां ले आया और तुम्हें इतनी भयंकर घटना देखनी पड़ी."

"अच्छा पापा," निक ने अपना संशय प्रकट करते हुए पूछा, "बच्चा पैदा करते हुए औरतों को हमेशा ऐसे ही कष्ट झेलना पड़ता है क्या?"

"हमेशा नहीं, कभी-कभी?"

"पापा, उस आदमी ने आत्महत्या क्यों कर ली?"

"पता नहीं. शायद वह अपनी पत्नी का दर्द बरदाश्त नहीं कर पाया."

"पापा, क्या बहुत-से लोग आत्महत्या कर लेते हैं?"

"बहुत-से तो नहीं, निक! कोई-कोई. . ."

"क्या बहुत-सी औरतें भी आत्महत्या कर लेती हैं?"

"शायद ही कभी किसी ने की हो."

"वे कभी आत्महत्या नहीं करतीं?"

"कभी-कभार. . . बमुश्किल. . ."

"पापा!"

"हां बेटे."

"जार्ज चाचा कहां गये?"

"वह बाद में आ जायेंगे. . . शाम तक."

"पापा! क्या मरना बहुत मुश्किल होता है?"

"नहीं, मैं समझता हूं कि काफी आसान होता है. . . मगर सब कुछ अलग-अलग आदमी पर निर्भर करता है."

वे नाव पर सवार थे. निक पिछले हिस्से में था. पापा चप्पू चला रहे थे. सूरज पहाड़ियों से झांक रहा था. तभी एक मछली पानी में दायरा बनाती हुई उछली. निक ने अपना हाथ पानी में डाल दिया. सुबह-सुबह की ठंड में भी पानी उसे गर्म-गर्म सा लगा. उसने पापा की तरफ देखा. नाव खेते हुए पापा बड़े स्नेह से उसे ही देख रहे थे. . .और उसे लग रहा था कि निश्चित रूप से वह कभी नहीं मरेगा. □

● रूपांतर : जया रमेश

मैंने लिखना कैसे सीखा

▣ बर्टेंड रसल

इस दुस्साहसपूर्ण रास्ते पर एक भी कदम आगे चलूं, उससे पहले यह बता देना जरूरी समझता हूं कि गणित शास्त्र मेरा सर्वस्व है. जो भी मैं सोचता और करता हूं, उस सबके मूल में गणित का अंकुश रहता है. जब मैंने लिखने का संकल्प किया था, तो गणित का यह नियंत्रण मेरे साथ था. मैं प्रत्येक बात को थोड़े-से गिने-चुने शब्दों में कहना चाहता था.

इक्कीस वर्ष की उम्र होने पर मैंने अपने बहनोई लोगन स्मिथ से लिखना सीखना शुरू किया था. उन्होंने मुझे बताया था कि एक बार लिखे को बार-बार दोहराना चाहिए. पर यह तो मेरे लिए सिर दर्द हो गया. आखिर हालत यह हो गयी कि मैं महीनों तक लिख-लिखकर कागज ही फाड़ता रह गया. बाद में मुझे इसका कारण मालूम हुआ कि मैं पढ़ता कुछ नहीं था और ज्ञान के मेरुदंड के बिना ही लिखने बैठ जाता था. पर इस बात ने भी मुझे कम परेशान नहीं किया. तब मेरे लिए पढ़ना ही सब कुछ हो गया और लिखना छूट गया. पढ़ने में मेरा मन इतना लीन रहने लगा कि मैं प्रायः शरीर की सुध-बुध भी भूल जाता. उन दिनों अगर एक पुस्तक लिखने की मजबूरी न आती, तो मैं स्वाध्याय में ही डूबा रहता. वह पुस्तक जब मैंने अपने स्टेनो को लिखवायी और फिर मेरे मित्रों ने उसे पढ़ा, तो मेरे गद्य पर सबको आश्चर्य हुआ. तब उसे छापने के लिए प्रकाशकों में होड़ लग गयी.

शैली लेखन की आत्मा है. . .और यह आत्मा तभी अक्षरों में अंकित होने को आतुर होती है, जब व्यक्ति का ज्ञान उसे बिना लिखे बैठने नहीं देता. अपनी पहली पुस्तक से मैंने यही सबक सीखा और आज भी यह सबक मेरे सामने वैसा ही तरोताजा है. पद्य की शक्ति और प्रभावोत्पादकता से मैं परिचित हूं, परंतु गद्य के संयमपूर्ण प्रवाह में अर्थ की जो यथार्थता होती है, आज के युग की वही रसात्मकता है. □

नोबेल पुरस्कार की राजनीति बनाम 'द प्राइज़' की शोध-कथा

▣ इरविंग वैलेस

नोबेल पुरस्कार प्रारंभ से ही विवादास्पद और चौंकाने वाले रहे हैं, इतने कि इरविंग वैलेस जैसे जाने-माने उपन्यासकार को इसकी धांधलेबाजी पर 'द प्राइज' जैसे उपन्यास की रचना करनी पड़ी. इसके बाद यह बताने के लिए कि यह उपन्यास कैसे लिखा गया उन्होंने एक और किताब लिखी —'द राइटिंग ऑव ए नॉवेल'. . .यानि लिखा जाना एक उपन्यास का! —प्रस्तुत हैं नोबेल पुरस्कारों की राजनीति का पर्दाफाश करते कुछ अंश—

"मुझे अच्छी तरह याद है कि नोबेल पुरस्कारों से संबंधित अपने बहुचर्चित और लोकप्रिय उपन्यास 'द प्राइज' की शुरुआत मैंने सितंबर 1946 में स्टॉकहोम में की थी.

मैं एक अमरीकी पत्रिका के लिए हिटलर को 'विश्व के महानतम व्यक्तियों में से एक' मानने वाले प्रख्यात स्वीडिश वैज्ञानिक डॉक्टर हेदिन से भेंट करने गया था. साक्षात्कार के अंत में, बातचीत में डॉक्टर हेदिन ने कहा, "आपको मालूम है या नहीं, मैं नोबेल पुरस्कारों का एक निर्णायक हूं."

मुझे यह जानकर बड़ा आश्चर्य हुआ था. और, यह आश्चर्य उनसे बातें करके और अधिक बढ़ गया, क्योंकि मैंने पाया कि नोबेल पुरस्कार का वह निर्णायक विज्ञान और कला के क्षेत्रों में काफी हद तक अज्ञानी तो था ही, पूर्वाग्रहग्रस्त और असहिष्णु भी था. मेरे मन में नोबेल-पुरस्कार-निर्णायक की जो छवि थी, एक निष्पक्ष और न्यायप्रिय व्यक्ति की, वह डॉक्टर हेदिन से बातें करने के बाद एकदम ध्वस्त हो गयी.

डॉक्टर हेदिन 1913 में स्वीडिश अकादमी के, जो नोबेल-पुरस्कारों का निर्णय करती है, सदस्य बने थे, और चार में से तीन उप-समितियों के सदस्य थे. वैज्ञानिक होते हुए भी वे साहित्य के पुरस्कार का निर्णय करने वाली उप-समिति के 18 सदस्यों में से एक सदस्य थे. उन्होंने मुझे साहित्य के नोबेल पुरस्कारों के बारे में कई विचित्र और अविश्वसनीय बातें बतायीं. मसलन, क्या मैं जानता हूं कि 1938 में जब पहली बार उपन्यास-लेखिका पर्ल बक का नाम प्रस्तावित हुआ था, तब 18 सदस्यों में 10 सदस्य बक को पुरस्कार देने के पक्ष में नहीं थे, "लेकिन मैंने और सेल्मा लेजरलॉफ ने पर्ल बक की ऐसी जोरदार सिफारिश की कि उसके विरोधी भी उसे पुरस्कार देने को तैयार हो गये. बाद में पर्ल बक ने मेरी लिखी च्यांग-काई शेक की जीवनी प्रकाशित की, लेकिन उसके लिए इतनी कम रकम दी कि आप विश्वास नहीं करेंगे! कृतघ्नता की हद कर दी थी उसने."

जब मैंने डॉक्टर हेदिन से पूछा कि बहुत से अग्रणी साहित्यकारों को नोबेल पुरस्कार क्यों नहीं मिला, तो उन्होंने पूछा, "आपके मन में कौन-कौन साहित्यकार हैं?"

"उदाहरणार्थ, मैक्सिम गोर्की." मैंने कहा.

"गोर्की का नाम कई बार प्रस्तावित हुआ था, और एक न एक वर्ष उन्हें पुरस्कार मिल ही जाता . . मगर वे जल्दी चल बसे."

"एच. जी. वेल्स?"

"मामूली लेखक था, और लेखक से अधिक पत्रकार था."

"सामरसेट मॉम?"

"बहुत अधिक लोकप्रिय. . . और बहुत कम प्रतिष्ठित."

"जेम्स जॉयस?"

"वे कौन थे?" चकित डॉक्टर हेदिन ने पूछा.

उस दिन सिर्फ इतनी ही जानकारी उपलब्ध हो सकी डॉक्टर हेदिन से. दो सप्ताह बाद हुई भेंट में उन्होंने साहित्य के नोबेल पुरस्कारों के संबंध में पहले से अधिक उत्तेजक जानकारी प्रदान की. तीन घंटों तक वे मुझे नोबेल पुरस्कारों की राजनीति के बारे में बताते रहे. निर्णायकों के अवरोधनों, और उनकी कमजोरियों के बारे में बताने के बाद उन्होंने स्वीकार किया कि जहां अनेक निर्णय एकदम सही और अत्युत्तम थे, वहां अनेक मूर्खतापूर्ण, पूर्वाग्रहग्रस्त और राजनीति से प्रेरित भी थे

"ताल्सतोय, इब्सन, स्ट्रिंडबर्ग जैसे चोटी के साहित्यकारों को नोबेल पुरस्कार इसलिए नहीं मिल सका, क्योंकि एक निर्णायक—कवि और समीक्षक डॉक्टर कार्ल डेविट ऑफ बिरसेन उन तीनों के कट्टर विरोधी थे. ताल्सतोय के विरुद्ध उनकी शिकायत यह थी कि वे एक तो रूसी थे और दूसरे अपनी रचनाओं के माध्यम से अराजकता फैलाते थे. इब्सन के बारे में उनका मत था कि उन्होंने कभी श्रेष्ठ लेखन किया ही नहीं. स्ट्रीडबर्ग उनकी राय में पुराने ढंग के नाटककार थे. और स्ट्रीडबर्ग के बारे में जो बात निर्णायकों को सबसे ज्यादा चुभती थी, वह यह थी कि स्ट्रीडबर्ग ने एक बार कहा था, 'मैं नोबेल पुरस्कार विरोधी कोई पुरस्कार लेना पसंद करूंगा.' और चूंकि समिति में डाक्टर बिरसेन के समर्थकों की संख्या बहुत

काफी थी, इसीलिए जो वह कहते थे, वही होता था."

डॉक्टर हेदिन कहते रहे, "लेखकों का व्यक्तिगत आचरण भी प्राय: उन्हें योग्य बनाने में बाधक बनता था. अनैतिकतापूर्ण आचरण के कारण ड' अनुनजियो को पुरस्कार नहीं मिल पाया, और समलिंग-कामुकता के कारण गिदे को अनेक वर्षों तक पुरस्कार नहीं मिल सका. 1945 में नोबेल पुरस्कार के मुख्य प्रत्याशी थे—हेस, सैंडबर्ग, क्रास, रोमेंस और ग्रैब्रिला मिस्त्रैल, पर पुरस्कार अंतत: ग्रैब्रिला मिस्त्रैल को, क्योंकि एक कवि गुलबर्ग जो समिति के सदस्य भी थे, ग्रैब्रिला की कविता से इतने अधिक अभिभूत हुए थे कि उन्होंने स्वयं स्वीडिश भाषा में उसकी सब कविताओं का अनुवाद किया, और उससे हम सबको प्रभावित करके अकेले अपने बल-बूते से पुरस्कार दिलवाया."

मैं समिति के अन्य सदस्यों से भी मिला. इनमें सबसे अधिक मुखर और डॉक्टर हेदिन जैसे ही स्पष्टवादी निकले, स्वीडिश अकादमी के सचिव डॉक्टर ऑस्टरलिंग. जब मैं उनसे मिला, तब तक रूस में रहनेवाले किसी भी रूसी साहित्यकार को नोबेल पुरस्कार जीतने का सौभाग्य नहीं मिला था. स्वीडन सदा से अपने दैत्याकार पड़ोसी रूस से डरता आया है, और यही कारण है कि ताल्स्तोय, चेखव, गोर्की और एंद्रीयेव को नोबेल पुरस्कार के योग्य नहीं समझा गया. 1933 में एक अज्ञात रूसी कवि इवान बुनिन को नोबेल पुरस्कार प्रदान किया गया था. बुनिन रूस छोड़कर पेरिस में रहते थे, और उनकी सर्वोत्तम कृति थी, उनके द्वारा लांगफैलो की कविता 'द सांग ऑव हियावथा' का किया गया रूसी अनुवाद. जब मैंने डॉकर ऑस्टरलिंग से पूछा कि बुनिन जैसे साधारण कवि को नोबेल पुरस्कार क्यों प्रदान किया गया, तो वे बोले, "चेखव और ताल्स्तोय जैसे लेखकों की उपेक्षा करने के कारण समिति में जो दोष-बोध था, उसे मिटाने के लिए."

डॉक्टर ऑस्टरलिंग ने इस बात की पुष्टि की कि उन्होंने भी पर्ल बक को नोबेल पुरस्कार देने का विरोध किया था. उन्होंने यह भी बताया कि थॉमस वूल्फ और जेम्स जॉयस का नाम कभी समिति के सामने प्रत्याशियों के रूप में नहीं आया और राबर्ट फास्ट, थियोदोर ड्रेजियर और सिक्लेयर के नामों का हुआ.

उन्होंने यह दिलचस्प जानकारी भी दी कि प्राय: लेखकों की पत्नियां ही उनके नाम नोबेल पुरस्कार के लिए प्रस्तावित करती हैं. उनके द्वारा दी गयी एक अन्य जानकारी के अनुसार, लेखक जिस भाषा में लिखता है, वह भी निर्णय के संदर्भ में काफी महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती है. मिसाल के तौर पर, हिंदी के लेखक को नोबेल पुरस्कार जीतने में काफी कठिनाई होगी क्योंकि समिति के सभी सदस्य इस भाषा से अनभिज्ञ हैं, और कोई ऐसा विशेषज्ञ नहीं, जिसकी राय पर विश्वास करके वे कोई निर्णय ले सकें.

जब मैं उनसे मिलकर वापस होटल लौटा, तो मेरे मन में नोबेल पुरस्कारों की राजनीति तथा उसके पीछे चलने-वाले दंद-फंदों के बारे में 'द प्राइज' नामक एक उपन्यास लिखने का विचार जन्म ले चुका था

उपन्यास लिखने में समय लगता, इसलिए मैंने उपलब्ध तथ्यों को 'कालियर्स' नामक पत्र के लिए दो लंबे लेखों के रूप में प्रस्तुत करने का विचार किया सौभाग्य से 'कॉलियर्स' के नये संपादक को विवाद खड़े करने-वाले ऐसे ही लेखों की आवश्यकता थी.

इस लेख को प्रामाणिक बनाने के उद्देश्य से उन लेखक-लेखिकाओं से उनके मत जानने भी आवश्यक थे जिन्हें पुरस्कार मिल चुका था. मैंने उन सबको पत्र लिखे. श्रीमती पर्ल बक का रोचक उत्तर इस प्रकार था—

"जब स्टॉकहोम से नोबेल पुरस्कार की सूचना देनेवाला तार मुझे मिला, तो मैं न्यूयार्क में थी. एसोशियेटेड प्रेस नाम की न्यूज एजेंसी ने मेरे सेक्रेटरी को फोन किया और मेरे सैक्रेटरी ने मुझे. तब तक मेरे पति को भी पुरस्कार का समाचार मिल चुका था. उन्होंने

नोबेल समिति का अज्ञान

इरविंग वैलेस के उपन्यास 'द प्राइज' के प्रकाशित होते ही नोबेल समिति इतनी रुष्ट हुई कि स्वीडन में तो इस पर प्रतिबंध ही लगा दिया गया, समिति के सदस्यों को भी इस किताब को पढ़ने की सख्त मनाही कर दी गयी.

इस संदर्भ में मसाला इकट्ठा करने के लिए जब लेखक स्वीडन गया तो उसकी मुलाकात हुई पिछले चालीस वर्षों से नोबेल समिति के कार्यालय सचिव बैरन वान इनोवर से.

बातचीत के दौरान जब लेखक ने बैरन से पूछा कि जेम्स जॉयस या वर्जीनिया वुल्फ को यह पुरस्कार क्यों नहीं मिला? तो बैरन ने बताया कि इन रचनाकारों का तो उसने अभी तक नाम ही नहीं सुना था (साहित्य तो बहुत दूर की चीज है!).

वैलेस ने बैरन से विश्व की भाषाओं पर बातचीत करते हुए जब हिंदी के रचनाकारों को नोबेल पुरस्कार न मिलने का कारण पूछा तो उन्हें सीधा-सादा किंतु चौंकाने-वाला जवाब सुनने को मिला, "जिस भाषा के बारे में हम कुछ जानते ही नहीं उसके किसी साहित्यकार को यह पुरस्कार देने के बारे में सोच भी कैसे सकते हैं?"

सन् 1913 में नोबेल पुरस्कार प्राप्त करनेवाले रवींद्रनाथ ठाकुर 'गीतांजलि' का स्वयं अंग्रेजी अनुवाद न करते तो संभवत: नोबेल समिति का निर्णय कुछ और ही होता. . . जब नोबेल समिति इतने वर्षों बाद भी हिंदी के बारे में कुछ नहीं जानती (जो भारत की एक प्रमुख भाषा है) तो बंगला के बारे में उसकी जानकारी भला क्या होती! □

प्रस्तुति : र. का.

मुझे उस स्थान पर आने को कहा जहां पत्रकार और छायाकार मेरी प्रतीक्षा कर रहे थे. मुझे इस समाचार पर विश्वास नहीं हो रहा था, और मैं पत्रकारों से मिलने के लिए तब तक तैयार नहीं थी जब तक स्वीडन के मेरे प्रकाशक ने फोन पर इस समाचार की पुष्टि नहीं कर दी. मुझे लग रहा था कि इस पुरस्कार के सच्चे अधिकारी थियोदोर ड्रेजियर थे, जो मुझसे वरिष्ठ और ज्यादा मंजे हुए साहित्यकार थे. लेकिन तभी मुझे किसी ने बताया कि यह पुरस्कार विकासशील साहित्यकारों को प्रोत्साहन-स्वरूप दिया जाता है. ताकि उन्हें बेहतर लिखने की प्रेरणा मिल सके, और वे आर्थिक चिंताओं से मुक्त हो सकें. मैं इस पुरस्कार को पाकर वास्तव में आर्थिक चिंताओं से मुक्त हो सकी, और उससे मुझे बेहतर लिखने की प्रेरणा भी मिली."

बाद में, श्रीमती पर्ल बक के पति रिचर्ड वाल्श ने, जो एक प्रमुख प्रकाशक थे, मुझे लिखकर बताया कि नोबेल पुरस्कार स्वीकार करते समय स्वीडन में श्रीमती बक को कैसे अनुभव हुए?

"पुरस्कार-समारोह के अवसर पर श्रीमती बक ने अपने आप को भौतिकी के नोबेल-पुरस्कार-विजेता डॉक्टर एनरिको फर्मी के पास बैठ पाया. जब उनका नंबर आया, तो उनका संक्षिप्त परिचय कराया गया, और फिर उनसे कहा गया कि वे उठकर सीढ़ियों से नीचे जाकर, हॉल के फर्श पर जायें. एक क्षण पश्चात, वे राजा गुस्ताफ के सामने प्रणत-भाव से नमन कर रहीं थीं. राजा ने उनसे हाथ मिलाकर, उन्हें चमड़े के पेटी में रखा सोने का पदक प्रदान किया. उन्हें एक प्रशंसात्मक उल्लेख के अतिरिक्त, एक कागज भी दिया गया, जिसके बदले में पुरस्कार राशि मिलनेवाली थी. इसके बाद, श्रीमती पर्ल बक को उल्टे वापस लौटना था, बिना अपनी पीठ राजा को दिखाये. ऊंची ऐड़ी के जूतों और मोटे कालीन की वजह से उन्हें एक-एक कदम चलने में कठिनाई हो रही थी. जब वे लौटकर अपनी जगह पर आकर बैठ गयीं" तो दर्शकों ने हर्ष से करतल-ध्वनि की.

शोध के दौरान, मुझे दो दिलचस्प बातें और मालूम हुईं. पहली—कुछ विजेताओं को स्वर्ण-पदक के अलावा, उसकी पीतल की अनुकृति भी दी गयी थी, स्वर्ण-पदक बैंक के वॉल्ट में रखने के लिए और पीतल का पदक लोगों को दिखाने के लिए.

नट हैमसन नामक एक विजेता को नोबेल-पुरस्कार तब मिला था, जब वह फटेहाल था, और कई दिन से भूखा था.

'द प्राइज' नामक अपने उपन्यास में मैंने नोबेल पुरस्कार से संबंधित अनेक अविश्वसनीय और अकल्पनीय रहस्यों को उदघटित किया है जैसा कि मुझे आशा थी, मेरा यह उपन्यास नोबेल पुरस्कार-समिति के सदस्यों को कतई पसंद नहीं आया... □

प्रस्तुति : हरि

अमृता प्रीतम विशेषांक

कथादेश

कहानी प्रधान मासिक

आज की डाक में

प्यारे दोस्त!
तुम शायद वही हो जो रोज बुक-स्टाल पर जाकर बहुत सी पत्रिकाओं के पन्ने पलटते हो, पर कोई पत्रिका पसन्द ही नहीं आती और चुपचाप लौट आते हो?... तो अपनी मनपसन्द सामग्री के लिए मुझसे मिलो, मेरा नाम है—

कथादेश

सुलगते सवालों का ज्वालामुखी

एक प्रति – 2 रुपये
वार्षिक – 20 रुपये
आजीवन – 200 रुपये

देश-विदेशों में एजेन्टों की आवश्यकता है.

ताजा अंक (अक्तूबर, 82) में मेरे पन्नों की मुंह बोलती तस्वीरें हैं—

• किताबे इश्क का अगला सफा!
ज्ञानपीठ पुरस्कार विजेता अमृता प्रीतम से लंबी बातचीत, उनकी कविताएं, कहानी तथा एक सम्पूर्ण लघु उपन्यास.

• लोग कहते हैं खुदकशी की है!
फिल्म निर्माता, निर्देशक और शायर गुलजार की नज्में.

• चौपट राजा!
मुकद्दमे—जिसका फैसला शायद सरकारी अदालतें नहीं, आने वाला वक्त ही करेगा! यानी किस्से कचहरी के : रघुनाथ व्यास.

• खोटे सिक्कों में चांदी की खनखनी
गीत विधा में अनवादी निखार लाकर उसे नये आयाम देने वाले गीतकार रमेश रंजक से मुलाकात और उनके गीत.

• इकतारा!
फिल्म जगत के सबसे पुराने संगीतकार अनिल बिस्वास से बातचीत.

• चिड़िया!
प्राकृतिक रूप से स्वस्थ और सुंदर रहने के लिए सौंदर्य विशेषज्ञ कुसुमदत्ता की सलाह.

• मन पर पड़ी दरारें
शुभावर्मा बता रही हैं कि जब दिल बेआवाज होकर टूटने लगे तब विभिन्न परिस्थितियों में हमें क्या करना चाहिए.

• समकालीन बगावत
विद्रोही पत्रकार अरुण शौरी की खोजी संघर्ष गाथा.

• व्यंग्य – अबू अब्राहम के और भी कितना कुछ.

अपने एजेन्ट से कहें या हमें लिखें – जी-26/2, कनाट प्लेस, नई दिल्ली 110001.

अंतर्राष्ट्रीय मंच से अपने को झांकने की एक खिड़की : लेखकों, प्रकाशकों, समीक्षकों और पाठकों के बारे में चंद चुटीली बातें...

आइजक बाशेविस सिंगर ने कहा :

"हमें यह बकवास बंद करानी है!"

प्रस्तुत कर रहे हैं—कन्हैयालाल नंदन

हर पीढ़ी में कहीं एकाध प्रतिभावान के दर्शन होते हैं, पूरी की पूरी पीढ़ी प्रतिभावान नहीं हुआ करती. लेकिन चूंकि पहले प्रकाशक ही बहुत कम होते थे इसलिए इससे कोई फर्क नहीं पड़ता था. अब सैकड़ों प्रकाशक पैदा हो गये हैं और उन्हें साल में 5000 कथा-संग्रह प्रकाशित करने ही होते हैं तो फिर उन्हें प्रतिभावान मिलेंगे कहां? पूर्ति से मांग का पलड़ा हजार गुना ज्यादा है.

• सिंगर

हेइने ने एक बार कहा था जब व्याख्याता बढ़ जायें तो समझ लो कि बंटाधार होने में ज्यादा देर नहीं रह गयी. जब मैं देखता हूं कि पी. ई. एन. क्लब (कवि-निबंधकार-कथाकार संघ) की सदस्य संख्या हजार में हो गयी है तो सोचता हूं, हेइने कहां गया जो बताता कि हम किस जंगल में खो गये हैं? सारा खेल कागज को स्याही से काला करने का है. और अगर साहित्य को उद्योग बना लिया गया तो हम गये काम से. हर चीज उद्योग हो सकती है, कम से कम साहित्य और रंगमंच तो उद्योग नहीं हो सकता. मुझसे बहुतों ने कहा है कि उन्होंने अब कहानियां पढ़ना बंद कर दिया है, क्योंकि वे हजार बार बेवकूफ बन चुके, अब नहीं बनने के. मैं तो सोचा करता हूं, कहीं पाठकों में बगावत न फैल जाये, और सच, यह बगावत अब तक की सारी बगावतों से ज्याद गंभीर होगी.

कुछ रचनाकार इतने उदार होते हैं कि वे आपकी किताब पर यह फतवा दे देंगे कि वह बहुत ही बढ़िया चीज है, किताब चाहे कितनी ही कूड़ा हो. अगर खाने की चीजों और दवाइयों के बारे में इस तरह का गलत फतवा देते, तो उठा के जेल में ठूंस दिये जाते.

साहित्य को आपस में तारीफ के पुल बांधने का अखाड़ा बना लिया गया है, वह 'परस्पर प्रशंसा-क्लब' बन चुका है. और यह खतरा वहां और ज्यादा है जहां किताबें ज्यादा छापी जाती हैं. कोई ऐसी कूड़ा किताब आप बता दीजिए जिसके साथ बढ़िया किताब होने का एक फतवा न चिपका दिया गया हो. फतवेबाजों को अब बस करना चाहिए, बहुत हो गया. ऐसा तो कहीं लिखा नहीं, बाइबिल में भी नहीं, कि आप कूड़े की तारीफ झोंके, भले ही कूड़े खां आपके दोस्त हों. आप अपने पड़ोसी को प्यार कीजिए, यह तो लिखा मिलता है, लेकिन यह कहां लिखा है कि आप उसकी कूड़ा रचना को भी प्यार कीजिए!

आज होता यह है कि एक किताब निकली कि दस गवाह पैदा हो गये कि ऐसी किताब तो आज तक नहीं निकली.

अगर मैं आज दिन मोजेंज होता तो मैं 'टेन कमांडमेंट' में यह जोड़ देता कि 'अपने पड़ोसी की भी खराब रचना की तारीफ मत करना'.

मेरी मां एक कहानी सुनाया करती थीं कि एक चीनी बादशाह था जो बहुत ही कुरूप और भोंडा था. उसने आदेश निकाल दिया था कि आगे से कुरूपता को रूपवान माना जाये, यानी भोंडी चीजं ही सुंदर समझी जायेगी. पोलैंड में एक बार क्रीम की कमी पड़ गयी. 'शाबुअथ' के त्योहार का मौका था. बड़ी परेशानी थी. सो यह तय किया गया कि पानी को क्रीम समझा जायेगा. औरतें खुश. कहने लगीं, "वाह, एक शब्द से समस्या हल हो गयी!" और इस तरह हम समस्या हल कर रहे हैं साहित्य की, एक शब्द में हम कूड़े को कुंदन बनाने में लगे हुए हैं.

एक किताब की तारीफ के लिए हजार कारण ढूंढ लिये जाते हैं. कोई समीक्षक उसके आशावाद को बल्लियों उछालेगा, कोई उसके निराशावादी दृष्टिकोण में महानता के दर्शन करेगा, एक उसकी अश्लीलता को बहादुरी का दर्जा देकर ऊंचा उठायेगा, दूसरा उसी को अश्लीलता से दूर रहने के लिए सराहेगा, लेकिन शायद ही कोई समीक्षक मिलेगा जो यह कहेगा कि किताब कूड़ा है.

मैं खुलेआम कहना चाहता हूं कि ये जो बड़े-बड़े पुरस्कार हर साल बरसते हैं ये बंडलबाजों पर बरसते हैं, लेखकों पर नहीं. (मैं अपने को इससे अलग नहीं कर रहा) और साहित्यिक पत्रिकाओं में जो तारीफ के पुल बांधे जाते हैं वे नकली और झूठे होते हैं.

जब रूस में यह कहा जाता था कि 'स्टालिन का तेज सूरज से भी ज्यादा

हैं' तो हम उसका मजाक उड़ाते थे और हम साहित्य में आज वही कर रहे हैं. हम पानी को क्रीम बना रहे हैं, एक त्योहार के लिए नहीं, बीसियों सालों के लिए. अगर हमें दुकानदार बासी ब्रेड या खराब 'चीज' या फटा दूध दे देता है तो हम हाय-पेंगला मचा देते हैं, लेकिन हमारे साहित्यिक दूकानदार अपनी सारी जिम्मेदारियां भूलकर हमें गलत चीज थमा देते हैं और हम कुछ नहीं करते!

एक कहावत है कि 'जो बुरे की वकालत करते हैं, वे अच्छे पर आरोप लगाते हैं'. हर झूठ इंसानियत के लिए खतरा है और अगर झूठ फैलता जाता है, भले ही वह साहित्यिक झूठ ही क्यों न हो, तो जादू की तरह लाखों उस पर भरोसा करने वाले हो जाते हैं. यह खतरनाक चीज है. जिंदगी सच्चे भरोसे पर चलती है, झूठे पर नहीं.

मैं नहीं समझता कि आप उस देश में स्वतंत्र रह सकते हैं जहां गंदा और गलीज साहित्य लिखा और बेचा जाता हो. आप मामूली से झूठ से शुरू करते हैं और फिर वह बढ़ते-बढ़ते सबको अपने में समेट लेता है. समीक्षा, असल में, समीक्षा नहीं, मुकद्दमे की सुनवायी की तरह होती है, जिसमें आप किसी आदमी को या तो सजा सुनाते हैं या उसे बरी कर देते हैं. उसी तरह समीक्षा को या तो गंभीरता से लिया जाना चाहिए या फिर बिल्कुल उसकी परवाह नहीं की

अगर दुकानदार हमें बासी ब्रेड या खराब 'चीज' या फटा दूध दे देता है तो हम हाय-पेंगला मचा देते हैं, लेकिन हमारे साहित्यिक दूकानदार अपनी सारी जिम्मेदारियां भूलकर हमें गलत चीज थमा देते हैं तो हम कुछ नहीं करते.

जानी चाहिए. किसी भी किताब की तारीफ बिना उसके लेखक से उसके कुछ अंश सुने या उसके बारे में बात किये, और फिर उस पर एकाध और उचित व्यक्ति की राय लिये बिना नहीं की जानी चाहिए.

किसी समीक्षक को साल में पचास या सौ किताबें पढ़ने को मजबूर करना भी ज्यादती है. आपको इतनी किताबें पढ़ने के लिए मजबूर किया जायेगा तो आप पढ़ सकते हैं, उनका आस्वादन नहीं कर सकते. मुझे याद है कि रूस में पांच मिनट में आदमी का मुकद्दमा सुनकर फैसला सुना दिया जाता था तो मैं सिर से पांव तक सिहर उठता था—तुम प्रतिक्रियावादी हो? साइबेरिया में सड़ो. और तुम आधे प्रतिक्रियावादी हो? जेल में जन्म बिताओ. अगर आप दस, बारह पंक्तियों में किसी लेखक की छुट्टी करना चाहते हैं तो इसका

साहित्य को आपस में तारीफ के पुल बांधने का अखाड़ा बना लिया गया है, वह 'परस्पर प्रशंसा-क्लब' बन चुका है. और यह खतरा वहां और ज्यादा है जहां किताबें ज्यादा छपती हैं.

सीधा मतलब हुआ कि आपने पांच मिनट के मुकद्दमे में लेखक को साइबेरिया भेज दिया. आपने पांच सौ लेखकों को लाइन में खड़ा किया और फैसला दे दिया. तो इसका मतलब है कि गलती कहीं बहुत गहरे हो रही है.

हम अपने देश में आज भी किसी आदमी को सजा देने या बरी करने के पहले सैंकड़ों पन्ने रंगते हैं, उसकी छान-बीन करते हैं, लेकिन समीक्षकों में किसी लेखक की छुट्टी करने का खेल कभी-कभी तो इस काबिल भी नहीं समझता जाता कि उसके बारे में ज्यादा कागज खराब किया जाये. और अगर कागज खराब करने के बराबर भी उस लेखक का योगदान नहीं है तो फिर समीक्षा की ही क्यों जाये?

गलत समीक्षकों को समीक्षा करना बंद कर देना चाहिए और गलत लेखकों को लिखना बंद कर देना चाहिए. उन्हें घास खोदना चाहिए या कोई फायदेमंद धंधा करना चाहिए, तमाम धंधे हैं. अगर मैं सही लेखक न होता तो मैं कोई ऐसा धंधा करता जो साफ-सुथरा होता. मैं ठेलिया चलाता लेकिन सलीके से चलाता. एक जगह से दूसरी जगह फर्नीचर पहुंचाने का काम करता, बिना फर्नीचर तोड़े. इस देश में कोई एक धंधा है करने के लिए!

मैंने अक्सर देखा है, लोग अखबार फेंक देते हैं लेकिन उनका साहित्यिक संस्करण वाला भाग रख लेते हैं. लोगों को उम्मीद रहती है कि उसमें कुछ खास पढ़ने को मिलेगा. और उनकी इस उम्मीद पर हर हफ्ते पानी फेरते जाना पाप है, सीधा पाप!

अगर मुझसे किसी अखबार के मालिक ने पूछा होता कि क्या किया जाना चाहिए, तो मैं उसे सलाह देता कि गलत साहित्य छाप कर पढ़ाने के बजाय बेहतर हो कि साहित्यिक पत्रिका छापो ही नहीं. अगर आप पत्रिकाएं पढ़ते हैं तो आपने देखा होगा कि इन पत्रिकाओं में हर हफ्ते एक न एक नयी प्रतिमा के प्रादुर्भाव की दुहाई दी जाती है और साल के अंत में यही पत्रिकाएं यह भी छापती हैं कि इस वर्ष साहित्य के क्षेत्र में कोई उल्लेखनीय बात नहीं हुई. क्या समझा जाये—समीक्षकों की याददाश्त को या तो लकवा मार गया या फिर जो कुछ वे पहले कह चुके हैं उसे लापरवाही से बेसोचे-समझे कहते रहते हैं.

यह महज संयोग ही नहीं है कि तमाम पत्रिकाएं राजनीतिक चिंतन की नाव पर पैर रखती जा रही हैं, साहित्य से कतराने लगी हैं. उसका मुख्य कारण है कि साहित्य के प्रति उनकी वितृष्णा का पारा बहुत ऊंचा जा चुका है. अभी थोड़े दिन पहले की सोचता हूं कि साहित्य राजनीतिक दृष्टिकोण के साथ अपनी पटरी बैठाकर नहीं चलता था, अपने-आप पर भरोसा अच्छे साहित्यकार का सबसे बड़ा भरोसा था. अब साहित्य में राजनीति की घुसपैठ ज्यादा से ज्यादा-तर होती जा रही है और घटिया लेखक को चढ़ने के लिए दूसरों के कंधे मिल जाते हैं. सोवियत रूस में राज-नीतिक नेताओं की अनुमति के बिना

कुछ भी प्रकाशित नहीं हो सकता. और अब अमरीका में हम केंद्रीय समितियां पैदा कर रहे हैं. ऐसी भी स्थिति आ सकती है जब किसी रचनाकार के साहित्यिक मूल्यांकन के लिए उसकी राजनीतिक चेतना और उसकी वफा-दारी सबसे बड़ा मापदंड बन जाये किसी साहित्यिक को इस आधार पर नहीं जांचा परखा जाना चाहिए कि वह प्रगति का हामी है या प्रतिरोधी,

हमें साहित्य में भी 'संतति निरोध' का पालन करना होगा. हमें मिट्टी के पुतले पैदा न करने की चिंता के साथ-साथ मानसपुत्रों की पैदाइश-परवरिश की भी बराबर चिंता करनी होगी.

वह दक्षिणपंथी है या वामपंथी. जोला इसलिए घटिया लेखक नहीं हो जायेगा कि वह वामपंथी था या शैट्यू ब्रायंड इसलिए घटिया नहीं हो जायेगा कि वह दक्षिणपंथ का पक्षधर था. अगर साहित्य जान्सन और निक्सन से जूझने में उलझने लगा तो हो गया कबाड़ा, समझ लो साहित्य की बधिया बैठने वाली है.

प्रकाशकों को केवल एक बात से वास्ता रखना चाहिए—अच्छी पुस्तकों का प्रकाशन करें. अगर उन्हें अच्छा कथा-साहित्य नहीं मिलता, तो विज्ञान की पुस्तकें प्रकाशित करें. प्रकाशन का यह ठेका नहीं कि वह किसी घटिया लेखक की किताबें छापे या पाठकों का यह ठेका नहीं है कि वे घटिया लेखकों को पढ़-पढ़कर बोर हों. खोखली किताबें छाप-छापकर आप साहित्य का विकास नहीं कर सकते.

हमें साहित्य में भी 'संतति निरोध' का पालन करना होगा. हमें मिट्टी के पुतले पैदा न करने की चिंता के साथ-साथ मानसपुत्रों की पैदाइश-परवरिश की भी बराबर चिंता करनी होगी.

हमारे पास एक काफ्का था लेकिन अब हमारे पास हजारहां नकलची हैं जो यह समझते हैं कि अगर आप ऊल-जलूल लिख मारें तो बस काफ्का हो गये. या चेतना की अप्रतिहित धारा बहायी और जेम्स जायस बन गये.

पहले एक बात साफ रहती थी कि लेखक जानता था कि उसे कहानी कहना है, लेकिन अब तो हजारों लेखक हैं जिन्हें कहानी क्या होती है इसकी आज तक तमीज नहीं पैदा हो सकी वे प्रतीकों के पैबंद लगाकर नामवरी का बिल्ला चिपका लेना चाहते हैं. यह प्रवृत्ति साहित्य को विकास नहीं विनाश के रास्ते ढकेल रही है.

चूंकि इस अधुनातम साहित्य में जीवन की गहराइयों में उतरने का दम नहीं होता, इसलिए वह व्याख्याओं की गहराइयों में गोते लगाता है, समाज-शास्त्र की डोरी थामता है, छद्म मनोविज्ञान का नीबू निचोड़ता है. अरे, अगर होमर ने अपने युग के मनोविज्ञान की नब्ज पर इलियड और ओडिसी लिखा होता तो आज हम उन्हें पढ़ना तो दूर, आंख उठाकर भी न देखते. हुआ यह कि होमर ने हमें कहानी दी और उसका अर्थ खोजने का काम दूसरों पर छोड़ दिया.

मेरी पीढ़ी कविता पर पाली-पोसी गयी, अब आज के जमाने में देखता हूं कविता की सैंकड़ों किताबें निकल रही हैं जो कविता नहीं, काव्य-पहेली होती हैं. जब आप यह जानने की कोशिश करते हैं कि यह पहेली है क्या बला, तो पता चलता है वह बेकार की पहेली है जो केवल मौलिकता के तकाजे पर लिखी गयी है, महज मौलिक कहलाने के लिए.

इन्हीं घटिया लेखकों में से बहुत सारे हैं जो साहित्य के प्राध्यापक बन गये हैं और कालेजों में नयी प्रतिभाओं को साहित्यसर्जन के सबक सिखाते हैं. भला है कोई जो इन प्राध्यापकों की 'शोक सुखांतकी' लिख सके?

अक्सर लोग मुझे अपनी पांडुलिपि पकड़ा देते हैं और मैं हैरान रह जाता हूं कि लोग कितना घटिया लिख रहे हैं. मैं पूछ बैठता हूं, "तुम्हारा खर्चा-पानी कैसे निकलता है?" वह कहता है, "मैं साहित्य का प्रोफेसर हूं! . . ."

अक्सर मुझे लोग अपनी पांडुलिपि पकड़ा देते हैं और मैं हैरान रह जाता कि लोग कितना घटिया लिख रहे हैं. मैं पूछ बैठता हूं, "तुम्हारा खर्चा-पानी कैसे निकलता है?"

वह कहता है, "मै साहित्य का प्रोफेसर हूं". . . ". . . यानी यूनि-वर्सिटियां साहित्य को यों गंदा कर रही हैं.

पुराने समय में साहित्य पढ़ने वाले विद्यार्थी कम होते थे और उन्हें इच्छा के विरुद्ध कोई पुस्तक पढ़ने को बाध्य नहीं किया जाता था. अगर आप कोई पुस्तक नहीं पढ़ना चाहते, न पढ़िए. लेकिन अब लेखक बनने की ख्वाहिश ऐसा जोर मारे रहती है कि हजारों लड़के साहित्य का विषय लेते हैं और वे इस विश्वास के आदी बना दिये जाते हैं कि किताब चाहे जितनी घटिया और उबाने वाली हो, पढ़े बिना निजात तो मिलती नहीं.

मैं तो उस दिन के इंतजार में हूं जब कोई महान आध्यात्मिक चेतना वाला आदमी मेज पर मुक्का जमाकर तिलमिलाकर कहेगा : "बंद करो यह बकवास, बहुत हो गया." कभी-कभी मन में आया भी कि मैं क्यों न बन जाऊं यह बगावत का झंडा थाम लेने वाला, लेकिन मेरी आवाज सुनी जायेगी इसकी उम्मीद बहुत कम है. लेकिन मैंने सोच लिया है कि मैं अपना योगदान इस आहुति में जोड़ूंगा जरूर, भले ही वह नगण्य रह जाये.

मैं यह अच्छी तरह जानता हूं कि हजारों लोगों के मन में यह बेचैनी कुलबुला रही है, लेकिन वे अपना बोल खोलने की हिम्मत नहीं करते.

लोग अंतर्मन में यह महसूस करते हैं कि यह खेला है खतरनाक, लेकिन फिर भी कोई नहीं है जो हिम्मत करके आगे आ सके और कह सके : 'हमें यह बकवास बंद करानी है.' □

नोबेल पुरस्कार को अनुचित दबावों से प्रभावित नहीं किया जा सकता !

▣ चंद्रगुप्त विद्यालंकार

नोबेल पुरस्कार वितरण समारोह के चश्मदीद गवाह, हिंदी के वरिष्ठ कथाकार श्री चंद्रगुप्त विद्यालंकार ने नोबेल पुरस्कार फाउंडेशन के वरिष्ठ सदस्य डॉ. पी. के साथ बातचीत करके जो जाना और समारोह में जो देखा, उसका एक लेखा-जोखा...

'ओपेरा बेरन' स्टॉकहोम का एक विशिष्ट उपाहार गृह है, जिसे स्वीडिश लेखकों और बुद्धिजीवियों ने अपनाया हुआ है. दो दिसंबर को नोबेल-पुरस्कार फाउंडेशन के एक प्रमुख सदस्य डाक्टर पी. ने उस उपाहार गृह में मुझे मध्याह्न भोजन के लिए निमंत्रित किया था. स्टॉकहोम में उन दिनों 11 बजे प्रातः सूर्योदय होता है और 3 बजे से पहले ही सूर्यास्त. सूर्य निकल आया है, यह भी आप जानते भर हैं. नगर भर में प्रायः किसी को दिखाई नहीं देता—एक किनारे से आकाश में कुछ ऊंचाई पर पहुंचकर, थोड़ी ही देर के बाद, बड़ी-बड़ी इमारतों के पीछे वह अस्त हो जाता है.

सारी रात बरफ गिरती रही थी. पर विशाल 'ओपेरा बेरन' के सभी भोजन कक्ष अत्यंत आनंददायक उष्मा से पूर्ण थे. उतना ही आकर्षक वहां का वातावरण भी था. 10 दिसंबर को नोबेल-पुरस्कार वितरण समारोह था और जैसे पूरा स्टॉकहोम इन दिनों उस समारोह की तैयारी में व्यस्त था. यूरोप भर से बहुत बड़ी संख्या में बुद्धिजीवी और पत्रकार इस अवसर पर आ रहे थे.

संभवतः अपने मेजबान से मेरी बातचीत नोबेल पुरस्कार के संबंध में ही शुरू हुई. मैंने उनसे कहा, "मैं अल्फ्रेड बर्नहार्ड की सर्वोच्च सूझ-बूझ

● अल्फ्रेड नोबेल की मूर्ति

का कायल और प्रशंसक हूं. वह अपने लिए एक ऐसा शानदार स्मारक छोड़ गये हैं, जिसके साथ मानव जाति की प्रगति सीधे तौर से जुड़ गयी है. उनका नाम मानव मात्र के लिए सर्वोच्च सम्मान का प्रतीक बन गया है."

डाक्टर पी. ने कहा, "यह एक सच्चाई है कि बीसवीं सदी में मानव ज्ञान-विज्ञान को अधिकाधिक विकसित करने में जितनी महत्त्वपूर्ण भूमिका नोबेल पुरस्कार ने निभायी है, उसकी तुलना नहीं की जा सकती. संसार के बीसियों श्रेष्ठतम वैज्ञानिकों को यह पुरस्कार नये से नये आविष्कार करने की प्रेरणा दे रहा है."

इसी तरह की कुछ बातचीत के बाद मैंने उनसे कहा, "सन 1913 में साहित्य का नोबेल पुरस्कार भारत के महाकवि रवींद्रनाथ ठाकुर को दिया गया था. उसके बाद 69 बरस बीत जाने पर भी भारत को यह सम्मान प्राप्त नहीं हुआ. रवींद्रनाथ ठाकुर के बाद आज भारत में साहित्यकारों की तीसरी पीढ़ी साहित्य सृजन कर रही है."

कुछ क्षणों की चुप्पी के बाद हल्का-सा मुस्कराकर उन्होंने कहा, "इस तथ्य की ओर हमारा ध्यान कई बार गया है. हमें यह भी मालूम है कि भारत में प्रतिभा की कमी नहीं है. विशेषतः स्वाधीन भारत प्रत्येक क्षेत्र में सम्मान का स्थान प्राप्त करने के लिए गंभीर प्रयत्न कर रहा है. हमें खुशी होगी, यदि किसी भारतीय लेखक को यह सम्मान प्राप्त हो."

इतना कहकर डाक्टर पी. चुप हो गये. पर मैंने भी जब कोई सवाल नहीं किया, तो वह समझ गये कि उनका उत्तर मेरे लिए अभी अधूरा है. उन्होंने मुझसे पूछा, "साहित्य के नोबेल पुरस्कार संबंधी कायदे-कानूनों से तो आप परिचित ही होंगे?"

मैंने कहा, "जी हां, मैंने उनका अध्ययन किया है. अंग्रेजी को छोड़कर आप किसी भी अन्य भारतीय भाषा की कृति पर यह पुरस्कार नहीं दे सकते, जब तक उस कृति का अनुवाद किसी ऐसी भाषा में न हो जाये जो नोबेल साहित्य-पुरस्कार के लिए स्वीकृत है."

"तो अंग्रेजी भी अभी तक एक भारतीय भाषा ही है न?"

संविधान के अनुसार अब भी भारत की दो संपर्क भाषाएं हैं, हिंदी और अंग्रेजी."

"स्वीडन में अंग्रेजी हर एक को पढ़नी होती है. पूरी नयी स्वीड-पीढ़ी अंग्रेजी जानती है. मैं भी अंग्रेजी साहित्य दिलचस्पी से पढ़ता हूं. भारत के कुछ अंग्रेजी लेखकों की रचनाओं से मैं परिचित हूं. उन्हीं में से कुछ का अनुवाद स्वीडी में भी हुआ है. भारत में तो अंग्रेजी का स्तर बहुत ऊंचा रहा है. आप लोगों को भारतीय भाषाओं की

श्रेष्ठ रचनाओं का अंग्रेजी में अनुवाद करवाने में अधिक दिक्कत नहीं होनी चाहिए. भारत में अब अंग्रेजी जानने-वालों की संख्या कितनी है?"

"आज भी करीब डेढ़ करोड़ भारतीय अंग्रेजी जानते हैं. आज भी वहां अंग्रेजी पाठकों और पत्रों की संख्या किसी भी एक भारतीय भाषा के पत्रों और पाठकों से अधिक है."

"भारतीय भाषाओं में किस स्तर का साहित्य लिखा जा रहा है?"

"जैसा कि आपको ज्ञात है, मैं स्वयं एक हिंदी लेखक हूं. सभी भारतीय भाषाओं का एक ही स्तर नहीं है. पर सभी, यानी पंद्रहों भारतीय भाषाओं में आज अच्छे स्तर की रचनाएं लिखी जा रही हैं. यह बात मैं विश्व स्तर को ध्यान में रखकर कह रहा हूं."

"नोबेल पुरस्कार फाउंडेशन की सीमाओं से आप परिचित हैं. हम अल्फ्रेड बर्नहार्ड नोबेल की वसीयत से किसी भी सूरत में बाहर नहीं जा सकते. साहित्य के नोबेल पुरस्कार के लिए उन्होंने अपनी वसीयत में विश्व की जो भाषाएं निश्चित कर दी हैं उनके बाहर यह पुरस्कार नहीं दिया जा सकता. इसका एकमात्र उपाय यही है कि श्रेष्ठ नये भारतीय साहित्य का पुरस्कार के लिए परिगणित भाषाओं में से किसी में भी अनुवाद किया जाये."

मैंने कहा, "मैं आपको यह भी विश्वास दिलवाना चाहता हूं कि भारत का श्रेष्ठतम साहित्य आज भारतीय भाषाओं में ही लिखा जा रहा है, अंग्रेजी में अपेक्षाकृत बहुत कम."

"आपकी बात ठीक हो सकती है. आखिर मूल 'गीतांजलि' भी बंगला में लिखी गयी थी. उसका अनुवाद भी निस्संदेह बहुत अच्छा हुआ होगा, जो विश्व भर में सम्मानित हुआ. भारत में अनुवाद का वह सिलसिला क्यों जारी नहीं रहा? आजाद भारत में तो यह कार्य और भी बड़े पैमाने पर तथा और भी अधिक सावधानी के साथ होना चाहिए था. रूस में 15 से भी अधिक राष्ट्रीय भाषाएं हैं, पर वहां अनुवाद की व्यवस्था अत्यंत श्रेष्ठ दर्जे की है. विश्व की अधिकांश भाषाओं से रूसी

स्टॉकहोम स्थित नोबेल हाउस, नोबेल फाउंडेशन का मुख्यालय

बहुत अच्छा अनुवाद अपनी सभी भाषाओं में कर सकते हैं. आपके यहां ऐसा क्यों नहीं हुआ? आपकी परिस्थितियां भी तो वैसी ही हैं."

"भारत की सभी भाषाओं से एक दूसरे में अनुवाद की तो कम-अधिक व्यवस्था है पर विश्व की अन्य भाषाओं में नये भारतीय साहित्य के श्रेष्ठ अनुवाद की व्यवस्था अभी तक संतोषजनक नहीं है. मैं मानता हूं कि हमें इस ओर तत्काल ध्यान देना चाहिए."

"जहां तक नोबेल पुरस्कार का संबंध है, उसका निर्णय अंग्रेज नहीं करते, हम स्वीड करते हैं. हमारा अंग्रेजी का स्तर शायद भारतीय अंग्रेजी के स्तर से भी कहीं नीचे है. कृति यदि सचमुच वजनदार होगी, तो वह हमें अवश्य प्रभावित करेगी. इस तरफ भी भारतीय लेखकों और प्रकाशकों का ध्यान जाना चाहिए."

और भी बहुत-सी बातों के बाद मेरे मेजबान ने मुझे बताया कि 'नोबेल पुरस्कार फाउंडेशन' कितनी सूझ-बूझ, कितनी मेहनत और कितनी ईमानदारी से अपना उत्तरदायित्व निभा रहा है. कितने बड़े-बड़े राजनीतिक दबावों की भी उसने सदा नितांत उपेक्षा की है. अब तक विश्व की सभी छोटी-बड़ी ताकतें यह जान गयी हैं कि नोबेल फाउंडेशन को किसी भी अनुचित उपाय से प्रभावित नहीं किया जा सकता.

उन्होंने यह भी स्वीकार किया कि विश्व के कुछ महानतम लेखकों को यह पुरस्कार नहीं दिया जा सका. उदाहरण के लिए अंतोन चेखव और ताल्स्तोय के नाम उन्होंने लिये. और तो और स्वीडन के महान लेखक विल्हम मोबर्ग को भी नोबेल साहित्य पुरस्कार नहीं दिया जा सका. इसके कारण भी उन्होंने विस्तार से बताये.

▣

अल्फ्रेड बर्नहार्ड नोबेल का जन्म स्वीडन में सन 1833 में हुआ था और देहांत 1896 में. वह एक बहुत बड़े वैज्ञानिक थे. डाइनामाइट (अग्निस्फोट) का अविष्कार उन्होंने ही किया था. डाइनामाइट ने मानव के हाथ में एक बहुत बड़ी ऊर्जा दे दी थी. संहार की भी और नव-निर्माण की भी. बहुत बड़ी रकम से उन्होंने नोबेल पुरस्कार फाउंडेशन की स्थापना की, जिसे व्यावहारिक रूप देने में उनके देहावसान के बाद, चार वर्ष लग गये. सन 1901 से ये पुरस्कार दिये जाने लगे. यानी बीसवीं सदी के प्रारंभ से.

नोबेल ने 5 पुरस्कारों की व्यवस्था की थी. भौतिकी, रसायन, चिकित्सा, साहित्य और शांति. सन 1905 तक नार्वे भी स्वीडन का ही एक प्रदेश था. 1905 में स्वीडन ने बिना किसी झगड़े के नार्वे को स्वाधीन कर दिया और मित्रता के उपहारस्वरूप 'विश्व शांति' का पुरस्कार देने का कार्य नार्वे की अधिकृत पार्लियामेंट को दे दिया. स्वाधीन नार्वे इसके लिए इच्छुक था. सन 1968 में स्वीडन के सबसे बड़े बैंक (रीशे बैंक) ने अपनी तीसरी शताब्दी के उपलक्ष्य में 'नोबेल पुरस्कार फाउंडेशन' को इतना धन एक साथ दे दिया, जिसके ब्याज से प्रति वर्ष 'अर्थ-शास्त्र-विज्ञान' के लिए उतनी ही रकम विश्व के किसी प्रमुख अर्थशास्त्री को दी जा सके. बैंक को अब इस संबंध में कोई अधिकार नहीं है. यह पुरस्कार 1968 से दिया जाने लगा है.

यह समारोह प्रति वर्ष नोबेल साहब के जन्म दिन (10 दिसंबर) पर स्टॉकहोम के विश्व प्रसिद्ध सुंदरतम

अल्फ्रेड नोबेल की वसीयत

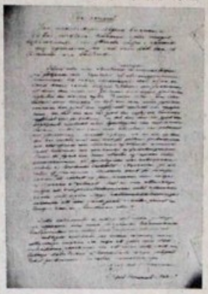

अधोहस्ताक्षरी मैं, अल्फ्रेड नोबेल, काफी सोच-विचार के बाद, अपनी मौत के बाद अपनी संपत्ति की आखिरी वसीयत इस प्रकार करता हूं. . ." (अपने संबंधियों और निजी लोगों को दिये गये अंश की बात छोड़ने के बाद आलेख यूं है.)

"मेरी सारी संपत्ति को इस प्रकार इस्तेमाल में लाया जाये : मेरी वसीयत के प्रबंधकर्त्ता पूंजी को सुरक्षित सिक्यूरिटी में लगा देंगे और एक कोष का निर्माण करेंगे, जिसके सूद से प्रति वर्ष, उसके पिछले वर्ष जिस किसी मनुष्य ने भी पूरी मानवता की भलाई के लिए काम किये हों, उसे पुरस्कार दिया जाये. इस सूद की राशि को पांच बराबर भागों में बांटा जायेगा—एक भाग उस व्यक्ति को दिया जायेगा, जिसने भौतिक-शास्त्र में सर्वाधिक महत्वपूर्ण अनुसंधान या आविष्कार किया हो; एक भाग उस व्यक्ति को दिया जायेगा, जिसने रसायन-शास्त्र में सर्वाधिक महत्वपूर्ण आविष्कार किया हो; एक भाग उस व्यक्ति को, जिसने दवा या शरीर-क्रिया विज्ञान के क्षेत्र में सर्वाधिक महत्वपूर्ण खोज की हो; एक भाग उस व्यक्ति को जिसने साहित्य के क्षेत्र में आदर्शवादी विचार के सर्वाधिक महत्वपूर्ण कार्य किये हों, और एक भाग उस व्यक्ति को जिसने राष्ट्रों के बीच भाई-चारे को बढ़ाया हो. भौतिक और रसायन-शास्त्र के पुरस्कार स्वीडन की विज्ञान अकादमी, दवा तथा शरीर क्रिया विज्ञान का पुरस्कार स्टॉकहोम स्थित कैरोलाइन इंस्टीट्यूट तथा साहित्य के लिए पुरस्कार स्टॉकहोम की अकादमी देगी और शांति के लिए पुरस्कार नार्वे की संसद द्वारा चुने गये पांच व्यक्तियों की कमेटी देगी. यह मेरी इच्छा है कि पुरस्कार के लिए चयन के वक्त उम्मीदवारों की राष्ट्रीयता को जरा भी महत्व नहीं दिया जाये, अपितु उसकी योग्यता ही मानदंड बने, चाहे वह स्कैंडनेवियाई हो या न हो." □

● प्रस्तुति : पंकज प्रसून

कनसर्ट हॉल में होता है. स्वीडन के राजा इनाम देते हैं. उनके दाहिनी ओर विभिन्न नोबेल पुरस्कार समितियों के सदस्य क्रमशः ऊंची होती हुई मखमल-मढ़ी कुर्सियों पर बैठते हैं. सामने पुरस्कार विजेता और बायीं ओर बड़े हॉल में विभिन्न देशों के राजदूत तथा अन्य सम्मानित अतिथि.

इस विशाल कनसर्ट हॉल में क्रमशः एक दूसरे के ऊपर पांच कक्ष हैं. इन सबमें कायदे के अनुसार निम्नांकित मेहमान बिठाये जाते हैं. मुझे बादशाह के ठीक पीछे, कुछ ऊंचाई पर बैठे सम्मानित अभ्यागतों में स्थान दिया गया था. तीन-चार फुट की दूरी से मैं पूरा समारोह देख पाया.

सांझ को नगर के विशाल म्युनिसिपल भवन में एक बहुत बड़ा भोज हुआ. यह भोज घंटों तक चला. संगीत और नृत्य के साथ भोजन में विभिन्न ड्रेस पहन जाना आवश्यक है. ड्रेस किराये पर मिल जाती हैं. नोबेल पुरस्कार विजेता तो उस भोज में बोले ही, डैनीके ने अभ्यागतों को खूब हंसाया. मुख्य मेजबान स्वीडन के प्रधानमंत्री थे. मैं सभी समारोहों में निमंत्रित था.

सभी पुरस्कार विजेता सपरिवार निमंत्रित किये जाते हैं. उनके लिए स्टॉकहोम के सबसे अच्छे होटलों में ठहरने की अत्यंत आरामदेह व्यवस्था होती है. प्रत्येक पुरस्कार विजेता को स्वीडिश सरकार की ओर से पूरा स्टाफ मिलता है. उनका प्रेस सेक्रेटरी उनके इंटरव्यूज की व्यवस्था करता है.

आजकल एक नोबेल पुरस्कार 2,10,000 डालर से कुछ अधिक है यानी 20 लाख रुपयों से कुछ अधिक. जैसा कि पहले कहा जा चुका है, शांति पुरस्कार का निश्चय नार्वे की पालिया-मेंट के हाथ में है, जो एक विशेष समिति बनाकर पुरस्कार विजेता का चुनाव करती है. यह अकेला पुरस्कार है, जो संस्थाओं को भी दिया गया है और जिसके बारे में भारी मतभेद संसार भर में व्यक्त किये गये हैं. महात्मा गांधी और जवाहरलाल नेहरू जैसे शांति के अग्रदूतों को यह पुरस्कार नहीं दिया गया और किसिजर जैसे कूटनीतिक व्यक्ति को, 1973 में यह पुरस्कार दिया गया था. शेष पांचों पुरस्कारों की व्यवस्था भी स्वीडन बड़ी समझदारी और उत्तर-दायित्व के साथ कर रहा है. भौतिकी और रसायन के पुरस्कारों का निर्णय 'स्वीडिश अकादेमी ऑव साइंस' करती है. चिकित्सा का स्टॉकहोम की 'कैरो-लाइन मैडिकल इन्स्टीच्यूट' और अर्थ-शास्त्र का, फाउंडेशन द्वारा नियुक्त एक बोर्ड.

साहित्य-पुरस्कार विजेता का सुझाव स्टॉकहोम की साहित्य-अकादेमी देती है. साहित्य के नोबेल पुरस्कार विजेता तथा कुछ स्वीकृत साहित्य-संस्थाएं (जो कई देशों में हैं) इस पुरस्कार के लिए नाम प्रस्तावित कर सकती हैं. अंतिम निर्णय फाउंडेशन के हाथ में है.

पिछले 25 बरसों में सिर्फ एक ही भारतीय साहित्यकार का नाम नोबेल पुरस्कार के लिए प्रस्तावित हुआ है. वह हैं आर. के. नारायण. □

अनोखी प्रार्थना

● अनातोले फ्रांस

वह बाजीगर था. बारनेबी उसका नाम था वह गांवों-शहरों में घूमता हुआ अपने खेल-करतब दिखाता और जो कुछ भी मिलता, उससे पेट भरकर संतोष कर लेता.

वह कई तरह के खेल दिखाता. कभी वह सिर के बल खड़ा होकर चलता तो कभी छह-छह गोले दोनों हाथों से इस तेजी से उछालता कि दर्शक देख भी न पाते कि गोलों को उसके हाथों ने कब छुआ है. फिर, कभी वह सिर को घुटनों तक झुकाकर बारह छुरियों की तीखी धार पर नाचता. देखने-वालों के दिल कांप उठते. खेल खत्म होने पर बेतहाशा तालियां बजने लगतीं.

दुनिया में उसका कोई नहीं था—न माता-पिता, न भाई-बहन, न बीवी-बच्चे. बचपन में ही माता-पिता के मर जाने पर वह एक जादूगर का सहायक बन गया था. और उससे उसने कई खेल-करतब सीखे थे.

वह बहुत धार्मिक व्यक्ति था और रोज गिरजे में जाता. वहां प्रार्थना करता हुआ वह मन ही मन कहता : "मां मरियम, मुझ पर अपनी दया रखना, ताकि मैं कोई पाप न करूं. एक दया और करना, अगले जन्म में मुझे बहुत अमीर बनाना. . ."

एक दिन शाम के समय आसमान में बादल छाये हुए थे. बारनेबी ने खेल दिखाकर अपना सामान पुरानी दरी में लपेटा और तेजी से चल पड़ा. रास्ते में गिरजे के पादरी से मुलाकात होने पर उसने प्रणाम किया.

"अरे तुम!" पादरी ने कहा, "यह हरे कपड़े क्यों पहने हुए हैं?"

"मैं बाजीगर हूं न. खेल दिखाकर आ रहा हूं."

मां मरियम को हर पादरी अपनी-अपनी कला से खुश कर रहा था पर बारनेबी तो बाजीगर था, वह कोई कला जानता ही नहीं था. एक दिन जब उसने अपनी एकमात्र कला का प्रदर्शन मां मरियम के सामने किया तो...?

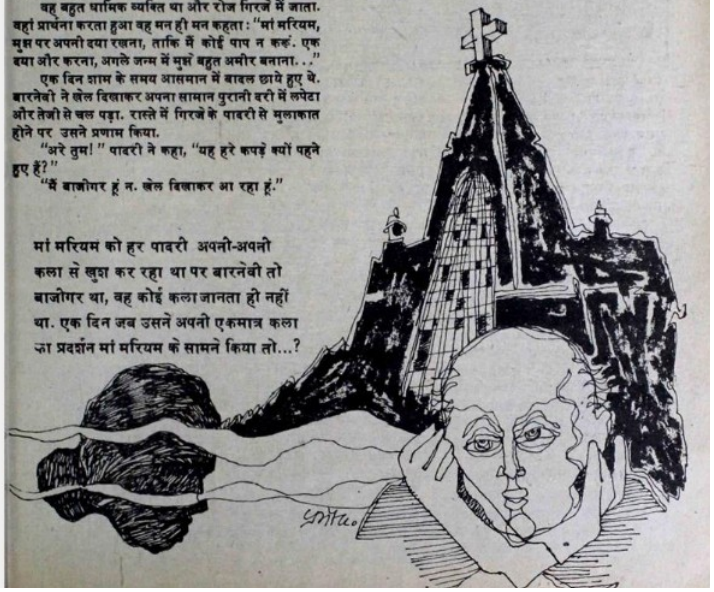

आदर्श रचनाएं

■ हेनरिख शूक

(नोबेल पुरस्कार समिति सदस्य के अनातोले फ्रांस की रचनाओं के बारे में विचार)

यह सच है कि वह नास्तिक हैं और वे लोग, जो कि इतने भाग्यशाली हैं कि उन्होंने जीवन की पहेली को बूझ लिया है, इसको त्रुटि समझ सकते हैं, क्योंकि यह एक ऐसी चीज है कि जो नोबेल फाउंडेशन के आदर्शों की रक्षा करने के कर्तव्य से टकराती है. परंतु अनातोले फ्रांस कभी ऐसे कर्तव्यहीन शक्की नहीं रहे हैं, जिन्होंने न्याय तथा मानवता को पैरों तले कुचलते हुए देखा हो.

...जब उनकी संपूर्ण रचनाओं पर नजर डाली जाती है, तब उनकी साहित्य-रचनाओं को आदर्श रचनाएं कहना ही पड़ेगा, बशर्ते कि हम इस शब्द के अर्थ को किसी तरह की धार्मिक वर्जनाओं या सीमाओं के पीछे न छिपा दें. □

"तुम्हारे और कौन-कौन हैं?"

"कोई नहीं. बस, अकेला ही हूं."

"इससे तो अच्छा है कि गिरजे में आकर काम करो. वहीं खाओ-पिओ और वहीं रहो.

बारनेबी को यह सुझाव अच्छा लगा. उसने सोचा कि गिरजे में रहकर पूजा-पाठ और लोगों की सेवा करने से उसके सारे पाप कट जायेंगे और फिर परलोक में सुख मिलेगा. सो, वह पादरी के साथ चल दिया.

गिरजे में पहुंचने पर उसे लगा, जैसे उसका नया जन्म हुआ हो.

अगले दिन सुबह प्रार्थना के बाद पादरी ने बारनेबी को मां मरियम के बारे में बताया कि वह कितनी दयालु है और उसकी कृपावृष्टि होने से मनुष्य का जन्म सफल हो जाता है.

लगभग पंद्रह दिन के बाद बारनेबी वहां के जीवन का अभ्यस्त हो गया था. पर यह देखकर उसे दुःख होता कि वहां के पादरियों और अन्य कर्मचारियों में आपस में बड़ा ईर्ष्या-द्वेष था. और उनके मन में शांति नहीं थी.

मुख्य पादरी ने एक धर्म-ग्रंथ लिखा था. एक दिन उसने मॉरिस नामक पादरी को वह पुस्तक लाने के लिए कहा.

मॉरिस ने पुस्तक लाकर देते हुए कहा, "इसकी नकल उतारते समय मैंने समय बीच-बीच में कुछ चित्र बना दिये हैं." मुख्य पादरी और अन्य पादरियों ने वे चित्र देखे तो उन्हें बहुत पसंद आये. बारनेबी को भी वे बहुत सुंदर लगे—खासकर मां मरियम के चित्र.

फिर, बारनेबी को पता लगा कि मार्बो नामक पादरी ने मां मरियम की कई मूर्तियां बनायी हुई थीं. किसी में वह मासूम-सी बालिका के रूप में दिखायी गयी थीं, किसी में संन्यासिनी के रूप में और किसी में ममतामयी मां के रूप में. बारनेबी को वे मूर्तियां भी बहुत सुंदर लगीं.

फिर, एक दिन उसने एक और पादरी के लिखे गीत सुने, जिनमें उसने मां मरियम के प्रति अपनी भक्ति-भावना प्रकट की हुई थी और जिन्हें वह उसके सामने खड़ा होकर गाया करता था. इसी प्रकार दूसरे पादरियों ने भी अपने-अपने ढंग से मां मरियम के प्रति अपनी श्रद्धा व्यक्त की थी.

यह सब देखकर बारनेबी उदासी में सोचता, भला किस प्रकार मैं अपने मन की भावना प्रकट करके मां मरियम को खुश करूं? मुझे न लिखना-पढ़ना आता है, न चित्र या मूर्ति बनाना. और भी तो कुछ नहीं आता. आखिर मां मरियम की मुझ पर कृपा दृष्टि कैसे होगी...?

बारनेबी के मन में बेचैनी रहने लगी.

एक दिन मुख्य पादरी ने एक कहानी सुनायी :

"एक बहुत ही साधारण गंवार आदमी था. उसके मन में ईश्वर के लिए अपार श्रद्धा भरी हुई थी. मां मरियम के चरणों में सिर झुकाकर वह कहा करता, 'मां, मैं गंवार हूं और मुझे पूजा-पाठ, कुछ भी नहीं आता. मैं तो बस तुम्हारी भक्ति करना जानता हूं. मेरी इस भक्ति को देखकर मुझ पर दया करो. भला और किस तरह मैं तुम्हें खुश करूं? मेरे पास कुछ भी तो नहीं है...' यही उसकी प्रार्थना थी, जो वह रोज मां मरियम के सामने किया करता. आखिर एक दिन वह मर गया, तो उसकी प्रार्थना के ये शब्द गुलाब के फूल बनकर मां मरियम के चरणों में गिरने लगे."

इस कहानी से बारनेबी की बेचैनी कम हुई और उसके मन में आशा जागी.

■

अगले दिन सुबह वह गिरजे में प्रार्थना करने गया. फिर वह दोपहर को भी गया और शाम को भी. इस प्रकार उसे बार-बार जाते देखकर कुछ पादरियों के मन में कौतूहल जागा. उन्होंने मुख्य पादरी से इसका जिक्र किया तो उसने खुद सारी बात का पता लगाना चाहा?

उसने गिरजे में जाकर बंद दरवाजे को आहिस्ता से खोलकर देखा तो हैरान रह गया. बारनेबी मां मरियम के सामने बाजीगरी के करतब दिखाता हुआ नाक पर छड़ी टिकाये नाच रहा था, गेंदें उछाल रहा था...

पादरी कुछ देर तक तो स्तंभित बना देखता रहा, फिर अचानक जैसे होश में आकर उसने मन में कहा, 'गिरजे में यह खेल-तमाशा! मां मरियम का इतना बड़ा अपमान...!' तभी वह झटके से दरवाजा खोलकर आगे बढ़ा और चिल्लाकर बोला, "यह क्या हो रहा है? गिरजे में ऐसी हरकतें! निकल जाओ यहां से और फिर कभी न आना!"

बारनेबी अवाक् बना देखता रह गया और उसकी आंखों में आंसू छलक उठे. वह दरवाजे की ओर चल पड़ा. तभी उसे लगा, जैसे मां मरियम ने उसके पास आकर बड़ी नर्मी से उसके आंसू पोंछ डाले. □

(संक्षिप्त रूपांतर)

भालू

● विलियम फॉकनर

अन्य भालुओं की तुलना में उस लंगड़े भालू में आखिर ऐसी क्या बात थी कि लोग उसे अपने शिकार का निशाना बनाने से कतराते थे...?

उसकी आयु अब सोलह वर्ष थी. पिछले छह वर्षों से वह शिकारियों के साथ शिकार पर जाता था, उनके सहायक के रूप में. इन छह वर्षों में उसे जंगल और उसके जंगली पशुओं के बारे में सब कुछ ज्ञात हो गया था.

उसे उस लंगड़े भालू के बारे में भी ज्ञात था, जो 100 वर्ग मील के क्षेत्र में निर्द्वंद्व विचरा करता था, और उसे कोई भी शिकारी पकड़ नहीं पाया था.

वह जिन शिकारियों के साथ शिकार पर जाता था, उनमें इस बुजुर्ग भालू के साथ क्या किया जाये, इस बारे में दो मत थे. एक मत के अनुसार, उस भालू को देखकर भी नहीं मारना चाहिए, और दूसरे मत के अनुसार, उसे देखते ही मार डालना चाहिए. आखिर उसमें और दूसरे भालुओं में क्या फर्क है? हम जब उन्हें नहीं छोड़ते, तो उसे ही क्यों बख्शें?

वह उन सब शिकारियों का सहायक था, और उसका अपना कोई मत न था. वह, बस, उसे देखना भर चाहता था.

एक दिन उसे शिकारियों का एक ऐसा दल मिला जो जंगल के गहरे भाग में जाने को तैयार था.

चारों ओर घना अंधेरा छाया था, मूक और डरावना. ऐसे घने जंगल में अपने हाथ की बंदूक पर भी कोई भरोसा नहीं किया जा सकता.

...सहसा, सैम नाम के एक बूढ़े शिकारी ने उसके कान में फुसफुसाकर कहा, "सुनो!" वह सुनने की कोशिश करने लगा. उसे किसी के हिचके हुए, अनिश्चय से भरे डगों की हल्की-सी चाप सुनाई दी. उसे सैम की फुसफुसाहट सुनाई दी, "यह वही लंगड़ा भालू है. वही सुपरिचित गंध." बूढ़ा सैम वर्षों से इसी जंगल में शिकार करने आता था और लंगड़े भालू की गंध आदतों से भलीभांति परिचित था.

"हां, उसके चलने की हल्की-सी आवाज सुनाई तो दे रही है!"

मगर, बहुत कोशिश करने पर भी उस लंगड़े भालू के दर्शन नहीं हुए थे.

अगली बार वह उन्हीं दिनों जंगल के इस भीतरी भाग में आया, तब उसके पास अपनी बंदूक थी.

इस बार वह अकेला ही था और बहुत तड़के ही कैंप से निकल पड़ा था. उसे बूढ़े सैम की नसीहतें याद थीं, "बेटा, घने जंगल में सबसे बड़ी सुरक्षा मिलती है निर्भय होने से. दूसरी बात यह याद रखना कि जंगल के पशु तुम पर तभी आक्रमण करेंगे, जब तुम उन पर हमला करने के इरादे से वहां गये हो, जंगली पशु न जाने किस अलौकिक शक्ति से आदमी के इन इरादों और डरपोकपन को भांप जाते हैं!"

...तभी, उसे लगा, जैसे लंगड़ा भालू उसे देख रहा है.

वह चुपचाप खड़ा रहा हाथ में उस बेकार बंदूक को लिये, जिसका उपयोग, वह जानता था, वह भालू के खिलाफ कभी नहीं करेगा.

उसकी इस कोशिश के बावजूद कि वह निर्भय रहे, एक अज्ञात भय उसमें समाता जा रहा था. कहीं भालू ने उस पर हमला कर दिया तो...?

...और सहसा, उसे लगा कि भालू जैसे आया था, वैसे ही चल गया.

उसका अज्ञात भय तब न जाने कहां खो गया, जब उसने एक झाड़ी से निकलते सैम को अपनी ओर आते देखा. उसने सैम को देखकर कहा, "मैं उसे नहीं देख पाया, सैम! हालांकि, उसने शायद मुझे देख लिया है."

"शायद नहीं, निश्चित देख लिया है. मैं उसे तुम्हें देखते देख रहा था."

जून के महीने की एक तपती दोपहर में आखिर उसने उस लंगड़े भालू को देख ही लिया.

इस बार वह उसे देखने के इरादे से से नहीं आया था. वहां एक हिरण का पीछा करते-करते चला आया था.

दौड़ते-दौड़ते वह थक गया था, और जमीन पर पड़े एक पेड़ पर बैठकर सुस्ता रहा था...कि वह उसे दिखाई पड़ा. उसे शांत और अविचल देखकर उसे लगा, जैसे वह उसे नहीं, उसकी तस्वीर को देख रहा हो. वह ठीक वैसा ही था, जैसी कल्पना उसने कर रखी थी. उतना ही बड़ा और शांत.

वह उसे देख रहा था कि न जाने कब और और कैसे, वह चुपचाप न जाने कहां चला गया? चला नहीं गया, विलीन हो गया. अब उसे सिर्फ उसके पदचिह्न दिखाई दे रहे थे. □

● प्रस्तुति : हरि

बोरिस पास्तरनाक उस समय अचानक विवादास्पद हो उठे, जब उन्हें नोबेल पुरस्कार देने की घोषणा की गयी, और यह सब देखते हुए उन्होंने उसे बाद में अस्वीकार भी कर दिया. हालांकि पुरस्कार का समाचार मिलने पर उन्होंने स्वीडी अकादमी के स्थायी सचिव को तार भेजकर अपनी खुशी और कृतज्ञता का इजहार किया था. तो क्या उनके ऊपर व्यवस्थागत दबाव था, या इसके पीछे उनके व्यक्तिगत कारण?

बोरिस पास्तरनाक का कहना है कि

रूस की धरती और हवा-पानी मेरे प्राण हैं!

■ *प्रयाग शुक्ल*

तेईस अक्तूबर 1958 को स्वीडी अकादमी ने पास्तरनाक को नोबेल पुरस्कार दिये जाने की घोषणा की. प्रशस्ति में कहा गया था कि 'पास्तरनाक ने समकालीन रागात्मक कविता और महान रूसी गद्य लेखकों की परंपरा में अत्यंत महत्त्वपूर्ण योगदान किया है और इसीलिए 1958 में नोबेल साहित्य पुरस्कार उन्हें समर्पित है.' पास्तरनाक ने नोबेल पुरस्कार का समाचार मिलने पर स्वीडी अकादमी के स्थायी सचिव ऐंडर्स ऑस्टरलिंग के नाम तार भेजा—"अत्यंत आभारी, गौरवान्वित, विस्मित और आह्लादित हूं."

लेकिन इसके तुरंत बाद का घटनाक्रम विश्व साहित्य के इतिहास का एक दुखद प्रसंग भी है. पास्तरनाक की मित्र और सहचरी ओल्गा इविंस्काया (जिनके बारे में यह कहा जाता है कि पास्तरनाक के उपन्यास 'डा. जिवागो' की लारा अंशतः वह भी थीं) ने इस घटनाक्रम को याद करते हुए 'ए कैप्टिव ऑव टाइम' में लिखा है:

'पास्तरनाक को नोबेल पुरस्कार का समाचार मिलते ही मास्को में रहने वाले विदेशी संवाददाता अपने कैमरों के साथ पेरेडेल्किनो (मास्को से कुछ दूरी पर लेखकों की बस्ती) में, पास्तरनाक के घर एक बड़ी संख्या में पहुंच गये. इसी समय खींचे गये एक चित्र में पास्तरनाक को स्वीडी अकादमी का तार पढ़कर सुनाते हुए देख सकते हैं, एक अन्य चित्र में उन्हें कार्नेई चुकोवस्की (1882-1969: सुप्रसिद्ध रूसी साहित्यकार, आलोचक, अनुवादक और बाल साहित्य के लेखक) और उनकी नातिन तथा नीना ताबिद्दो (पास्तरनाक के मित्र जार्जियाई कवि तिशियन ताबिद्दो की पत्नी) की बधाइयां स्वीकार करते हुए देखते हैं. बधाइयां स्वीकार करते हुए इस चित्र में पास्तरनाक का संकोची स्वभाव प्रकट है. . . लेकिन इसके ठीक बाद के. . .कोई बीस मिनट बाद के. . .एक चित्र में इन्हीं लोगों से घिरे हुए उसी मेज पर बैठे पास्तरनाक उदास हैं. शून्य में देख रहे हैं, होंठ एक किनारे से भिंचे हुए हैं.

इन बीस मिनटों में हुआ यही था, कि फेदिन (कॉन्स्टैंटिन फेदिन (1892-1977: रूसी उपन्यासकार, 1959 से 1971 तक सोवियत लेखक संघ के सचिव बने और बाद में अध्यक्ष) पास्तरनाक से मिलने आये थे और पास्तरनाक को बधाई दिये बिना उन्होंने कहा था कि पास्तरनाक पर कोई गंभीर संकट आये, इससे पहले ही उन्हें पुरस्कार और उपन्यास (डा. जिवागो) दोनों को 'अस्वीकार' कर देना चाहिए. यह एक शुरुआत थी और इसके बाद तो रूस के भीतर पास्तरनाक के खिलाफ एक जबरदस्त मुहिम चलायी गयी जिसमें राजनीतिज्ञों ने और शासनपरस्त लेखकों ने जमकर हिस्सा लिया—खुले तौर पर भी और दबे-छिपे भी. तरह-तरह के आरोप पास्तरनाक पर लगाये गये, उनके प्रियजनों को प्रताड़ित किया गया और उन पर संकट के बादल सचमुच मंडराने दिये गये.

■

पास्तरनाक ने उपन्यास को तो अस्वीकार नहीं किया, नोबल पुरस्कार उन्होंने जरूर अस्वीकार कर दिया. उनसे कहा गया कि अगर वह नोबेल पुरस्कार लेने स्वीडन जायेंगे तो फिर उन्हें वापस रूस में आने नहीं दिया जायेगा. अपनी

भाषा और देश से पास्तरनाक का लगाव गहरा था और उन्होंने तत्कालीन रूसी प्रधानमंत्री ख्रुश्चेव के नाम एक पत्र लिखा—"कृपया मुझे देश निकाला देने जैसा कोई कठोर कदम न उठाया जाये. रूस की धरती और हवा-पानी ही मेरे प्राण हैं!"

नोबेल पुरस्कार पाने से पहले ही पास्तरनाक के उपन्यास 'डॉ. जिवागो', का प्रकाशन इटली और अन्य देशों के भाषाओं में हो गया था और रूस में उसके विरुद्ध 'सरकारी' लेखकों और राजनीतिज्ञों ने एक वातावरण बनाना शुरू कर दिया था. लेकिन पास्तरनाक को नोबेल पुरस्कार मिलने पर तो जैसे ईर्ष्या-द्वेष की एक आंधी ही आ गयी. यह नहीं कि रूस में पास्तरनाक के समर्थक नहीं थे, समर्थक तो साहित्य जगत में भी थे—और उनके विरोधी भी. 'अपने-अपने एकांत' में उनके साहित्य को सराहते थे. लेकिन पास्तरनाक सबको एक ऐसे 'शिकार' की तरह भी लग रहे थे जिसे 'घेरा' जा सकता था और मानो उन्हें घेरकर ही थोड़ी बहुत 'ताकत' और 'कूटनीतिक' खुशी पायी जा सकती थी.

25 अक्तूबर 58 के, लिट्रेरी गजेट में पास्तरनाक को जी भरकर गालियां दी गयीं. उन्हें 'पाखंडी' और रूसीजन से घृणा करने वाला बताया गया.

एक ओर पास्तरनाक को सारी दुनिया से बधाइयां और प्रशंसात्मक चिट्ठियां मिल रही थीं, दूसरी ओर अपने ही 'घर' में उन्हें भर्त्सना! बहुत कम ही नोबेल पुरस्कार विजेता लेखक पुरस्कार मिलने के बाद विवादों के जाल में इस तरह फंसे होंगे, जिस तरह कि पास्तरनाक! कुछ लोग तो यह भी मानते हैं और ओल्गा इविंस्काया उनमें से एक हैं—कि विवादों और भर्त्सनाओं ने पास्तरनाक के संवेदनशील मन पर इतनी बड़ी चोट की कि वह कुछ टूट-से गये और अधिक दिनों तक जीवित नहीं रह सके. नोबेल पुरस्कार मिलने के डेढ़-दो बरस बाद ही पास्तरनाक का देहांत (1960) हो गया. □

मैं कई दशकों से होकर निकल जाऊंगा!

'डॉ. जिवागो' और अपनी कविताओं पर पास्तरनाक के कुछ विचार जो उन्होंने ओल्गा इविंस्काया और ओल्गा कार्लिस्ले के साथ बातचीत करते हुए व्यक्त किये थे.

ओल्गा इविंस्काया: पास्तरनाक अपनी रचनाओं पर कई बार मुझसे सहसा भी बातचीत शुरू कर देते थे. ऐसे ही एक बातचीत के दौरान पास्तरनाक ने कहा:

मुझे अचानक एक बढ़िया-सा खयाल आया है. वैसे हो सकता है मुझे ही वह बढ़िया लग रहा हो. मैं तुम्हें एक पियानोवादिका के यहां ले जाना चाहता हूं. वह पियानो बजाकर सुनायेंगी, और मैंने उनसे कहा है, बदले में मैं अपनी नयी गद्य रचना से उन्हें कुछ अंश सुनाऊंगा. नहीं, यह एक उपन्यास नहीं होगा. और उस अर्थ में तो बिल्कुल नहीं जिस अर्थ में एक उपन्यास को 'उपन्यास' कहा जाता है. मैं इसमें कई वर्षों और दशकों की बातों से होकर निकल जाऊंगा, साधारण, सहज शायद छोटी मानी जाने वाली बातों को. मैं सोचता हूं इसका नाम रखूंगा 'लड़के और लड़कियां' या फिर 'पचास वर्षों की दैनंदिन जिंदगी की तस्वीरें.'

ओल्गा कार्लिस्ले: कुछ लोगों ने मुझसे कहा था कि पास्तरनाक को अब अपनी आरंभिक कविताएं अच्छी नहीं लगतीं. मुझे इस पर विश्वास नहीं हुआ था. साहस करके मैंने पूछ ही डाला.

. . .बीस के दशक में हमारी कविताओं में सार्वभौमिक अपील नहीं थी. अब वे परिपक्व हो गयी हैं. इशारा संभवतः 'डॉ. जिवागो' में संकलित कविताओं की ओर है. यही नहीं, मुझे तो यह भी लगता है कि रागभरी या गीतिपरक कविता के बश की बात अब यह नहीं रही कि वह जीवन के विपुल अनुभवों को व्यक्त कर सके. जीवन कहीं अधिक दुर्वह और जटिल हो गया है. और इसमें कुछ ऐसा संचित हुआ है जो गद्य में ही अच्छी तरह अपनी राह बना सकता है. मैंने अपने उपन्यास में उन्हीं संचित हुए अनुभवों और मूल्यों को व्यक्त करने की कोशिश की है.

क्या आपको ऐसा नहीं लगता कि बीसवीं शती के पहले पचास वर्ष रूसी कविता के उपलब्धि के वर्ष हैं, गद्य के नहीं?

नहीं मैं समझता हूं कि अब ऐसी स्थिति नहीं रही. मेरा यह विश्वास है कि आज का माध्यम गद्य ही है. विस्तृत और समृद्ध जैसे कि फॉकनर का. आज की रचना को जीवन के हर पहलू को उजागर करना चाहिए. मैं अपने नाटक में यही कुछ करने का प्रयत्न कर रहा हूं. 'प्रयत्न कर रहा हूं'—यह मैं इसीलिए कह रहा हूं कि क्योंकि रोजमर्रा जीवन मेरे लिए जटिलतम होता गया है. शायद ऐसा सभी जगहों के लेखक महसूस कर रहे होंगे. जो किसी कदर प्रतिष्ठित हैं या जाने जाते हैं. लेकिन मैं इस स्थिति या भूमिका के लिए अपने को कुछ अप्रस्तुत पाता हूं. इसीलिए फिर कहता हूं कि 'मैं प्रयत्न ही कर रहा हूं.' मैं जीवन की शांति और 'गोपनीयता' छिन जाना पसंद नहीं करता.

. . .हालांकि रचनाकार एक दिन मर जाता है, लेकिन जीने का जो सुख आनंद वह उठाता है वह अमर रहता है,

एक लेखक को अधीर होकर जीना और लिखना चाहिए. और जीवन के नव संचित कोष से खुराक लेनी चाहिए. मुझे यह बात कुछ उबाऊ लगती है कि कोई किसी भी कीमत पर केवल एक ही दृष्टिकोण से चिपका रहे. हमारे चारों ओर का जीवन लगातार बदलता रहता है और मैं समझता हूं कि उसके अनुरूप किसी को भी अपनी प्रवृत्ति या दृष्टिकोण में परिवर्तन लाना चाहिए, कम से कम हर दस वर्ष बाद. □

● प्रस्तुति : प्रयाग शुक्ल

> . . . जिंदगी और मौत के फलसफे से रू-ब-रू करता 'हाउस ऑव द स्लीपिंग ब्यूटीज' का एक अंश—

सोयी हुई रूपसियां

□ यासुनारी कावाबाता

जापानी उपन्यास-अंश

सर्दी इस बार अपनी चरम सीमा पर थी. . . महिला ने इगूची का स्वागत करते हुए कहा, "अच्छा किया आपने जो इस सर्दी में यहां चले आये."

"हां, इसीलिए तो आया हूं यहां. . . सर्दी में किसी सुंदर युवती के शरीर से तपकर मौत के पास पहुंचना, किसी बूढ़े के लिए सीधे स्वर्ग पहुंचना ही तो है."

"बातें बहुत बढ़िया कर लेते हैं आप!"

—"मुझे हवा लग रही है." इगूची ने औरत से कहा.

—"हवा!" वह आश्चर्य से इधर-उधर ताकने लगी "हवा नहीं, तो क्या कोई भूत है?"

—"आपने कुछ सुना. . . सुनकर भी भीतर घुस आये . . . आप चाहें तो वापस चले जाइए!"

औरत हंस रही थी, ठीक किसी शैतान की माफिक.

"यहां कैसे-कैसे बूढ़े आते हैं. . . मैं नहीं जानता, पर उनकी मौत इसी तरह होती रही तो. . . !"

औरत घबरा ही गयी थी, "यह बात आप यहां के बॉस से कहिए . . . मैं तो कोई गलती नहीं कर रही हूं."

"इस काम में गड़बड़ी की है, उजाला होने से पहले ही लोग उस मरे हुए आदमी को किधर घसीट ले गये! इसमें तुम्हारा भी हाथ है."

"यह तो उस मृत की ही वजह से किया है, इससे उसकी बदनामी नहीं होगी." औरत ने समझाया.

"मरे हुए का बदनामी से भला क्या वास्ता. . . ?"

औरत खामोश रही.

"मुझे संदेह हो रहा है. . . वह चाहे नंगी लड़की के साथ ही पड़ा था. . . अखबार वालों को तो कुछ भी कहने को मिल सकता है. . . अगर मैं होता तो मुझे बहुत खुशी होती."

मरने वाला आदमी अच्छा-खासा तंदुरुस्त किस्म का इंसान था. . . पर अखबारों में केवल मरने की ही खबर रह गयी थी. मरते ही उसे वे लोग रात ही रात में गाड़ी पर लादकर ले गये थे. . .

इगूची की जिज्ञासा जगी, "क्या मैं उस युवती के बारे में कुछ जानकारी हासिल कर सकता हूं?"

"जी नहीं, वह खरोंचें ठीक होने तक छुट्टी पर है."

"यह केस तो आपने दबा ही लिया. . . पर अब आपका यह बिजनेस अधिक नहीं चल पायेगा."

"आपने कैसे जाना कि वह मर गया!" इगूची ने पूछा.

"मुझे अजीब-सी आवाजें सुनाई पड़ीं. . . . मैं वहां पहुंची तो देखा कि उसकी सांस ठहरी हुई थी."

". . . लड़की बेखबर ही थी क्या!"

"असल में इस तरह की छोटी-छोटी बातों का पता उन्हें न लगे, इसका प्रबंध हम पहले ही कर लेते हैं. . . खैर छोड़िए मैं भूल ही गयी. . . आज दो हैं."

—"दो!" इगूची उल्लसित हो उठा. तब तक वह औरत जा चुकी थी. दरवाजा खोलते ही इगूची को महसूस हुआ कि उसकी तरफ वाली लड़की कुछ जंगली किस्म की है. शायद वह बिजली के कंबलों की भी आदी नहीं है. कंबल को परे फेंक वह अपनी टांगें चौड़ाई में फैलाकर पड़ी थी. उसकी बगलें अजीब सी गंध फेंक रही थीं. उसे लगा कि यह लड़की जापानी नहीं है. वह उम्र में भी बीस से कम की रही होगी. नहीं देख रहा था.

अब वह भी कपड़े उतारकर उसके पास ही पसर गया. उसके पसरते ही युवती ने करवट ली. . .उसे लगा कि वह अगर लड़की को जबरदस्ती कब्जे में कर लेगा, तो जरूर उसकी जवानी का जोश लौट आयेगा. इस घर के नियमों से वह जैसे-जैसे ऊब रहा था वैसे ही खिंचाव बढ़ रहा था.

इगूची अब दूसरी औरत की ओर मुड़ा. . . जो दूसरी ओर मुंह किये पड़ी थी. अब वह उसी की ओर खिसक आयी. युवती का एक हाथ इगूची के नितंब की ओर पड़ा.

"औरत का कुछ अता-पता नहीं", इगूची ने सोचा और अपने पैर भी फैला लिये, उसके पैर का अंगूठा पहले वाली युवती के पैर से स्पर्श कर गया. . . . इगूची ने उसी वक्त पैर सिकोड़ लिया. उसका मन हो रहा था कि एक मर्तबा और छुआये. इस बार वह अपना पैर युवती के पैर से छुआता-सा ऊपर तक ले गया. उसे एक झनझनाहट-सी महसूस हुई. गोया कोई कह रहा हो, "मुझे जीने की कला सिखा दो!"

इगूची उससे माफी मांगने पर विचार करने लगा, "अब यह मेरी जिंदगी में अंतिम औरत है. . . इनकी यह हालत . . . यह सब पैसे के लिए तो है. लाश में और इसमें अंतर केवल यही है कि यह सांस ले रही है. . . इसका खून भी गरमाया हुआ है. इगूची दोनों के बीच फंसा पड़ा था.

दोनों युवतियों के उरोज उसके हाथों में भरे पड़े थे. . . उनींदे से इगूची को रह-रह कर पत्नी की स्मृति हो आयी थी. उसके जीवन में, मां के जीते वही पहली स्त्री आयी थी. □

> आज के बाजार में मनुष्यरूपी सिक्के का जो व्यावहारिक मूल्य है, उसकी दृष्टि से मेरी कीमत गिर चुकी है. मैं अपने आपको बिक्री की चीज बना रहा हूं. . .!

नीलामी

—पास्तरनाक

रूसी कहानी

जिन दिनों की यह घटना है, उन दिनों रूस में आज जैसी ही सामाजिक परिस्थितियां थीं और छोटी-छोटी बातों का बतंगड़ बन जाया करता था. एक दिन किसी बड़े शहर में एक अफवाह फैली कि एक नौजवान अपने आपको नीलामी पर चढ़ा रहा है.

नीलामी वाले दिन लोगों की भीड़ शहर से निकलकर चल पड़ी. सारी घटना शहर से दूर उस मकान में घटी, जहां इससे पहले कोई नहीं आया था.

लोग जमा हो गये थे, जो सभी एक ही श्रेणी के थे—अभिजात वर्ग के, धनवान, कलाप्रेमी, वकील आदि. कुर्सियों की कतारें लगी थीं. मंच पर एक बड़ा पियानो रखा था और उसके पास की मेज पर लकड़ी का एक हथौड़ा पड़ा था. खिड़कियां खुली हुई थीं. अंत में वह नौजवान मंच पर आया. उसकी जवानी मानो अभी फूट ही रही थी. वह कौन है, कहां का है, क्या करता है? ऐसे सवाल उठने स्वाभाविक ही थे.

बीजगणित की शैली में हम उसे फिलहाल 'क' कहकर पुकारेंगे.

'क' ने अपनी भूमिका में कहा, "मैं अपने आपको बेच डालना चाहता हूं. जो भी सज्जन सबसे बड़ी बोली देंगे, उन्हीं का मुझ पर पूरा अधिकार होगा. पर नीलामी के बाद मेरे खरीददार को मुझे चौबीस घंटे की मोहलत देनी होगी, ताकि मैं बिक्री से प्राप्त रकम बांट सकूं. मैं खुद के लिए कुछ नहीं रखूंगा. इसके बाद मेरी गुलामी का दौर शुरू होगा. मेरे मालिक को मुझसे काम लेने का ही नहीं, मेरी जान लेने का भी अधिकार होगा."

तब 'क' के मित्रों में से एक व्यक्ति उठकर मंच पर आया और मेज के पास कुर्सी पर बैठ गया. उसका काम केवल इतना था कि सबसे ऊंची बोली पर रकम वसूल करके 'क' को सौंपकर चला जाये.

कार्रवाई शुरू हुई. 'क' ने घोषणा की, "मैं पहले आप लोगों के सामने संगीत प्रस्तुत करूंगा—ऐसा संगीत जिसे आप लोगों ने आज तक कभी नहीं सुना होगा. यह संगीत आत्मा से उठी सहज रचना होगी."

तभी बाहर वर्षा होने लगी. खिड़कियों के बाहर हवा सनसनाने लगी. फिर, अंधेरा छा गया. बादलों की पहली गड़गड़ाहट के साथ ही 'क' ने संगीत शुरू कर दिया.

संगीत की लय और गीत के स्वरों की प्रेरणा 'क' को उस विशाल नील गगन से मिल रही थी, जिसमें दूधिया इंद्रधनुषी बादल मंडरा रहे थे. वर्षा ने धुंधले सितारों का मुंह धो डाला था, जिससे वे और भी जगमगाने लगे थे.

पियानो पर लहराती हुई अंगुलियों को 'क' ने झटककर अपना हाथ खींच लिया. संगीत रुक गया. पर तभी 'क' की मधुर कंठ-ध्वनि लहरा उठी. खिड़कियों के शीशों पर बूंदें नाच रही थीं. पेड़ों की टहनियां झूम रही थीं, हवा लहरा रही थी, और वह गीत चारों ओर गूंज रहा था.

आखिर 'क' उठ खड़ा हुआ और लोगों को संबोधित करके कहने लगा, "आपके स्नेह के लिए मैं आभारी हूं, पर केवल इतने से ही मुझे संतोष नहीं है. मैं अपनी योजना आप पर प्रकट नहीं करूंगा क्योंकि तब आप उसमें हस्तक्षेप करना चाहेंगे, और समस्या के समाधान के लिए कोई दूसरा तरीका अपनाने को कहेंगे. आपकी सहायता चाहे कितनी ही उदार क्यों न हो, मेरे मन के अनुकूल न होगी. . . .आज के बाजार में मनुष्यरूपी सिक्के का जो व्यावहारिक मूल्य है, उसकी दृष्टि से मेरी कीमत गिर चुकी है. मैं अपने आपको बिक्री की चीज बना रहा हूं."

फिर, संगीत लहराने लगा. और बीच-बीच में बोली दी जाने लगी. अंत में एक कट्टर सैद्धांतिक, कलाप्रेमी ने 'क' को खरीद लिया.

पर कहानी यहीं खत्म नहीं हो जाती. नीलामी के तीसरे-चौथे दिन वह धनी 'क' से ऊब गया. उसने उसके लिए एक अच्छे स्थान पर निवास की व्यवस्था कर दी. उसको सुखी रखने की चिंता में वह परेशान रहने लगा. एक दिन वह उसे बुलाकर कहने लगा, "मैं अभी तक यह नहीं समझ पाया हूं कि तुमसे क्या काम लूं. इसलिए मैं तुम्हें आजाद करना चाहता हूं. तुम कहीं भी जा सकते हो."

'क' ने प्रस्ताव अस्वीकार कर दिया. लेकिन तब यह बात अफवाह बन कर उस इलाके में फैल गयी, जहां 'क' ने अपनी बिक्री के पैसे बांटे थे. वहां उपद्रव फूट पड़े. इससे दोनों को गहरा दुःख हुआ—खासकर 'क' को, क्योंकि उसकी नजर में फिर से आजाद होने का अर्थ था, ठीक पहले जैसी परिस्थितियों में लौट आना. और वह इसके लिए तैयार नहीं था. □

● रूपांतर : सुखबीर

यात्रा-वृतांत—दो

लिलि हासेर : सिगरी उनसत के घर

▣ हिमांशु जोशी

सिगरी उनसत नार्वेजियन साहित्य जगत का एक ऐसा नाम है, जिसके कानों में पड़ते ही एक ऐसी महिला का चित्र आंखों के आगे घूम जाता है, जो आजीवन मनुष्य की स्वतंत्रता के लिए संघर्ष करती रही. जब नाजियों ने नार्वे पर आक्रमण किया तो अपने संघर्ष की कीमत उन्होंने अपने बेटे की मौत से चुकायी. उनकी लिखी हुई पुस्तकें उसी संघर्ष का शब्दचित्र हैं. हिंदी के जाने-माने कथाकार हिमांशु जोशी लिलि हामेर जाते हुए जो कुछ देखते और सोचते रहे, वह आप पिछले अंक में पढ़ ही चुके हैं. यहां पहुंचकर जो कुछ उन्होंने देखा, पेश है उसका एक उदात्त चित्रण.

बाहर के बड़े दरवाजे के पास पहुंचते ही, उस सर्दी में भी कहीं गरमी का एहसास होने लगता है. नार्वे के अन्य घरों की तरह, यह घर भी पूरा का पूरा लकड़ी का बना है. आश्चर्य की बात यह कि हमारी परिभाषा के अनुसार ये 'कच्चे' घर भी सदियों तक साथ निभाते हैं. टेलिमार्क में हमने कुछ ही दिन पूर्व एक काष्ठ निर्मित गिरजाघर—हेडल स्टेव चर्च—देखा था, जो नार्वे का सबसे पुराना गिरजाघर है—सन 1250 में बना. आज भी वह वैसा ही है, आसमान की ओर सिर उठाए, जैसा शताब्दियों पहले कभी रहा होगा. . .

ढलान की ओर कच्चा रास्ता है, जो आगे चलकर, एक साधारण से तिकोने पार्क के आगे, प्रमुख मार्ग से मिल जाता है.

घर के चारों ओर बहुत से वृक्ष हैं—हरी-भरी झाड़ियां. एक बहुत बड़ा अहाता. लकड़ी की तिरछी खपच्चियों की बाड़, दूर से देखने पर बहुत आकर्षक लगती है.

लकड़ी के तख्तों को जोड़कर, घर की दीवारें बनायी गयी हैं. बीच-बीच में सफेद खिड़कियां. लकड़ी की ही ढलवां छतों पर लंबी-लंबी घास उग आयी है—ठीक उसी तरह जिस तरह जमीन पर उगी है. सूखने की प्रक्रिया से गुजरने के कारण एकदम पीली लग रही है. अहाते के बीच में सफेदे का एक बड़ा वृक्ष है. उसी के पास झंडा फहराने के लिए, एक बहुत बड़ा सफेद लट्ठा गाड़ा गया है.

यहां घरों के आगे झंडा फहराने की एक विशेष परंपरा दीखती है. फ्रागेरा के कम आबादीवाले छोटे-छोटे द्वीपों में, दूर-दूर बिखरे घरों के आगे लहराते झंडे दूर से ही चमकने लगते हैं—यहां कोई घर है, लोग रहते हैं—संभवत: इसी का एहसास जताने के लिए. काठ का पुराना अधखुला बाहरी द्वार मैं तनिक और खोल देता हूं ताकि अहाते के भीतर जाने में असुविधा न हो. घास पर दस-बारह कदम चलने के पश्चात हम घर की सीढ़ियों के निकट पहुंचते हैं. शंका यही सता रही है कि कहीं विलंब से पहुंचने के कारण गृहस्वामिनी ने पट बंद न कर दिये हों.

सीढ़ियां छोटी-छोटी.

द्वार के पास मेज कुर्सियां लगी हैं. एक व्यक्ति बैठा है. सामने कुछ कागज तथा पिक्चर पोस्टकार्ड्स फैले हैं.

इंग्रिड आगे है. जैसे ही वह एक कदम और आगे बढ़ाती है, सामने बैठा व्यक्ति नार्वेजियन में कुछ कहता है.

उसका आशय समझने में मुझे क्षणांश भी नहीं लगता. यहां कहीं भी, ऐतिहासिक महत्व के स्थान पर जाने पर प्रवेश-शुल्क के रूप में टिकट अवश्य खरीदना पड़ता है. मुझे याद आता है, नाटककार हेनरिक इब्सन के घर, (जो अब संग्रहालय है) सीयन जाते समय भी तीन क्रोनर का टिकट लिया था. . .

▣

सिगरी उनसत को यह स्थान बहुत प्रिय था. सन 1919 में 36 वर्ष की अवस्था में वह यहां आयी थी, शांति की खोज में. दो वर्ष बाद ही उसने यह घर खरीद लिया था. वास्तुकला की दृष्टि से भी इस घाटी के अन्य घरों की अपेक्षा यह विशेष कलात्मक था. संभवत: इसीलिए उसे इतना पसंद आया होगा.

हमसे पहले भी तीन-चार विदेशी पर्यटक यहां उपस्थित हैं. घर की प्रत्येक वस्तु को बहुत बारीकी से देख-परख रहे हैं. . .

मैं अपना परिचय दूं, इससे पहले ही गृहस्वामिनी लपककर स्वागत करती है. टूटी-फूटी अंग्रेजी में अपना परिचय

छोटा बेटा था. . .1978 में उसकी मृत्यु हो गयी थी. . .आपको मालूम होगा, सिगरी के दो ही बेटे थे, एक बेटी. . ."

विलंब से पहुंचने के लिए क्षमा-याचना करते हैं तो वह भोले भाव से हंसने लगती है, "समय तो लग ही जाता है. . .कोई ऐसी बात नहीं. . .मैं आप लोगों की प्रतीक्षा में ही थी. . ."

गहरे नारंगी रंग का चमकीला गाउन उसने पहन रखा है. पीछे की ओर बिखरे हुए अधकटे केश. स्थूल काया. साफ गोरे रंग की वह मृदुभाषी, अधेड़ महिला देखते ही मुझे बहुत सहृदय लगती है. उसके स्वभाव के बारे में कुछ लोगों ने ओस्लो में जो बतलाया था, सही नहीं लगता. बड़ी आत्मीयता से वह हर वस्तु के विषय में बतलाती है. . .

"पहले यह मकान इतना बड़ा नहीं था. नीचे का जो बगीचा अभी आते समय आपने देखा होगा, उसे सिगरी ने ही बनाया था और दूसरी तरफ का यह छोटा कमरा भी. पहले वह मेहमानों के ठहराने के काम आता था, कालांतर में बैठक के रूप में भी उसका इस्तेमाल होता रहा. . ."

घर में प्रवेश करते ही, यह पहला कमरा है. साफ-सुथरा, सजा हुआ—वर्गाकार. जगह-जगह रंग-बिरंगे ताजा गुलदस्ते. सामने रैक पर, सुंदर जिल्दों में सजी सिगरी की पुस्तकें हैं. पुस्तकों के अनुवाद. . .

"विश्व की सत्तर से अधिक भाषाओं में सिगरी की कृतियों के अनुवाद हो चुके हैं. . ." निकट जाकर देखता हूं, एक पुस्तक का नेपाली अनुवाद है. उसी के पास आइस तथा टर्किश भाषाओं के अनुवाद हैं, परंतु मेरी निगाहें हिंदी में अनूदित किसी पुस्तक की तलाश में हैं, जो इन ढेर सारी पुस्तकों के बीच कहीं दीख्ती नहीं. . .

लगभग तीस वर्ष पूर्व नोबेल पुरस्कार से सम्मानित स्वीडिश लेखिका सेल्मा लेजरलोफ (1858-1940) के उपन्यास 'द आउट कास्ट' का हिंदी रूपांतर पढ़ा था.

सिगरी की कृतियां सेल्मा से कम अनुवाद क्यों नहीं हुआ होगा?

गत सप्ताह ओस्लो विश्वविद्यालय के भारतीय एवं ईरानी भाषाओं के विद्वान प्राध्यापक डॉ. नट क्रिस्तियाल्सेन से बातें हो रही थीं— सिगरी के साहित्य के विषय में. नट राहुलजी की तरह अनेक भाषाओं के प्रकांड पंडित हैं. संस्कृत, हिंदी, पंजाबी, उर्दू, नेपाली, बंगला, तमिल, मलयालम, पश्तू, बलोची, फारसी आदि आदि भाषाएं जानते हैं. सिगरी की पुस्तकों के अनुवाद के बारे में चर्चा चली तो उन्होंने अपनी रैक से मलयालम की एक पुस्तक उठायी. बोले, "सिगरी की कहानियों का यह मलयालम अनुवाद, लगता है फ्रेंच भाषा के माध्यम से हुआ है. इसलिए इतना भ्रष्ट है कि कहीं-कहीं अर्थ का अनर्थ हो गया है. . ."

परंतु वह पुस्तक भी हमें यहां कहीं दीखती नहीं.

बायीं दीवार पर सिगरी के उपन्यासों पर आधारित नाटकों के कलात्मक पोस्टर हैं—नार्वेजियन के साथ-साथ अन्य योरोपीय भाषाओं में भी.

भिन्न-भिन्न चित्रकारों द्वारा बनाये सिगरी के रंगीन तैल-चित्र.

उपन्यासों के पात्रों के रेखांकन. होकेन्स टान्स्टबैल की रेखाओं का चमत्कार देर तक दर्शकों को बांधे रखता है.

"रूसी लेखक सोल्जेनित्सिन 1976 में यहां आये थे. यह चित्र उसी समय का है. . ." दरवाजे के भीतर पांव रखते सोल्जेनित्सिन का श्याम-श्वेत चित्र. लगता है, सोल्जेनित्सिन का दायां पांव चित्र के चौखटे को तोड़कर बाहर आने ही वाला है. . .

"सिगरी को पढ़ने-लिखने का बहुत शौक था. सुबह बच्चों को खिलाने-पिलाने के बाद वह फिर बिस्तर में घुस जाती थीं और घंटों प्राचीन ऐतिहासिक दस्तावेजों एवं पुस्तकों में डूबी रहती थीं. उनके संग्रह में बारह हजार से अधिक पुस्तकें थीं. . ."

▣

"इस संदूक में क्या है?" कोने पर रखे

सिगरी की पुत्रवधू के साथ इंग्रिड, लेखक और चावला

लोहे की पत्तियोंवाले काठ के एक ऊंचे, पुराने संदूक की ओर इंगित कर जिज्ञासा से पूछता हूं.

"सिगरी के कपड़े हैं."

छत पर भी एक शीशे का फानूस लटक रहा है.

घर की प्राय: हर वस्तु कलात्मक है—अपनी अलग विशेषता लिये. कहते हैं, सिगरी को बचपन से ही चित्रकला का बहुत शौक था. चित्रकार बनने की आकांक्षा. किंतु लिखने-पढ़ने का ऐसा व्यसन आरंभ हुआ कि कला की साधना के लिए समय निकाल पाना ही संभव न रहा. तब उसने अपनी इस आकांक्षा की पूर्ति के लिए चित्रकार ए. एस. इस्वार्सटाड से विवाह किया, जो उम्र में तेरह वर्ष बड़े थे.

पति के बनाये अनेक रंगीन चित्र कमरे में सुशोभित हैं. इनमें अधिकांश सिगरी के पोर्ट्रेट हैं.

"यह मेज, यह कुर्सी, जिस पर बैठकर सिगरी ने अपनी अमर कृतियों की सर्जना की थी." सिगरी की पुत्रवधू का स्वर तनिक भावुक हो आता है.

पुराने ढंग की काठ की मेज है—मध्यम आकार की. लगता है अगल-बगल का कुछ हिस्सा अलग से जोड़ा गया है. हां, कुर्सी बड़ी आरामदेह है. मैं हाथ से छूकर देखता हूं. इस समय भी मेज पर कुछ कागज बिखरे हैं. बीच में सफेद शीशे का पारदर्शी गोल फूलदान, जिसमें रखे ताजा, सफेद फूल महक

सिगरी को लिखने का शौक अपने पुरातत्ववेत्ता पिता—इंगवाल्ड उनसत से विरासत में मिला था. उनसत-परिवार तब क्रिश्चिनियां (जिसका नया नाम अब ओस्लो है) में रहता था. पिता इतिहास एवं पुरातत्व संबंधी पुस्तकों में हर क्षण खोये रहते. घर का सारा वातावरण ही ऐसा था कि सिगरी के मन में इतिहास के प्रति विशेष रुचि जाग्रत हो गयी. वह भी रहस्यमय प्राचीन संसार में विचरण करने लगी.

पिता की अकाल मृत्यु के पश्चात परिवार की आर्थिक स्थिति अत्यंत दयनीय हो गयी. अभी सिगरी ने उन्नीस वर्ष भी पूरे नहीं किये कि लिखना आरंभ कर दिया था.

▣

ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर लिखे उसके प्रथम उपन्यास की पांडुलिपि देखकर प्रकाशक ने सलाह दी थी, कि तुम और जो चाहो लिख सकती हो, पर ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर कभी सफल नहीं हो सकती.

किंतु उसे क्या पता था कि नार्वे के मध्यकालीन इतिहास पर आधारित सिगरी के उपन्यास एक दिन तहलका मचा देंगे, और उसे विश्व के अग्रणी लेखकों की अग्रिम पंक्ति में ला खड़ा करेंगे. . .

कुछ सीढ़ियां उतरकर हम इसी से जुड़े दूसरे कमरे में प्रवेश करते हैं.

यहां सिगरी की अनेक पांडुलिपियां हैं. पुस्तकों का यहां भी अंबार लगा है. पुस्तकों के साथ सिगरी की दैनिक उपयोग की और भी बहुत-सी वस्तुएं हैं.

अंतिम पुस्तक की पांडुलिपि भी एक ओर जतन से रखी है.

▣

इसी के साथ कुछ नीचे एक और कमरा है—अपेक्षाकृत बड़ा, आयताकार. पूर्वी दीवार के साथ अंगीठी है—बहुत बड़ी. पहले हम इसी से लगे, भीतरवाले छोटे-से कमरे में प्रवेश करते हैं. यहां तनिक अंधियारा है. तहखाना-जैसा लग रहा है.

राइटर है.

"अपने जीवन के अंतिम दिनों में वह टाइपराइटर पर ही लिखती थीं. . ."

मेज के साथ चमड़े से मढ़ी बड़ी कुर्सी है. "कभी-कभी इस कमरे में बैठकर भी वह लिखती थीं."

▣

बक्सा.
चटाई.
मूर्तियां.
काठ की कुर्सियां.
दीवार पर चौखानेदार ऊनी चादर.

'जन्म शताब्दी' के अवसर पर ये वस्तुएं बाहर निकालकर रखी हैं.

"सिगरी उनसत आत्मप्रचार से हमेशा कोसों दूर रहीं. उनका प्रचार न किया जाये, उनके घर को संग्रहालय के रूप में परिवर्तित न किया जाये—उनकी इच्छा थी." कुछ रुककर वह अपनी बात फिर आरंभ करती हैं, "जैसा घर वह छोड़ गयी थीं, अभी तक ठीक वैसा ही है. हमने कहीं कोई परिवर्तन नहीं किया." पुत्रवधू का स्वर गंभीर है.

हमारे साथ-साथ एक अन्य विदेशी सज्जन चल रहे हैं, जो सर्दी के कारण बार-बार अपनी नाक साफ कर रहे हैं. इस बार वह बोल पड़ते हैं, "पास ही नोबेल पुरस्कार प्राप्त साहित्यकार बियोन्सन का घर है. उसे सरकार ने खूब सजाकर रखा है. . ."

सिगरी के सामने कुछ मानव-मूल्य थे, जीने का एक उद्देश्य. फिर दिखावे के लिए अवकाश ही कहां था! उसकी नोबेल पुरस्कार से सम्मानित कृति के पात्र यद्यपि इतिहास से लिये गये हैं, परंतु उनमें जिन जीवन मूल्यों की स्थापना की गयी है, वे आज भी उतने ही महत्वपूर्ण हैं. अपने उपन्यास की नायिका क्रिस्तिन (**क्रिस्तिन लेवरेंसदात्तेर नामक इस उपन्यास का एक अंश आप पिछले अंक में पढ़ चुके हैं**) के माध्यम से सिगरी ने जिस संसार की सृष्टि की है, वह बीते हुए कल का ही नहीं, आज का, और आनेवाले कल का भी जीवंत संसार है. . .

"इस घर में अब कौन रहता है?"

"मैं. . .!" संक्षिप्त-सा उत्तर.

"उनकी अंतिम कृति कौन-सी है?"

"कैटेरिन ऑव सिएना, एक संत की जीवन गाथा. . .यह उनकी मृत्यु के पश्चात प्रकाशित हुई थी. . ."

कुछ रुककर वह आगे कहती हैं, "अंतिम दिनों में उन्होंने कथा-साहित्य लिखना प्रायः बंद कर दिया था. . ."

"यहां के एकांत से वे ऊब नहीं जाती थीं?" इंग्रिड प्रश्न करती है.

"ऊब का प्रश्न तो तब पैदा होता, जब कभी उन्हें किंचित अवकाश मिल पाता. सिगरी कर्मठ महिला थीं. 'नार्वेजियन आथर्स यूनियन' की वर्षों तक अध्यक्षा रहीं. जीवन पर्यंत लिखने से उन्हें समय ही कहां मिल पाया? अमरीका से जब वे जुलाई 1945 को स्वदेश लौटीं तो तन से ही नहीं, मन से भी बहुत थकी हुई थीं. उस स्थिति में भी उन्होंने लिखना नहीं छोड़ा. अमरीका में बिताये निर्वासन के दिनों की मार्मिक झांकी अपने स्मृति-चित्रों के माध्यम से प्रस्तुत की. मृत्यु उन्हें छीन न लेती तो अभी बहुत कुछ लिखना था उन्हें. . ."

चलते-चलते बड़े-से कमरे में हम फिर प्रवेश करते हैं. अंगीठी के पास कोयले रखे हैं. तीन तरफ, आग सेंकने के लिए लकड़ी की साधारण-सी कुर्सियां—एकदम पुराने किस्म की. कुर्सियों के पास मोटी-सी भोंडी मेज. . .

अंगीठी के आगे बने नन्हें-से गज भर के चबूतरे में लोहे की काली पत्तियों से बनी दो मुर्गियां, ऊपर की ओर चोंच खड़ी किये एक दूसरे की ओर देख रही हैं. . .उन्हीं के पांवों के पास लोहे की पतली-सी छड़ है, आग को समेटने के लिए. . .

अधजली मोमबत्तियां?

▣

सिगरी के बारे में सोचते-सोचते, सिगरी के ही समकालीन उपन्यासकार नट हैमसन का स्मरण हो आता है. हैमसन भी नार्वे के ही, नोबेल पुरस्कार से सम्मानित साहित्यकार थे, किंतु दोनों दो भिन्न ध्रुवों में रहते थे, सिगरी जहां

आततायी नाजियों से संघर्ष करती रही, वहां हैमसन ने स्पष्ट शब्दों में नाजीवाद का समर्थन किया. देश निकाला लेकर सिगरी ने कितनी यंत्रणाएं नहीं झेलीं!

"उनके हृदय में अपने देश के प्रति अगाध स्नेह था. नैतिक मूल्यों के लिए वे समर्पित थीं. इन्हीं मूल्यों की रक्षा के लिए वे जिंदा रहीं और इन्हीं की रक्षा करते-करते मर गयीं. . .अपना सर्वोच्च सम्मान उन्हें प्रदान कर राष्ट्र ने सिगरी को गौरवान्वित नहीं किया, बल्कि राष्ट्र उन्हें सम्मानित कर स्वयं गौरवान्वित हो गया. . ."

हम कमरे से बाहर निकल आते हैं.

ढलवां भूमि. हरी घास. इधर-उधर सफेदे के वृक्ष.

"इसी कमरे के विषय में आप अभी कुछ समय पहले बतला रही थीं, इसे सिगरी ने स्वयं बनवाया था, अतिथियों के लिए. . ." अंग्रेजी के उल्टे 'यू' आकार की यह इमारत है. हम अब दूसरे सिरे की ओर बढ़ रहे हैं.

"जी हां," सिगरी की पुत्रवधू उत्तर देती हैं, "पहले अतिथियों के लिए ही बनवाया था, किंतु बाद में इस कमरे में उनके पति यानी मेरे ससुर पेंटिंग किया करते थे."

हम उस कमरे में पहुंच जाते हैं.

यह अन्य कमरों की अपेक्षा सामान से अधिक अंटा पड़ा है.

सिगरी के पहनने के कपड़े—
टोपी.
बादामी रंग का रेशमी स्कार्फ.

उसी के नीचे सिगरी की कलात्मक पेंटिंग. . . "इसी पेंटिंग पर आधारित डाक-टिकट नार्वे सरकार तैयार कर रही है."

उत्तरी दिशा की दीवार पर केनवास पर बना विशाल रंगीन तैल चित्र है. 1943 में उनके पति ने इसे अमरीका में बनाया था. पति द्वारा निर्मित सिगरी का यह अंतिम चित्र है.

कमरे के बीच में बड़ी-सी गोल मेज है. उसमें टेपरिकार्डर रखा है. किसी का हाथ सहसा बटन पर पड़ता है तो किसी के बोलने का स्वर गूंजता है.

"यह उनके पति की आवाज है. . ."

दीवार से लगी शीशे की अल्मारियों में, यहां भी पुस्तकें-ही-पुस्तकें हैं. उनके पीछे अमरीका में भाषण देते हुए सिगरी का बड़ा-सा चित्र—चौथाई दीवार घेरे.

पांवों के पास हरे फर्श पर, एक किनारे काठ की डोलची है. उसी से लगे मिट्टी के पात्र में चीड़ के सूखे फल,—छोटे-छोटे अनन्नास के आकार के.

पंखों को जोड़कर बनाया गया पंखा लटक रहा है.

विदा लेने लगते हैं तो वह कुछ कदम दूर तक छोड़ने आती हैं.

उसी प्रमुख द्वार से हम लौटने लगते हैं, जिससे अभी कुछ समय पूर्व गये थे.

पुराना दरवाजा चौखट से नीचे आकर लटक गया है. दूर सामने की घाटी में झील का पानी पारे की तरह चमक रहा है. उसी के ठीक ऊपर गिरजाघर का क्रॉस!

यहीं पर 10 जून, 1949 को सिगरी उनसत का देहांत हुआ था.

▣

सिगरी की तपोभूमि के अहाते के पास आकर हम ठिठक जाते हैं. तिकोने पार्क के पास पेड़ के यों ही कटे तने की मेज है. लोहे की बेंच. मेज को छाया के पास ले जाकर हम भोजन करने लगते हैं.

चावला-दंपती पूरियां तथा आलू की सूखी सब्जी लाये हैं.

इंग्रिड के पास अपना भोजन है.

दो नन्हीं-नन्हीं सफेद बिल्लियां बिना बुलाये ही पास आकर बैठ जाती हैं. हमारे साथ वे भी भोजन में शामिल हो जाती हैं. नुकीली सफेद मूंछों पर ताव देती हुई खप-खप पूरियां निगलने लगती हैं!"

"ऐसा भारतीय भोजन इन अतिथियों ने न कभी किया होगा, न करेंगी ही. . ." हम भोजन के पश्चात चलने लगते हैं तो बिल्लियां भी चुपचाप दुबककर चल देती हैं.

सिगरी का घर 'बेयरबीक' पीछे छूट रहा है. हम एक गहरी घाटी की ओर बढ़ रहे हैं. यही वह जगह है, जहां पर नाजियों से लड़ता हुआ सिगरी का बड़ा बेटा ऐंडर्स वीरगति को प्राप्त हुआ था! □

निर्मल वर्मा से बातचीत करते हुए आइसलैंड के नोबेल पुरस्कार प्राप्त कवि, कथाकार और नाटककार हालदोर विलियन लैक्सनेस :

समयाभाव का खेद

आधुनिक भारतीय लेखक मुझे अधिक आधुनिक नहीं जान पड़े. जो कुछ भी पुस्तकें मैंने पढ़ी हैं—और वे अधिक नहीं हैं—उनकी शैली बहुत कुछ मुझे योरोप के पुराने लेखकों का स्मरण दिला जाती है. भारत में मेरी मुलाकात एक ऐसे युवालेखक से हुई जो ह्यूमा के भक्त थे. ह्यूमा के बाद भी योरोप में साहित्य सृजन होता रहा है, इसमें शायद उन्हें कोई विशेष दिलचस्पी नहीं थी. चीन में भी मेरा बहुत कुछ ऐसा ही अनुभव रहा है. चीनी विद्यार्थी—जिनसे मैं मिला—योरोप के आधुनिक साहित्य से प्रायः अपरिचित जान पड़ते हैं. ह्यूगो और रोलां—इससे आगे शायद उनकी जानकारी नहीं जाती. जब मैं भारत में था, बुद्धिजीवियों की एक गोष्ठी में मेरी भेंट एक जर्मन यहूदी महिला से हुई, जो किसी भारतीय से विवाह करने के बाद भारत में ही बस गयी थीं. उन्होंने मुझे बताया कि उनके दो उपन्यास (अंगरेजी में) इंग्लैंड में प्रकाशित हुए हैं. मैंने उन्हें बधाई दी. बाद में मुझे उनका एक उपन्यास पढ़ने का सौभाग्य प्राप्त हुआ. मुझे खेद है कि उसके बाद मैं उनके दूसरे उपन्यास को पढ़ने का साहस नहीं बटोर सका. किंतु मेरी ये प्रतिक्रियाएं सीमित अनुभव पर आधारित हैं. मुझे इस बात का हमेशा दुख रहेगा कि भारत में मैं अनेक सार्वजनिक कार्यों में उलझा रहा. जिसके कारण मुझे अधिक संख्या में भारतीय लेखकों से मिलने का समय नहीं मिल सका. □

वा) ह मारा!...

अगला अंक

तुम जीते मैं हारा!...

यही खेल है, खेल भावना!...

मगर यह भावना देश-विदेश की कथा कहानियों में किस प्रकार मुखर हुई है? खेल के मैदान में महसूस होने वाले रोमांच और खिलाड़ियों की जिंदगी में व्याप्त रोष के सूत्र देश और दर्शकों से कहां और किस प्रकार जुड़ते हैं? इस तरह के कई सवाल, जवाब और जानकारियों को उजागर करके, एक स्वस्थ बहस की खातिर प्रस्तुत है—

एशियाड और दीवाली के ऐतिहासिक अवसर पर खेलों का मजा दूना करने के लिए विश्व की साहित्यिक-पत्रकारिता में पहली बार—

खेल और खिलाड़ियों का कथात्मक संसार

खेल-कथा-विशेषांक : एक

▣ **क्या खेल-कथा साहित्य में वृद्धि खेलों के स्तर में सुधार ला सकती है?**
कथा-कहानियों और खेलों के ताल-मेल से निभायी जा सकने वाली भूमिका क्रांतिकारी परिणाम प्रदर्शित करेगी या बेहूदा?—**सत्यपाल सक्सेना** की परिचर्चा.

▣ **भारोत्तोलक कृष्ण**
क. मा. मुंशी की विशिष्ट कहानी कि दुनिया के सबसे बड़े भारोत्तोलक श्रीकृष्ण थे, जिन्होंने गोवर्धन पर्वत को ही उठा लिया!

▣ **खूनी मैच**
शूट दैम!... और हिटलर के हुक्म पर पूरी फुटबाल टीम को गोलियों से भून दिया गया—**जे. माइखोलोव** लिखित एक तानाशाह द्वारा रचाये गये हत्याकांड की कहानी.

▣ **आते हुए लोग**
गुड्डू गोविंद की कहानी.

▣ **जय-पराजय**
जैक लंडन के विश्वप्रख्यात लोम-हर्षक खेल-उपन्यास का सार-संक्षेप.

▣ **खेल—**
प्यार बढ़ाते हैं या व्यापार?
पैसे और प्यार के तहत खेल और खिलाड़ियों द्वारा महसूस की जा रही घुटन का कथात्मक ब्यौरा दे रहे हैं—**योगराज थानी**

▣ **पराजित विजयी**
सांड युद्ध पर **हडसन स्ट्रोड** की खरी और बेबाक नजर.

प्रेमचंद, मोपांसा (फ्रांसीसी) **सॉमरसेट मॉम** (ब्रितानिया), **इरविन ऐश कनेजो, सुदीप, शांता राम** (मराठी), **दिनेश चंद्र पंत, डेमार्ट मेकनाल्लो, राकेश तिवारी, माइकल एबेलोन** (अंग्रेजी), **बेंलोदा सिलवा** (पुर्तगाली), **अर्नेस्ट लेहमन** (कनाडा), **ब्रेसलिन** (अमरीकी) आदि की विभिन्न खेलों पर केंद्रित रोमांचक कहानियां.

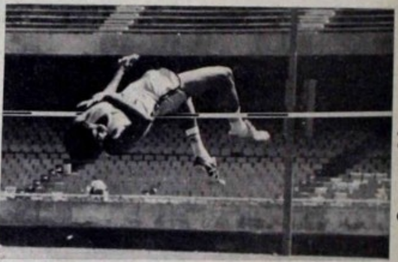

● फोटो एस. गिरोत्रा

▣ **क्रिकेट के विकेट उखाड़कर भारत से बाहर फेंक दो...!**
क्रिकेट के विरुद्ध बनती मानसिकता कितनी सही है और कितनी गलत?
—**सुरेश उनियाल** का विश्लेषण.

▣ **राष्ट्र के जीवन में—खेलना और खाना!**
खिलाड़ी क्या खायें और क्या खेलें? खेल-जगत के सुलगते सवालों पर **गुरुचरन** की परिचर्चा.

▣ **बौने और हाथी**
विशालकाय हाथियों के मध्य स्थूल-काय बौनों का खेल—**ज्यां पेयर हेलत** की कलम से.

▣ **कहां खो गये, हिंदुस्तान के असल खेल?**
भारत के प्राचीन खेलों और खेल-संस्कृति की जानकारी दे रहे हैं—**राजन पाराशर**

▣ **मथुरादास की डायरी**
इस बार पढ़िए एशियाड के संदर्भ में **मथुरादास** की खेल-कल्पना का चुटीला-कटीला वृत्तांत.

▣ **मशहूरी का जवाब या अमीरी ख्वाब?**
प्रचार विज्ञापनों में दर्शकों को लुभाकर हमारे प्रख्यात खिलाड़ी जनता को धोखा दे रहे हैं या कर रहे हैं जरूरी काम?—**जया रमेश**

कुछ अन्यतम शीर्षक

- ▣ बर्फ पर सिर के बल ६४ कि. मी. प्रति घंटा
- ▣ तीन टांगों वाला फुटबाल खिलाड़ी
- ▣ मनुष्य, सांड और मौत
- ▣ अद्भुत घुड़सवारी प्रतियोगिता
- ▣ बाकी २७ रनों का क्या हुआ?
- ▣ एक खिलाड़िन, जिसने भविष्यवाणी पूरी की
- ▣ एक दिन में तीन जगह तीन शतक
- ▣ तिरंगे ने हाकी फाइनल जिताया
- ▣ ब्रिटेन के राजकुमार पर ताश के खेल में धोखेधड़ी का मुकद्दमा
- ▣ विश्वनाथ और प्रसन्ना डाकुओं के घेरे में
- ▣ स्वर्ण पदक भी जीता और प्रेयसी का दिल भी
- ▣ चैंपियन धावक से चैंपियन कथाकार तक
- ▣ लाला अमरनाथ के पहले शतक का ईनाम
- ▣ जो पहलवान न बने, वह नालायक
- ▣ इंजीनियर और सौ मीटर की दौड़
- ▣ धावक पति को पत्नी की धमकी—मैं मायके चली जाऊंगी!

सारिका 1 नवंबर, 1982
आज नयी, कल ताजा, पढ़िए और पढ़वाइए.

नारी यातना-कथा-विशेषांक एक और दो : १ दिसंबर तथा १६ दिसंबर, ८२

- **हर जिस बिकती हैं निर्वसना बेटियों के दाम!**
—विज्ञापन की दुनिया में औरत का इस्तेमाल
- **फिल्मों में औरत का चांस : रोमांस या डांस!**
—हिंदी फिल्मों में स्त्री पात्रों की स्थिति का जायजा.
- **खाड़ी देश : औरत पर टिकी भूखी निगाहें!**
—औरतों की तस्करी और बिक्री
- **बलात्कार : हर औरत पर दोहरी मार!**
—कारण, निवारण और कानून
- **सती प्रथा क्या फिर लौट रही है?**
—ऐतिहासिक परिप्रेक्ष से वर्तमान स्थिति तक
- **दहेज : कैसे करें कितना परहेज?**
—परिवार, समाज तथा सरकार की भूमिका
- **सड़कों पर लड़कियों की तरफ सरकते हाथ!**
—छेड़-छाड़ के सामाजिक आयाम
- **बद नहीं, बदनाम पेशों का दर्द!**
—नर्स, सेक्रेटरी, सेल्जगर्ल एवं मॉडलिंग का तकाजा
- **उड़ते जहाज में गूंजती अप्सराओं की चीख!**
—वायुयान परिचारिकाओं के काम और मुश्किलें
- **युद्ध में क्रुद्ध पुरुष के विरुद्ध!**
—युद्धकाल में नारी शोषण
- **गुलाम बच्चे पैदा करने की बिकाऊ मशीन!**
—नीग्रो और हब्शी औरतों पर गोरों के जुल्म
- **कोयला खानों में सिसकती कोयल!**
—कोयला खदानों में मजदूर औरतों के हालात
- **दुल्हन वही जो दहेज लेकर आये!**
—मध्यवर्गीय परिवारों में दूल्हे की प्रतीक्षा !
- **पुरुषो सावधान, औरतें तुम्हारे बारे में यह सोचती हैं...**
—नारी मन के मानसिक आयाम
- **नरक में रहकर मोक्ष की कामना!**
—वाराणसी, वृंदावन आदि में जीने के नाम पर मरती हुई विधवाओं का जीवन.
- **औरत, औरत को न मारे तो औरत न हारे!**
—नारी यातना में नारी का हाथ.